इकाई 1 विक्रय अनुबंध का अर्थ तथा शर्त एवं आश्वासन

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 विक्रय अनुबंध का अर्थ
1.3 विक्रय अनुबंध के लक्षण
1.4 विक्रय तथा विक्रय के ठहराव में अन्तर
1.5 विक्रय तथा निक्षेप में अन्तर
1.6 विक्रय तथा दान में अन्तर
1.7 विक्रय तथा वस्तु विनिमय में अन्तर
1.8 विक्रय तथा गिरवी में अन्तर
1.9 विक्रय तथा भाड़े पर खरीद के ठहराव में अन्तर
1.10 विक्रय अनुबंध की निर्माण विधि
1.11 विक्रय अनुबंध की विषय सामग्री
1.12 विषय वस्तु का नष्ट होना
1.13 मूल्य अथवा कीमत
1.14 मूल्य के भुगतान की रीति
1.15 शर्तें तथा आश्वासन
1.16 बन्धन का अर्थ
1.17 आश्वासन का अर्थ
1.18 शर्त तथा आश्वासन में अन्तर
1.19 गर्भित शर्त तथा आश्वासन
1.20 क्रेता सावधानी सिद्धान्त
1.21 सारांश
1.22 शब्दावली
1.23 बोध प्रश्न
1.24 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.25 स्वपरख प्रश्न
1.26 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- वस्तु विक्रय अनुबंध के अर्थ को समझ सकें।
- वस्तु विक्रय अनुबंध के ऐतिहासिक पृष्टभूमि को जान सकें।
- विक्रय अनुबंध के आधारभूत शब्दों के अर्थ को समझ सकें।
- विक्रय तथा अन्य व्यवहारों में अन्तर जान सकें।
- वस्तु विक्रय अनुबंध के निर्माण विधि को जान सकें।
- वस्तु विक्रय, विषय–वस्तु के नष्ट होने तथा मूल्य को जान सकें।

1.1 प्रस्तावना

इकाई 10 में एजेन्सी अनुबंध तथा इसके पूर्व अनुबंध अधिनियम के बारे में आप पढ़ चुके है। प्रारंभ में वस्तु–विक्रय से सम्बन्धित नियम भारतीय अनुबन्ध अधिनियम

1872 का हिस्सा था। किन्तु वस्तु–विक्रय की मान्यताओं मे परिवर्तन के कारण अनुबंध अधिनियम 1872 की धारा 76 से 123 को हटा दिया गया तथा वस्तु विक्रय अनुबंध अधिनियम 1930 बना। इसी के संदर्भ मे वस्तु विक्रय का अर्थ, वस्तु विक्रय का अनुबंध एवं ठहराव तथा अन्य व्यवहारों के अन्तर को सम्मिलित किया गया है। इसके साथ ही विक्रय अनुबंध के निर्माण, विक्रय अनुबंध की विषय–सामग्री, माल की किस्म को बताया गया है। विषय–वस्तु के नष्ट होने का भी उल्लेख किया गया है। विक्रय अनुबंध में मूल्य महत्वपूर्ण है। अतः मूल्य तथा मूल्य के भुगतान को भी बताया गया है। विक्रय अनुबन्ध अधिनियम विधि या कानून है। अतः इसमें धाराओं तथा केस लॉ (वाद–विधि) का भी उल्लेख किया गया है।

वस्तु विक्रय के अनुबंध में शर्त तथा आश्वासन भी महत्वपूर्ण है। शर्त तथा आश्वासन का अर्थ आप समझ सकेंगे। शर्त तथा आश्वासन के अन्तर को भी समझ सकेंगे। उदाहरण के माध्यम से शर्त तथा आश्वासन के महत्व को भी आप समझ सकेंगे।

1. 2 विक्रय–अनुबन्ध का अर्थ

वस्तु–विक्रय अधिनियम की धारा 4 (1) के अनुसार, वस्तु–विक्रय अनुबन्ध एक ऐसा अनुबन्ध है जिसके द्वारा विक्रेता, क्रेता को एक निश्चित मूल्य के बदले में माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण करता है अथवा हस्तान्तरण करने का ठहराव करता है। विक्रय–अनुबन्ध माल के एक सह–स्वामी तथा दूसरे सह–स्वामी के बीच हो सकता है। धारा 4 (2) के अनुसार विक्रय अनुबन्ध पूर्ण अर्थात् शर्त–रहित और शर्त–सहित दोनों प्रकारका हो सकता है। इसी प्रकार धारा 4 (3) में यह उल्लेख किया गया है कि यदि किसी विक्रय–अनुबन्ध के अन्तर्गत माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण विक्रेता से क्रेता को हो जाता है, तो उसे विक्रय कहा जाता है, लेकिन यदि माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण भविष्य में किसी शर्त के पूरा करने पर निर्भर रहता है, तो ऐसे अनुबन्ध को विक्रय के लिये ठहराव कहा जाता है और जब वह शर्त पूर्ण हो जाती है अथवा शर्त को पूरी करने की अवधि समाप्त हो जाती है, तो विक्रय का ठहराव, विक्रय में परिवर्तित हो जाता है।

1.3 विक्रय–अनुबन्ध के लक्षण

उपर्यक्त परिभाषा के आधार पर एक विक्रय–अनुबन्ध में निम्नलिखित लक्षण होने चाहिएः

(1) क्रेता तथा विक्रेता

अन्य अनुबन्धों की ही तरह विक्रय–अनुबन्ध में भी कम से कम दो पक्षकार होने चाहिए, यह एक क्रेता और दूसरा विक्रेता। 'क्रेता' उसे कहते है जो माल का क्रय करता है अथवा क्रय करने के लिए सहमत हो जाता है। इसी प्रकार विक्रेता उसे कहते है जो माल का विक्रय करता है अथवा विक्रय करने के लिये सहमत हो जाता है। विक्रय करने का तात्पर्य यह है कि विक्रय–अनुबन्ध के लिए दो अलग–अलग पक्षकार होने चाहिए। एक व्यक्ति जो माल को बेचता हो वह स्वयं माल का क्रेता नही हो सकता। (Bell vs. Liver Bros. Ltd. [(1932) A. C. 161] के मुकदमे में यह निर्णय दिया जा चुका है कि एक व्यक्ति स्वयं अपनी वस्तु का क्रय नहीं कर सकता। लेकिन इस नियम का एक अपवाद है। जब कोई वस्तु

कुर्की द्वारा बेची जा रही हो, तो उस वस्तु का स्वामी बोली लगाकर स्वयं वस्तु को क्रय कर सकता है।

(2) **माल**

विक्रय–अनुबन्ध के लिये माल का होना आवश्यक है। वास्तव में माल ही विक्रय–अनुबन्ध की विषय–वस्तु है, जिसके अभाव में विक्रय–अनुबन्ध नहीं हो सकता। माल से आशय (अभियोग–योग्य दावे और मुद्रा के अतिरिक्त) सभी प्रकार की चल सम्पत्तियों से होता है। माल की परिभाषा के अन्तर्गत स्कन्ध एवं अंश, खड़ी फसलें, घास तथा वे वस्तुएँ जो भूमि से जुड़ी हुई हों अथवा भूमि का ही एक भाग हों और जिन्हें विक्रय से पूर्व या विक्रय–अनुबन्ध के आधीन अलग करने का ठहराव कर लिया गया हो, वे वस्तुएँ भी माल में ही सम्मिलित की जाती है। लेकिन अभियोग–योग्य दावे अर्थात् ऋण को माल में सम्मिलित नहीं किया जाता, क्योंकि ऋण का विक्रय नहीं किया जा सकता बल्कि इसे तो अभियोग चलाकर ही प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार मुद्रा को भी माल में सम्मिलित नहीं किया जाता है। लेकिन Compress Vs. Juggessur [(1878)3,Cal 379] के विवाद में यह निर्णय दिया जा चुका है कि पुराने तथा दुर्लभ सिक्के, जो कानूनी मुद्रा नहीं है, को माल ही समझना चाहिए। इसी तरह डिक्री, ख्याति, ट्रेडमार्क, पेटेण्ट–राइट, पानी,बिजली, गैस आदि को माल कहा जा सकता है, क्योंकि इनका क्रय–विक्रय किया जाता है।

(3) मूल्य अथवा कीमत

अन्य अनुबन्धो की भॉति विक्रय अनुबन्ध के लिए भी प्रतिफल का होना आवश्यक है। विक्रय–अनुबन्ध का प्रतिफल 'मूल्य' कहलाता है और यह प्रतिफल मुद्रा के रूप में ही होना चहिए। जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है, मूल्य का तात्पर्य मुद्रा प्रतिफल से होता है। विक्रय–अनुबन्ध में विक्रेता माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण मूल्य के बदले में ही करता है क्योंकि बिना मूल्य के माल का हस्तान्तरण वैध नहीं होता। इसी लक्षण के आधार पर पर विक्रय को दान तथा वस्तु–विनिमय से भिन्न माना जाता है। लेकिन Aldrige Vs. Johnson (1857) के विवाद में यह निर्णय दिया जा चुका है कि अंशतः मुद्रा तथा अंशतः वस्तु से वस्तु का हस्तान्तरण, विक्रय माना जा सकता है।

(4) माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण

विक्रय अनुबन्ध के अन्तर्गत माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण विक्रेता से क्रेता को होना आवश्यक है, या भविष्य में किसी शर्त के पूरा होने पर निर्भर कर सकता है। जब माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण विक्रेता से क्रेता को अनुबन्ध के समय ही हो जाता है, तो इसे 'विक्रय' कहा जाता है, और जब माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण भविष्य में किसी शर्त के पूरा होने पर आधारित होता है तो उसे 'विक्रय' के लिये ठहराव' कहा जाता है। इस प्रकार 'विक्रय का ठहराव' भी सम्मिलित होता है। लेकिन जब शर्त पूरी हो जाती है, तो 'विक्रय का ठहराव' 'विक्रय' बन जाता है।

(5) पूर्ण एवं शर्तयुक्त अनुबन्ध

वस्तु–विक्रय अधिनियम की धारा 4 (2) के अनुसार विक्रय–अनुबन्ध पूर्ण अर्थात् शर्त–रहित एवं शर्तयुक्त दानों हो सकता है। जब विक्रय–अनुबन्ध होते समय ही वस्तु का हस्तान्तरण विक्रेता से क्रेता को कर दिया जाता है, तो इसे पूर्ण

विक्रय– अनुबन्ध कहा जाता है, लेकिन जब किसी शर्त के साथ विक्रय–अनुबन्ध किया जाता है, अर्थात् वस्तु की सुपुर्दगी की शर्त पर जब विक्रय–अनुबन्ध होता है अथवा वस्तु के हस्तान्तरण के पूर्व वस्तु को तौलना, नापना, या अन्य कुछ कार्य करना शेष रहता है, तो ऐसे विक्रय–अनुबन्ध को शर्तयुक्त विक्रय–अनुबन्ध कहाँ जाता है।

(6) लिखित अथवा मौखिक

विक्रय–अनुबन्ध लिखित अथवा मौखिक दोनों हो सकता है या अंशतः लिखित तथा अंशतः मौखिक हो सकता है। लिखित या मौखिक अनुबन्ध को स्पष्ट विक्रय–अनुबन्ध कहते हैं। विक्रय–अनुबन्ध गर्भित भी हो सकता है, अर्थात् पक्षकारों के आचरण के आधार पर भी विक्रय–अनुबन्ध किया जा सकता है।

(7) चल सम्पत्ति का ही विक्रय

विक्रय–अनुबन्ध केवल चल सम्पत्तियों के सम्बन्ध में ही किया जा सकता है। अचल सम्पत्तियों का विक्रय इस अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आता। अचल सम्पत्तियों के विक्रय के सम्बन्ध में एक अलग अधिनियम बनाया गया है जिसे 'सम्पत्ति हस्तान्तरण अधिनियम' कहते है।

(8) वैध अनुबन्ध के अन्य सभी लक्षण

विक्रय अनुबन्ध में अन्य वे सभी आवश्यक लक्षण होने चाहिए जो एक वैध अनुबन्ध के लिए आवश्यक होते है, जैसे– पक्षकारों का अनुबन्ध करने के योग्य होना, पक्षकारों की स्वतन्त्र सहमति का होना, न्यायोचित प्रतिफल अनुबन्ध का व्यर्थ न होना, आदि।

एक विक्रय–अनुबन्ध में उपर्युक्त सभी लक्षणों का होना आवश्यक है। यदि इनमें से किसी भी लक्षण का अभाव रहेगा तो वह विक्रय–अनुबन्ध नहीं कहलायेगा। इसीलिए विक्रय–अनुबन्ध, गिरवीं, निक्षेप, वस्तु–विक्रय, दान तथा किराया–क्रय पद्धति, आदि से भिन्न होता है।

1.4 विक्रय तथा विक्रय के ठहराव में अन्तर

विक्रय तथा विक्रय के ठहराव में में निम्नलिखित अन्तर हैं:

विक्रय	विक्रय का ठहराव
(1) विक्रय में माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण अनुबन्ध के समय ही विक्रेता से क्रेता को कर दिया जाता है।	(1) विक्रय के ठहराव में माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण एक निश्चित अवधि के बाद या शर्त के पूरा होने पर विक्रेता से क्रेता को किया जाता है।
(2) यह एक निष्पादित अनुबन्ध है, अर्थात् इसमें अनुबन्ध का निष्पादन अनुबन्ध के समय ही कर दिया जाता है।	(2) यह एक निष्पादनीय अनुबन्ध है, अर्थात इसमें अनुबन्ध का निष्पादन भविष्य में किसी तिथि को दिया जाता है।
(3) विक्रय समाप्त होने पर माल की क्षति की जिम्मेदारी (जोखिम) क्रेता की होती है, भले ही माल विक्रेता के पास हो।	(3) इसमें माल में यदि कोई क्षति पहुँचती है, तो उसकी जिम्मेदारी (जोखिम) विक्रेता की होती है, भले ही माल क्रेता के पास हो।
(4) क्रेता द्वारा मूल्य न चुकाये जाने पर	(4) इसमें क्रेता द्वारा मूल्य का भुगतान

विक्रेता मूल्य के लिए उस पर वाद प्रस्तुत कर सकता है।	न किये जाने पर विक्रेता केवल हर्जाने के लिए क्रेता के ऊपर वाद प्रस्तुत कर सकता है।
(5) यदि विक्रेता द्वारा माल की सुपुर्दगी करने में त्रुटि की जाती है, तो क्रेता को विक्रेता के विरूद्ध केवल वैयक्तिक उपचार ही प्राप्त ही प्राप्त नही होता, बल्कि माल के सम्बन्ध में उसे अन्य उपचार भी प्राप्त होते हैं जैसे यदि माल किसी तीसरे व्यक्ति के अधिकार में है तो क्रेता माल के स्वामी की हैसियत से तीसरे व्यक्ति के विरूद्ध भी वाद प्रस्तुत कर सकता है।	(5) इसमें विक्रेता द्वारा त्रुटि करने पर क्रेता को केवल वैयक्तिक, उपचार ही प्राप्त होता है, अर्थात् क्रेता क्षति के लिये विक्रेता के ऊपर वाद प्रस्तुत कर सकता है, अन्य तीसरे व्यक्ति के विरूद्ध कोई कार्यवाही नहीं कर सकता, क्योंकि माल पर क्रेता का स्वामित्व नहीं होता।
(6) इसमें विश्वव्यापी अधिकारों का सृजन होता है, अर्थात् क्रेता को सम्पूर्ण संसार के विरूद्ध अपने ढंग से वस्तु के प्रयोग करने का अधिकार होता है।	(6) इसमें केवल व्यक्तिगत अधिकार का ही सृजन होता है, अर्थात केवल क्रेता और विक्रेता को ही परस्पर वाद प्रस्तुत करने का अधिकार होता है।
(7) इसमें यदि माल की सुपुर्दगी देने के पूर्व ही विक्रेता दिवालिया होता जाता है, तो क्रेता को विक्रेता के सरकारी प्रापक से माल की सुपुर्दगी प्राप्त करने का अधिकार होता है, क्योंकि माल पर स्वामित्व क्रेता का होता है।	(7) इसमें यदि विक्रेता दिवालिया हो जाता है तो क्रेता को केवल क्षतिपूर्ति का ही अधिकार प्राप्त होता है। माल की सुपुर्दगी प्राप्त करने का अधिकार नहीं होता, क्योंकि माल पर उसका स्वामित्व नहीं रहता।
(8) यदि क्रेता दिवालिया हो जाता है, तो उसके द्वारा क्रय किया गया माल उसके सरकारी प्रापक को सुपुर्द करना पड़ता है।	(8) इसमें यदि क्रेता मूल्य का भुगतान करने के पूर्व दिवालिया हो जाता है तो विक्रेता उसे माल की सुपुर्दगी देने से इन्कार कर सकता है।
(9) इसमें विक्रेता माल की पुनः बिक्री नहीं कर सकता, क्योंकि माल का स्वामित्व क्रेता के पास चला जाता है।	(9) इसमें विक्रेता माल की पुनः बिक्री कर सकता है, लेकिन उसके पूर्व क्रेता को क्षति का भुगतान करना पड़ेगा।

1.5 विक्रय तथा निक्षेप मे अन्तर

विक्रय तथा निक्षेप में अन्तर समझने के पूर्व हमें निक्षेप का अर्थ जान लेना आवश्यक हो जाता है। अनुबन्ध अधिनियम की धारा 148 के अनुसार, "जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को किसी विशेष उद्देश्य से इस शर्त पर माल का हस्तान्तरण करता है कि उस उद्देश्य के पूरा हो जाने पर माल का हस्तान्तरण करने वाले को लौटा दिया जायेगा अथवा उसके आदेशानुसार उसकी व्यवस्था कर दी जायेगी, तो माल के ऐसे हस्तान्तरण को **'निपेक्ष'** कहेंगे।" विक्रय और निपेक्ष का अन्तर निम्नलिखित तालिका की सहायता से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

आधार का अन्तर	विक्रय	निपेक्ष
1. स्वामित्व का हस्तान्तरण	विक्रय द्वारा किसी वस्तु के स्वामित्व का हस्तान्तरण सदैव के लिए हो सकता है।	इसमें केवल कुछ समय के लिए वस्तु के अधिकार (Possession) मात्र का ही हस्तान्तरण होता है, स्वामित्व का नहीं।
2. प्रतिफल	विक्रय में माल का हस्तान्तरण करने वाला उसके बदले में प्रतिफल पाता है।	निपेक्ष में माल का हस्तान्तरण करने वाला स्वयं उसको मूल रूप से वापस पाने का अधिकारी होता है अतएव इसमें प्रतिफल नहीं मिलता।
3. उपयोग का क्षेत्र	विक्रय में क्रेता को माल से सम्बन्धित सभी अधिकार प्राप्त हो जाते हैं, अतएव वह अपनी इच्छानुसार उसका उपयोग करने में पूर्ण स्वतन्त्र है।	इसमें निक्षेपगृहीता को यह स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होती, वह केवल निर्दिष्ट रीति के अनुसार ही माल का उपयोग कर सकता है।
4. वस्तु का लौटाना	विक्रय की दशा में विक्रय की गई वस्तु विक्रेता को लौटाई नहीं जाती है।	निपेक्ष की दशा में वस्तु को निश्चित समय की समाप्ति पर अथवा उद्देश्य पूरा हो जाने पर वस्तु को लौटाना पड़ता है।
5. उद्देश्य	विक्रय का उद्देश्य केवल लाभ कमाना होता है।	निक्षेप को उद्देश्य केवल लाभ कमाना न होकर इसके विभिन्न उद्देश्य होते है; जैसे सुरक्षा, दूसरे व्यक्ति को लाभ पहुँचाना, गिरवी रखना, वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना आदि।
6. वस्तु के विक्रय का अधिकार	विक्रय मे क्रेता को वस्तु के विक्रय का अधिकार होता है।	निक्षेप में निक्षेपगृहीता का वस्तु के विक्रय का अधिकार नहीं होता है।
7. स्थायी अथवा अस्थायी	विक्रय सदैव स्थायी रूप से होता है।	निक्षेप सदैव अस्थायी रूप से होता है।
8. अधिनियम का लागू होना	विक्रय पर वस्तु विक्रय अधिनियम लागू होता है।	निक्षेप पर भारतीय अनुबन्ध अधिनियम लागू होता है।

1.6 विक्रय तथा दान में अन्तर

विक्रय मे मूल्य प्रतिफल के रूप में होना अनिवार्य है। यह प्रतिफल आवश्यक रूप से मुद्रा में ही होना चाहिए। इसके विपरीत दान निःशुल्क होता है अर्थात् इसमें प्रतिफल नही होता। संक्षेप में, विक्रय में माल का हस्तान्तरण प्रतिफल के बदले में होता है जबकि दान में यह निःशुल्क होता है।

1.7 विक्रय तथा वस्तु विनिमय में अन्तर

विक्रय अनुबन्ध में प्रतिफल सदैव मुद्रा में ही होना आवश्यक होता है। इसके विपरीत, वस्तु–विनिमय में प्रतिफल मुद्रा में न होकर किसी अन्य वस्तु के रूप में होना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, 'अ' अपनी कमीज का विनिमय 'ब' की पतलून से करता है, तो यह **'विक्रय'** न होकर **'वस्तु–विनिमय'** होगा। किन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने योग्य बात है कि यदि अनुबन्ध के अन्तर्गत माल के बदले से दूसरा माल तथा मुद्रा मिलती हो तो ऐसे अनुबन्ध को **'विक्रय'** कहा जायेगा न कि **'वस्तु–विनिमय'**।

1.8 विक्रय तथा गिरवी में अन्तर

रहन अथवा गिरवी की दशा में ऋण प्राप्त करने हेतु कुछ समय के लिए वस्तु में समस्त हित का हस्तान्तरण कर दिया जाता है। जब गिरवी रखने वाला ऋण अदा कर देता है, तो ऋणदाता गिरवी रखी हुई वस्तु को वापस कर देता है। इस प्रकार रहन अथवा गिरवी रखना विक्रय से बिल्कुल भिन्न है क्योकि रहन अथवा गिरवी में स्वामित्व का हस्तान्नरण नहीं होता, केवल कुछ समय के लिए समस्त हितों का हस्तान्तरण हो जाता है। इसके विपरीत, विक्रय में वस्तु का सदैव के लिए हस्तान्तरण हो जाता है तथा बाद में उसको लेने अथवा देने का प्रश्न ही नहीं उठता।

1.9 विक्रय तथा भाड़े पर खरीद के ठहराव में अन्तर

भाड़े पर खरीद के ठहराव के अन्तर्गत माल का स्वामी उसे (माल को) भाड़े पर देता है और भाड़े पर लेने वाले के द्वारा नियम भुगतानों के किये जाने पर उसको (माल को) बेचने का दायित्व लेता है। इस प्रकार विक्रय तथा भाड़े पर खरीद के ठहराव में पर्याप्त अन्तर विद्यमान है। यह अन्तर निम्न तालिका की सहायता से और अधिक स्पष्ट हो जायेगा :

अन्तर का आधार	विक्रय	भाड़े का खरीद का ठहराव
1. **स्वामित्व का हस्तान्तरण**	विक्रय में माल का स्वामित्व तुरन्त क्रेता के पास हस्तान्तरित हो जाता है।	इसमें स्वामित्व का हस्तान्तरण उस समय तक नहीं होता जब तक कि भाड़े की सभी किस्तों का भुगतान न कर दिया जाय।
2. क्रेता का होता	विक्रय में क्रेता का होना आवश्यक है।	इसमें माल को भाड़े पर लेने वाले उसे क्रय करने का अधिकार मात्र होता

		है, जिसका चाहे वह उपयोग करे अथवा नहीं।
3. लौटाने का अधिकार	विक्रय अनुबन्ध के पूरा हो जाने पर क्रेता उसे लौटा नहीं सकता।	इसमें भाड़े पर लेने वाला माल को किसी भी समय लौटा सकता है और भाड़ा देना बन्द कर सकता है।
4. अनुबन्ध की शुद्धता	यह प्रारम्भ से अन्त तक अर्थात् पूर्ण रूप से विक्रय अनुबन्ध रहता है।	इसमें विक्रय और भाड़ा अनुबन्ध दोनों का मिश्रण रहता है।

1.10 विक्रय अनुबन्ध की निर्माण विधि

विक्रय–अनुबन्ध भी सामान्य अनुबन्धों की भाँति होता है। अतः जिस प्रकार साधारण अनुबन्ध का वैध रूप से निर्माण किया जाता है, ठीक उसी प्रकार से विक्रय अनुबन्ध का भी निमार्ण होता है। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते है कि एक साधारण अनुबन्ध के निर्माण के लिए जिन तत्वों की आवश्यता होती है, उन्हीं तत्वों की आवश्यकता विक्रय–अनुबन्ध में भी होती है। वस्तु विक्रय–अनुबन्ध की धारा 4 तथा 5 के अनुसार, एक वैध विक्रय–अनुबन्ध का निर्माण करने के लिए निम्नलिखित तत्व विद्यमान रहने चाहिए :

(1) दो पक्षकार होने चाहिए, एक विक्रेता तथा दूसरे क्रेता।

(2) दोनों पक्षकारों में प्रस्ताव एवं स्वीकृति होनी चाहिए। विक्रेता द्वारा माल को बेचने का प्रस्ताव एवं स्वतीकृति होनी चाहिए तथा क्रेता द्वारा उस प्रस्ताव पर अपनी सहमति प्रदान की जानी चाहिए।

(3) क्रेता और विक्रेता में अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चहिए।

(4) क्रेता और विक्रेता की स्वतन्त्र सहमति होनी चाहिए।

(5) माल होना चाहिए, जिसके स्वामित्व का हस्तान्तरण मूल्य (मुद्रा में प्रतिफल) के बदले होना चाहिए।

(6) विक्रय–अनुबन्ध स्पष्ट एवं गर्भित दोनों हो सकता है। स्पष्ट विक्रय–अनुबन्ध लिखित अथवा मौखिक या अंशतः लिखित और अंशतः मौखिक हो सकता है। इसके अतिरिक्त विक्रय–अनुबन्ध पक्षकारों के आचरण द्वारा गर्भित भी हो सकता है।

(7) विक्रय–अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार माल की तत्काल सुपुर्दगी की जा सकती है अथवा मूल्य का तत्काल चुकाया जा सकता है अथवा दोनों ही तत्काल किये जा सकते हैं, अथवा सुपुर्दर्गी अथवा दोनों भविष्य में किये जा सकते हैं।

1.11 विक्रय अनुबन्ध की विषय–सामग्री

विक्रय अनुबन्ध की विषय–वस्तु साधारणतः माल ही होता है। माल से आशय अभियोग के योग्य दावे और मुद्रा को छोड़कर प्रत्येक प्रकार की चल सम्पत्ति से है और इसमें स्टॉक, अंश, खड़ी फसलें, घास तथा अन्य वस्तुएँ जो भूमि में लगी हों अथवा भूमि से पृथक् करने का ठहराव कर लिया गया हो, सम्मिलित है।'' {धारा 2(7)} माल का स्वामित्व विक्रेता से क्रेता के पास पहुँचता

है। माल जिसके विषय में विक्रय का अनुबन्ध किया गया है, या तो अनुबन्ध के साथ विक्रेता के स्वामित्व अथवा अधिकार में विद्यमान माल हो सकता है, अथवा विक्रय अनुबन्ध ऐसे माल के सम्बन्ध में भी किया जा सकता है जो कि अनुबन्ध के समय विद्यमान न हो अर्थात् भावी माल हो।

माल का वर्गीकरण

विक्रय अनुबन्ध अधिनियम की धारा 6 के अनुसार माल निम्न प्रकार का होता है :

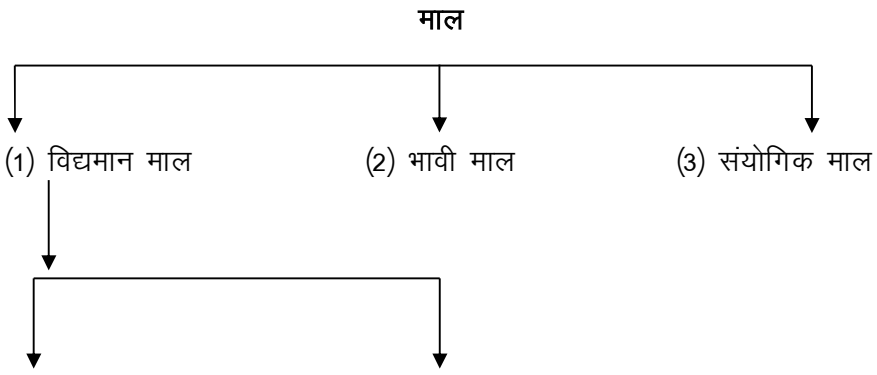

1. विद्यमान माल

विद्यमान माल से तात्पर्य ऐसे माल से है जो विक्रय अनुबन्ध करते समय विक्रेता के स्वामित्व अथवा अधिकार में हो, अर्थात् माल वास्तव में विद्यमान हो {धारा 1(1)} अन्यथा अनुबन्ध व्यर्थ होगा। उदाहरण के लिए, यदि 'अ'–अपना कुत्ता, जहाज या पुस्तक, यह विश्वास करते हुए कि वे विद्यमान है, जबकि वास्तविकता यह है कि कुत्ता मर चुका है, जहाज समुद्र में डूब चुका है और पुस्तक खो चुकी है, 'ख' को बेचता है, तो वह अनुबन्ध व्यर्थ होगा। किन्तु यदि विक्रय योग्य माल विक्रय के समय अंशतः नष्ट हो चुका हो तो अनुबन्ध का त्याग कर सकता है, अथवा उसके मूल्य में आनुपातिक कमी करके उनका क्रय कर सकता है। विद्यमान माल विशिष्ट या निश्चित अथवा अनिश्चित हो सकता है।

निश्चित अथवा विशिष्ट

निश्चित माल से तात्पर्य ऐसे माल से है जिसे अनुबन्ध करते समय पहचाना और स्वीकृत कर लिया हो। उदाहरण के लिए, 'अ' 'ब' से कहता है कि मैं आपके द्वारा प्रकाशित 'व्यावसायिक संगठन' नामक पुस्तक जिसके लेखक बी0के0 गुप्ता है, खरीदूँगा तो यह निश्चित माल के विक्रय का अनुबन्ध माना जायेगा।

अनिश्चित माल

से तात्पर्य ऐसे माल से है जो कि विक्रय अनुबन्ध करते समय पहचाना न गया हो तथा जिसका विक्रय केवल वर्णन द्वारा किया गया हो। उदाहरण के लिए, 'अ' के पास औद्योगिक संगठन लेखक (बी0के0 गुप्ता) की 25 पुस्तकें है और उनमें से एक पुस्तक 'ख' को बेचने का वचन देता है, तो ऐसी दशा में अनुबन्ध अनिश्चित माल के लिए कहलायेगा। यदि विक्रय के समय वह 'ब' को पुस्तक दिखा देता है तथा उसे 'ब' के लिये अलग रख देता है, तो यह निश्चित माल के विक्रय का अनुबन्ध माना जायेगा।

2. भावी माल

विक्रय अनुबन्ध की धारा 6(1) के अनुसार भावी माल का भी विक्रय किया जा सकता है। 'भावी माल' से आशय ऐसे माल से है जिसे विक्रेता द्वारा विक्रय अनुबन्ध होने के पश्चात् निर्मित अथवा उत्पादित अथवा प्राप्त किया जाता हो।

उदाहरण के लिए अ, ब को पाँच महीने पश्चात् 50 साइकिल बेचने का अनुबन्ध करता है। यह अनुबन्ध भावी माल के विक्रय का माना जायेगा। भावी माल के लिए किया गया विक्रय अनुबन्ध, विक्रय न होकर 'विक्रय का ठहराव' होता है।

3. संयोगिक माल

विक्रय अनुबन्ध की धारा 6(2) के अनुसार संयोगिक माल का भी विक्रय किया जा सकता है। यंयोगिक माल से तात्पर्य ऐसे माल से है जिसे प्राप्त करना किसी घटना के घटित होने अथवा न होने पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए 'अ' 'ब' से कहता है कि यदि रंगून से जहाज कलकत्ता सुरक्षित आ गया तो वह 5 टन चावल बेच देगा। संयोगिक माल के विक्रय अनुबन्ध में किसी शर्त का विद्यमान होना आवश्यक है।

1.12 विषय वस्तु का नष्ट होना

विक्रय–अनुबन्ध की विषय–वस्तु अर्थात् माल यदि अनुबन्ध के निष्पादन के पूर्व ही नष्ट हो जाय, तो इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम लागू होते हैः

(1) विक्रय–अनुबंध से पूर्व माल के नष्ट होने पर

वस्तु–विक्रय अधिनियम की धारा 7 के अनुसार, "यदि विक्रय–अनुबंध किसी विशिष्ट माल के सम्बन्ध में किया गया है और वह माल विक्रेता की बिना जानकारी के अनुबंध के पूर्व ही नष्ट हो चुका है, अथवा माल इतना क्षतिग्रस्त हो चुका है कि अनुबंध में किये गये वर्णन से मेल नहीं खाता है, तो ऐसा अनुबंध व्यर्थ होगा।"

(2) विक्रय ठहराव के बाद लेकिन विक्रय के पूर्व माल के नष्ट होने पर

वस्तु–विक्रय अधिनियम की धारा 8 के अनुसार, यदि किसी विशिष्ट माल के सम्बन्ध में विक्रय का ठहराव किया गया हो, लेकिन क्रेता को माल के स्वामित्त्व का हस्ताक्षर करने के पूर्व ही विक्रेता या क्रेता की बिना गलती के माल इस प्रकार नष्ट हो जाय कि वह ठहराव में किये गये वर्णन से मेल न खाये, तो ठहराव व्यर्थ माना जायेगा।

(3) क्रेता के पास माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण होने के पूर्व ही माल नष्ट होना चाहिए। यदि पक्षकारों की गलती के बिना माल नष्ट हो गया हो और माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण क्रेता को कर दिया गया हो तो क्षति क्रेता को सहन करनी पड़ेगी। यदि माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित न किया गया हो तो क्रेता अपनी इच्छानुसार विक्रय के ठहराव को व्यर्थ घोषित कर सकता है।

यह बात महत्वपूर्ण है कि धारा 7 तथा 8 में दिये गये नियम केवल निश्चित माल के सम्बन्ध में ही लागू होते है, अनिश्चित माल के विषय के सम्बन्ध में नहीं। दूसरी बात यह है कि धारा 7 उस समय लागू होती है जबकि माल अनुबन्ध के पूर्व ही नष्ट हो जाय। यदि माल अनुबन्ध के बाद नष्ट हो जाय तो उस समय धारा 8 लागू होती है। इसके अतिरिक्त धारा 7 के अन्तर्गत ठहराव

प्रारम्भ से ही व्यर्थ होता है, लेकिन धारा 8 के अन्तर्गत ठहराव उस अवस्था में व्यर्थ होता है, जबकि उसका निष्पादन असम्भव हो जाय।

1.13 मूल्य अथवा कीमत

मूल्य का आशय

मूल्य अथवा कीमत वस्तु–विक्रय–अनुबंध का एक आवश्यक लक्षण है। बिना मूल्य के किसी भी वस्तु का विक्रय नही किया जा सकता। **धारा 2(10)** के अनुसार 'मूल्य' से आशय वस्तु–विक्रय के लिये मुद्रा रूपी प्रतिफल से है। यदि वस्तुओं के स्वामित्व का हस्तान्तरण बिना प्रतिफल के किया जाता है, तो इसे 'दान' कहते है। यह प्रतिफल मुद्रा में ही होना चाहिए। यदि प्रतिफल मुद्रा में न होकर अन्य वस्तु में है, तो उसे 'वस्तु–विनिमय' कहा जायेगा। इस प्रकार 'मूल्य' के निम्न तीन लक्षण बताये जा सकते है : (i) मूल्य मुद्रा में ही होनी चाहिए। (ii) मूल्य निश्चित होना चाहिए। (iii) मूल्य वास्तविक होना चाहिए।

मूल्य निर्धारण करने की विधियाँ

विक्रय–अनुबन्ध में मूल्य के निर्धारण की निम्नलिखित पाँच विधियाँ है :

(1) अनुबन्ध द्वारा मूल्य निर्धारण–

विक्रय–अनुबन्ध करते समय पक्षकारों को यह स्वतंत्रता रहती है कि वे वस्तु का कुछ भी मूल्य निर्धारित कर लें।

(2) अनुबन्ध द्वारा प्रस्तावित विधि से मूल्य निर्धारण

विक्रय–अनुबन्ध करते समय क्रेता और विक्रेता वस्तु का मूल्य बाद में किसी विधि द्वारा तय करने के लिए छोड़ सकते है।

(3) पक्षकारों के पारस्परिक व्यवहार द्वारा मूल्य निर्धारण

यदि विक्रय–अनुबन्ध में वस्तु का कोई स्पष्ट मूल्य न दिया गया हो और न ही अनुबन्ध में मूल्य के निर्धारण की कोई विधि ही दी गई हो, तो मूल्य का निर्धारण पक्षकारों के पारस्परिक व्यवहार द्वारा किया जा सकता है।

(4) उचित मूल्य का निर्धारण

यदि उपर्यक्त विधियों द्वारा मूल्य का निर्धारण नहीं किया गया है, और विक्रेता ने क्रेता को माल बेच दिया है तथा क्रेता ने माल को स्वीकार कर लिया है, तो क्रेता, विक्रेता को माल का उचित मूल्य देने के लिए बाध्य होगा। उचित मूल्य क्या है ? यह मामले की विभिन्न परिस्थितियों पर निर्भर करता है। अधिकतर बाजार–मूल्य को उचित मूल्य माना जाता है।

(5) किसी तृतीय पक्षकार द्वारा मूल्य निर्धारण

विक्रय के अनुबन्ध मे यह शर्त हो सकती है कि मूल्य का निर्धारण किसी तीसरे पक्षकार द्वारा होगा। ऐसी दशा मे क्रेता वह मूल्य देने के लिए बाध्य होता है जो कि एक तृतीय पक्षकार द्वारा निर्धारित किया गया हो। यदि अनुबन्ध के पक्षकारों की गलती से तृतीय पक्षकार मूल्य का निर्धारण नहीं कर पाता है, तो दोषी पक्षकार क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी होता है और निर्दोष पक्षकार दोषी पक्षकार पर क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

1.14 मूल्य के भुगतान की रीति

क्रेता द्वारा मूल्य का भुगतान देश की प्रचलित मुद्रा में ही किया जाना चाहिए। विक्रेता देश में प्रचलित मुद्रा के अतिरिक्त अन्य किसी रूप में मूल्यों को

स्वीकार करने के लिए बाध्य नही किया जा सकता। लेकिन यदि विक्रेता अन्य किसी रीति से मूल्य को स्वीकार करने के लिए किसी स्पष्ट या गर्भित ठहराव के अन्तर्गत राजी हो जाता है, तो ऐसा सम्भव है। मूल्य का भुगतान विधिग्राह्म मुद्रा में ही किया जाना चाहिये। विक्रेता, चेक, बिल अथवा हुण्डी के मूल्य को स्वीकार करने के लिए बाध्य नही किया जा सकता।

विक्रेता को मूल्य में राजकीय कर में वृद्धि या कमी को जोड़ने या घटाने का अधिकार होता है। यदि मूल्य निश्चित करने के बाद राजकीय करों में वृद्धि हो जाती है, तो विक्रेता बढ़ें हुए कर की सीमा तक मूल्य को बढ़ा सकता है, और यदि करों मे कमी हो जाती है, तो वह मूल्य मे उतनी कमी भी कर सकता है।

यदि अनुबन्ध करते समय क्रेता द्वारा विक्रेता को कोई अग्रिम राशि दी गई हो, तो अनुबन्ध पूरा होने पर मूल्यों में अग्रिम राशि को विक्रेता द्वारा समायोजित किया जाना चाहिए। यदि क्रेता की गलती से अनुबन्ध पूरा नही होता, तो विक्रेता द्वारा यह अग्रिम राशि जब्त की जा सकती है।

1.15 शर्तें तथा आश्वासन

वस्तु–विक्रय अधिनियम 1930 की धारा 12(4) के अनुसार, "विक्रय–अनुबन्ध में कोई बन्धन शर्त है अथवा आश्वासन यह प्रत्येक अनुबंध की बनावट पर निर्भर करता है। कोई बन्धन शर्त भी हो सकता है यद्यपि अनुबंध में आश्वासन कहा गया है।"

1.16 बन्धन का अर्थ

विक्रय अनुबंध की धारा 12(1) के अनुसार, "किसी विक्रय अनुबंध के माल से सम्बन्धित बन्धन शर्त अथवा आश्वासन के रूप में हो सकता है।" इसका प्रदर्शन निम्नलिखित चार्ट से स्पष्ट है :

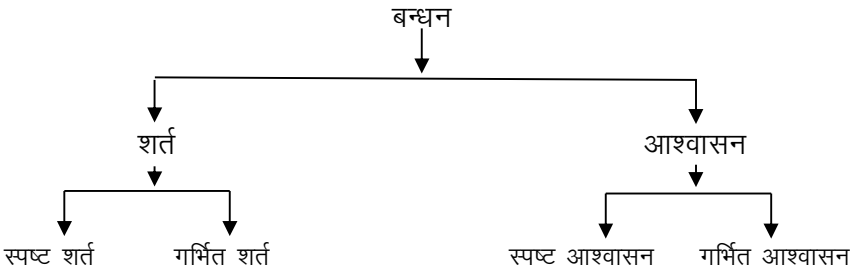

उपर्युक्त का स्पष्टीकरण निम्नलिखित रूप मे होगा।

शर्त का अर्थ– धारा 12(2) के अनुसार "शर्त एक ऐसा बन्धन है, जो अनुबंध के मुख्य आशय के लिए परम, आवश्यक है और जिसका खण्डन होने पर अनुबंध का परित्याग करने का अधिकार उत्पन्न हो जाता है।"

उपर्यक्त परिभाषा में तीन तथ्य स्पष्ट है :

(1) शर्त एक बंधन है।

(2) यह बंधन मुख्य उद्देश्य के लिए आवश्यक है।

(3) बंधन के भंग होने पर अनुबंध भंग होगा।

उदाहरण

'अ' अपनी हीरो होन्डा स्प्लेन्डर प्लस मोटर साईकिल 'ब' को 25,000 रू0 मे बेचने का प्रस्ताव करता है। 'ब' कहता है कि यदि बाइक 2005 या उसके बाद की बनी

है तो मैं खरीद लूँगा। बाइक देखने पर पता चला कि यह 2002 की बनी थी यहाँ 'ब' बाइक खरीदने से इनकार कर सकता है।

1.17 आश्वासन का अर्थ

धारा 12(3) के अनुसार, "आश्वासन एक ऐसा बन्धन है जो अनुबन्ध के मुख्य आशय के लिए समपार्श्विक है ; जिसका खण्डन क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकार तो उत्पन्न करता है, किन्तु माल को अस्वीकृत करने और अनुबन्ध का प्ररित्याग करने का अधिकार उत्पन्न नहीं करता।"

विवेचना– उपर्युक्त परिभाषा की विवेचना करने पर इसके निम्नलिखित चार तत्व होते है :

(1) आश्वासन एक बन्धन होता है।

(2) यह अनुबन्ध के मुख्य उद्देश्य के लिए आवश्यक नही है बल्कि समपार्श्विक है।

(3) आश्वासन का भंग होने की दशा में माल को अस्वीकार करने तथा अनुबन्ध को भंग करने का अधिकार नहीं है।

(4) आश्वासन के भंग होने की दशा में केवल क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत किया जा सकता है।

उदाहरण– 'अ' 'ब' से अनुबंध करता है कि यदि तुम्हारी हीरो होन्डा मोटर साइकिल अच्छी हालत मे है तो मै, उसे 30,000 रू0 में खरीद लूँगा। अनुबंध के निष्पादन के समय पाया गया कि बाइक चालू अवस्था मे थी किन्तु उसका रंग, खराब हो रहा था। यहाँ 'अ' अनुबंध को व्यर्थ घोषित नही कर सकता क्योकिं रंग का खराब होना आवश्यक शर्त नही थी। अ केवल क्षतिपूर्ति कर सकता है। यहाँ आश्वासन भंग हुआ है।

1.18 शर्त तथा आश्वासन में अन्तर

अन्तर निम्न तालिका से स्पष्ट है–

क्र0सं0	अन्तर का आधार	शर्त	आश्वासन
1.	**अनुबन्ध के मुख्य आशय की पूर्ति के लिए आवश्यकता**	शर्त अनुबन्ध के मुख्य आशय की पूर्ति के लिए परम आवश्यक है।	यह अनुबन्ध के मुख्य आशय की पूर्ति के लिए समपार्श्विक (अर्थात् सहायक) है।
2.	**भंग होने की दशा में**	शर्त भंग करने की दशा में पीड़ित पक्षकार को अनुबन्ध समाप्त करने का अधिकार होता है।	इसमें पीड़ित पक्षकार को केवल क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार होता है। वह अनुबन्ध को भंग नहीं कर सकता।
3.	**अनुबन्ध के निष्पादन से मुक्ति**	शर्त भंग होने की दशा में पीड़ित पक्षकार को अनुबन्ध के	आश्वासन भंग की दशा में पीड़ित पक्षकार को निष्पादन से मुक्ति नहीं मिल सकती है।

		निष्पादन से मुक्ति मिल सकती है।	
4.	**स्वत्व का हस्तान्तरण**	शर्त के पालन किये बिना स्वत्व का हस्तान्तरण नहीं हो सकता है।	आश्वासन के पालन के बिना ही स्वत्व का हस्तान्तरण हो सकता है।
5.	**शर्त–भंग और आश्वासन**	कुछ परिस्थितियों में शर्त–भंग को आश्वासन का भंग माना जा सकता है।	आश्वासन भंग को शर्त भंग नही माना जा सकता है।
6.	**प्रतिफल पर प्रभाव**	शर्त का सम्पूर्ण प्रतिफल पर प्रभाव पड़ता है।	आश्वासन का प्रतिफल के किसी एक–एक भाग पर ही प्रभाव पड़ता है।
7.	**संख्या**	गर्भित आश्वासनों की तुलना में गर्भित शर्तों की संख्या अधिक है।	गर्भित शर्तों की तुलना में गर्भित आश्वासनों की संख्या कम है।

1.19 गर्भित शर्त तथा आश्वासन

शर्तें तथा आश्वासन स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकते है। जब सम्बन्धित पक्षकार स्पष्ट रूप से उसका वर्णन करते हैं तो वे स्पष्ट शर्तें तथा स्पष्ट आश्वासन कहलाते है। स्पष्ट शर्तें तथा स्पष्ट आश्वासन लिखित या मौखिक रूप से वर्णित होते है। इसके विपरीत गर्भित शर्ते तथा गर्भित आश्वासन वे होते है जिनका लिखित या मौखिक रूप से वर्णन किया जाना अनिवार्य नहीं होता, क्योंकि वे स्वयं अनुबन्ध पर लागू होते हैं, अर्थात् राजनियम स्वयं उनका होना मान लेता है। इनका विस्तृत वर्णन नीचे किया गया है।

गर्भित शर्तें

माल के विक्रय के अनुबन्ध में निम्नलिखित गर्भित शर्तें होती है :

1. **माल के स्वत्व अथवा अधिकार सम्बन्धी शर्तें–** प्रत्येक विक्रय अनुबंध में, जब तक कि अनुबंध की परिस्थितियों से कोई विपरीत आशय प्रकट न होता हो, यह गर्भित शर्त रहती है कि विक्रेता को–(अ) 'विक्रय की दशा में' माल के बेचने का अधिकार प्राप्त है, तथा (ब) 'विक्रय के ठहराव की दशा में, स्वामित्व के हस्तान्तरण के समय माल के बेचने का अधिकार प्राप्त है।'

2. **वर्णन द्वारा विक्रय के सम्बन्ध में– जहाँ वर्णन द्वारा विक्रय अनुबन्ध हुआ हो, वहाँ पर यह गर्भित शर्त है कि (अ) माल वर्णन से मेल खायेगा, तथा (ब) यदि माल का विक्रय नमूने तथा वर्णन दोनों के द्वारा किया गया हो, तो केवल यह पर्याप्त नहीं है कि अधिकांश माल नमूने से मेल खाता है अर्थात माल का नमूने तथा वर्णन दोनों से मेल खाना परम आवश्यक है। लार्ड ब्लेकवर्न** के अनुसार, "**यदि आप मटर बेचने का अनुबन्ध करते है तो दूसरे पक्ष को सेम की फली**

खरीदने के लिए बाध्य नहीं कर सकते।" उदाहरण के लिए, 'अ' ने 'ब' को 20 किलो बीकानेरी भुजिया बेचने का अनुबन्ध किया तथा साथ में उसका नमूना भी दिखाया। 'अ', 'ब' को 20 किलो भुजिया बेचता है तो दिखाये गये नमूनों से तो मिलती–जुलती है, किन्तु बीकानेर की नहीं है। ऐसी दशा में 'ब' इसे शर्त–भंग मानकर अनुबन्ध को समाप्त कर सकता है।

3. **माल की किस्म अथवा उपयुक्तता के सम्बन्ध में–** सामान्यतः किसी भी विक्रय अनुबन्ध में ऐसी कोई भी गर्भित शर्त अथवा आश्वासन नहीं रहता कि माल किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपयुक्त होगा जिसके लिए कि वह खरीदा जा रहा है। इसमें **क्रेता की सावधानी का नियम'** लागू होता है। इस नियम का आशय यह है कि माल क्रय करते समय क्रेता को स्वयं यह देख लेना चाहिए कि वह उसके आशय अथवा उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता, तो विक्रेता उसे वापस लेने के लिए बाध्य नहीं है। परन्तु यदि क्रेता स्पष्ट अथवा गर्भित रूप से विक्रेता को यह बता दे कि वह अमुक विशिष्ट आशय, उद्देश्य के लिए माल खरीद रहा है और वह यह प्रकट कर दे कि इसके लिए वह विक्रेता की दक्षता तथा कुशलता पर विश्वास करता है और यदि माल इस प्रकार का है जिसे विक्रेता अपने कारोबार के सामान्य क्रम में बेचता है (चाहे वह उसका उप्पादन या निर्माता हो अथवा नहीं), तो अनुबन्ध मे इसे गर्भित शर्त का होना माना जायेगा कि माल उस विशिष्ट आशय अथवा उद्देश्य के लिए उपयुक्त होगा। उदाहरण के लिए, 'अ' किसी दवा विक्रेता से जुकाम ठीक करने की दवा देने के लिए कहता है। यहाँ पर गर्भित शर्त है कि दवा जुकाम ठीक करने के लिए ही होगी।

अपवाद

उपर्युक्त कथन का यह अपवाद है कि यदि विशिष्ट माल का विक्रय किसी पेटेण्ट अथवा ट्रेडमार्क के अन्तर्गत हुआ हो, तो किसी विशिष्ट आशय अथवा उद्देश्य सम्बन्धी कोई भी गर्भित शर्त नहीं होगी। उदाहरण के लिए 'ब' से 'मालिका' सिलाई की मशीन माँगता है। 'ब' उसे उक्त मशीन दे देता है। यह मशीन उसके कपड़े सीने के लिए बिल्कुल अनुपयुक्त है। ऐसी दशा में 'ब' किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि माल का विक्रय ट्रेड मार्क के अन्तर्गत हुआ है।

1. माल की व्यापार योग्यता के सम्बन्ध में

जहाँ माल वर्णन के आधार पर ऐसे विक्रेता से क्रय किया जाय जो उसी प्रकार के माल को बेचता है (चाहे वह उसका निर्माता अथवा उत्पादक है अथवा नही) तो ऐसी दशा में यह गर्भित शर्त है कि माल व्यापार योग्य होगा; किन्तु यदि क्रेता ने माल की जाँच की हो तो ऐसे दोष के लिए भी गर्भित शर्त नहीं होगी (अर्थात् विक्रेता बाध्य नहीं होगा) जो साधारण जाँच से पता लग जाने लायक हो।

2. व्यापार की रीति के सम्बन्ध में

व्यापार की रीति अनुसार भी माल के गुण, उपयुक्तता अथवा किसी विशेष आशय के लिए गर्भित शर्त हो सकता है।

3. नमूने द्वारा विक्रय के सम्बन्ध में

नमूने द्वारा विक्रय के सम्बन्ध में निम्नलिखित गर्भित शर्तें होती है :

(अ) अधिकांश माल नमूने के समान होगाः

(ब) क्रेता को नमूने के साथ तुलना करने का उचित अवसर प्राप्त होगा;

(स) माल में ऐसा कोई दोष नहीं होगा जिससे वह व्यापार–योग्य न रहे और जो नमूने की उचित जाँच के बाद भी ज्ञात न हो सके।

गर्भित आश्वासन

माल के विक्रय के अनुबन्ध में निम्नलिखित गर्भित आश्वासन होते है :

1. **माल पर शान्तिपूर्ण अधिकार एवं उपयोग का गर्भित आश्वासन–** प्रत्येक विक्रय के अनुबन्ध में जब तक कि अनुबन्ध की परिस्थितियों से कोई विपरीत आशय प्रकट न होता हो, यह गर्भित आश्वासन होता है कि माल के क्रेता को खरीदे हुए माल पर शान्तिपूर्ण ढंग से अपना अधिकार रखने तथा इच्छानुसार उपयोग करने का अधिकार होगा।

2. **माल के भार–मुक्त होने का आश्वासन–** प्रत्येक विक्रय के अनुबन्ध में, जब तक कि अनुबन्ध की परिस्थितियों से कोई विपरीत आशय प्रकट न होता, तो यह गर्भित आश्वासन होता है कि माल ऐसे तृतीय पक्षकार के भार से मुक्त होता रहेगा जो अनुबन्ध करते समय या उससे पूर्व न तो घोषित किया गया था और न जिसका क्रेता को ही ज्ञान था। उदाहरण के लिए, 'अ', 'ब' को 200 बोरे गेहूँ बेचता है वह उसे नहीं बताता कि उसने गेहूँ के बोरों की साख पर 'स' से 4,000रू. का तथा 500 रू. ब्याज के रूप में चुकाने के लिए बाध्य होता है। ऐसी दशा में 'ब', 'अ' से 4,000 रू. तथा आवश्यक हर्जाना वसूल करने का अधिकारी है।

3. **व्यापार की रीति के अनुसार माल के गुण अथवा उपयुक्तता सम्बन्धी गर्भित आश्वासन–** व्यापार की रीति के अनुसार माल के गुण अथवा उपयुक्तता अथवा किसी विशेष आशय के लिए गर्भित आश्वासन हो सकता है।

4. **वस्तु की शुद्धता अथवा वास्तविकता सम्बन्धी गर्भित आश्वासन–** इण्डियन मर्केण्डाइज मार्कस अधिनियम के अनुसार विक्रय की जाने वाली वस्तुएँ शुद्ध एवं वास्तविक होनी चाहिए, नकली नहीं। यदि किसी वस्तु पर कोई व्यापारिक चिन्ह लगा है तो वस्तु के विक्रेता की ओर से यह गर्भित आश्वासन होगा कि उक्त वस्तु पर लगा व्यापारिक चिन्ह असली है।

5. **माल की खतरनाक प्रकृति को प्रकट करने के सम्बन्ध में गर्भित आश्वासन–** खतरनाक अथवा हानिप्रद माल के विक्रय के सम्बन्ध में विक्रेता का यह कर्तव्य है कि क्रेता को इस सम्बन्ध में सचेत कर दे और यह भी बता दे कि ऐसी वस्तुओं के लिए विशेष सावधानी की आवश्यकता है अन्यथा वह आश्वासन भंग का दोषी माना जायेगा और क्रेता की क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी होगा।

1.20 क्रेता सावधानी सिद्धान्त

अर्थ एवं परिभाषा–

कैवियट इम्पटर (Caveat Emptor) शब्द लैटिन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है– **'क्रेता सावधान रहें'।** यह सामान्य सिद्धान्त की बात है कि क्रेता माल खरीदते समय सावधान रहे अथार्त् वह अपने हितों की स्वयं ही रक्षा करें। इस प्रकार क्रेता को सावधानीपूर्वक क्रय करना चाहिए। वह माल को अच्छी तरह से देखभाल करके ही खरीदे। यदि वह खराब, अनुपयुक्त एवं दोषपूर्ण माल खरीद लेता है तो इसमें विक्रेता का दोष नही होगा। इस सिद्धान्त के अनुसार क्रेता का यह उत्तरदायित्व होता है कि वह माल क्रय करते समय पूर्णतः सावधान रहे तथा अपने विवेक एवं

चतुराई से काम ले। उसे माल की अच्छी तरह जाँच कर लेनी चाहिए। माल उसकी आवश्यकताओं के अनुरूप है या नहीं, यह देखने व पता लगाने का काम क्रेता का है, विक्रेता का नही। विक्रेता से यह आशा कदापि नहीं की जानी चाहिए कि अपने माल के दोषों को स्वयं ही बता दें। अपने माल के दोषों को प्रकट करना विक्रेता का उत्तरदायित्व नहीं है। यदि क्रेता माल क्रय करते समय अपनी स्वयं की बुद्धि, विवेक व कौशल पर निर्भर करता है और फिर भी माल दोषपूर्ण निकल जाता है तो इसके लिये क्रेता ही उत्तरदायी होगा। जोन्स बनाम जस्ट के विवाद में यह स्पष्ट कर दिया गया कि यदि विक्रेता द्वारा कोई कपट नहीं किया गया है तो क्रेता द्वारा क्रय किये गये माल के दोषों के लिए विक्रेता को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। **निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि क्रेता की सावधानी के सिद्धान्त के अनुसार क्रेता का यह कर्तव्य है कि वह सावधानीपूर्वक अपने विवेक को काम में लेते हुए पर्याप्त जाँच करके यथोचित गुण, किस्म व उद्देश्य के लिए ही माल खरीदे। विक्रेता का यह दायित्व नहीं है कि वह क्रेता को माल के दोषों, अवगुणों व विशिष्ट उद्देश्य के लिए अनुपयुक्तता के विषय में बताये जब तक कि यह बताना विक्रय की एक शर्त न हों।"**

अपवाद

सामान्यतः क्रेता की सावधानी का नियम लागू होता है किन्तु इसके निम्नलिखित अपवाद हैः

(1) विक्रेता को उद्देश्य प्रकट करने की दशा में– यदि क्रेता विक्रेता की किसी वस्तु को क्रय करने से पूर्व ही उस वस्तु को खरीदने के अपने उद्देश्य को स्पष्ट अथवा गर्भित रूप में प्रकट कर देता है तो क्रेता की सावधानी का सिद्धान्त लागू नहीं होगा। किन्तु इस सम्बन्ध में निम्न शर्तों को पूरा करना होगा :

(i) वस्तु को क्रय करने से पूर्व उसने क्रय का उद्देश्य विक्रय को स्पष्ट अथवा गर्भित रूप में बता दिया है।

(ii) क्रेता विक्रेता की वस्तु के विक्रय में कुशलता एवं विवेक पर विश्वास रखता हो।

(iii) वस्तु ऐसी हो जिसे विक्रेंता अपने व्यापार के दौरान बेचता हों।

(2) वर्णन द्वारा विक्रय की दशा में– यदि माल का विक्रय वर्णन के द्वारा हुआ हो तो यह गर्भित शर्त है कि माल वर्णन के अनुसार होगा। ऐसी स्थिति में माल में व्यापार योग्यता होना आवश्यक है। यहाँ पर क्रेता की सावधानी का नियम लागू नहीं होगा।

(3) व्यापार की रीति अथवा परम्परा की दशा में– कुछ अनुबन्धों में व्यापार की रीति–रिवाज तथा परम्परा के अनुसार माल की किस्म अथवा उपयुक्तता की शर्त हो सकती है। ऐसी स्थिति में क्रेता की सावधानी का सिन्द्धान्त लागू नहीं होगा।

(4) नमूने द्वारा विक्रय की दशा में– यदि माल का विक्रय नमूने द्वारा होता है तो ऐसी स्थिति में यह गर्भित शर्त है कि माल नमूने के अनुसार ही होगा। माल में ऐसा कोई भी दोष नहीं होगा जिसे साधारण जाँच से मालूम न किया जा सकता हो। यदि दोष सामान्य जाँच से ज्ञात नहीं होता है ऐसी स्थिति में माल नमूने के अनुसार न होने पर क्रेता की सावधानी का नियम लागू नही होता।

(5) कपट अथवा छिपाव की दशा में– यदि माल के विक्रय अनुबन्ध में विक्रेता ने जानबूझकर क्रेता के साथ कपट किया है तथा क्रेता की सहमति कपट द्वारा प्राप्त की है, तो क्रेता की सावधानी का सिद्धान्त लागू नहीं होगा।

(6) पेटेण्ट अथवा ट्रेडमार्क के अन्तर्गत विक्रय की दशा में– यदि किसी विशिष्ट पेटेण्ट अथवा ट्रेडमार्क के अधीन माल के विक्रय का अनुबन्ध हुआ हो तो वहाँ पर यह गर्भित शर्त नहीं होगी कि माल किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए उपयुक्त होगा। अतएव क्रेता की सावधानी का नियम लागू नहीं होगा।

(7) विक्रेता द्वारा मिथ्या वर्णन की दशा में– यदि विक्रेता विक्रय किये गये माल के सम्बन्ध में मिथ्या वर्णन करता है और क्रेता उस पर विश्वास करता है तो क्रेता की सावधानी का नियम लागू नहीं होगा।

1.21 सारांश

वस्तु विक्रय का अनुबंध एक अनुबंध है जिसके द्वारा विक्रेता एक निश्चित मूल्य के बदले माल का स्वामित्व हस्तांतरित करता है अथवा हस्तांतरण करने का ठहराव करता है। विक्रय उसे कहते है जब अनुबंध के अन्तर्गत माल का स्वामित्व विक्रेता से क्रेता को हस्तान्तरित होता है तो उस अनुबंध को विक्रय कहते है।

जब माल के स्वामित्व का हस्तांतरण भविष्य मे हो तो उसे विक्रय के लिये ठहराव कहते है। विक्रय अनुबंध में विक्रेता तथा क्रेता दो पक्ष होते है। विक्रेता जो माल बेचता है तथा क्रेता जो माल खरीदता है। विक्रय अनुबंध में माल का होना आवश्यक है। इसमें मूल्य का निर्धारण होता है जो सदैव मुद्रा में होता है। माल के स्वामित्व का हस्तांतरण भी आवश्यक है। विक्रय तथा विक्रय के ठहराव में अन्तर होता है। विक्रय अनुबंध पूर्ण होता है किन्तु विक्रय का ठहराव भविष्य के स्वामित्व हस्तांतरण पर होता है। विक्रय तथा निक्षेप में अन्तर होता है। विक्रय में स्वामित्व का हस्तातंरण सदैव के लिए होता है, जबकि निक्षेप में स्वामित्व का हस्तांतरण निश्चित समय के लिये होता है। इसी प्रकार विक्रय तथा भाड़े पर खरीद के ठहराव में अन्तर है। विक्रय में माल के स्वामित्व का हस्तांतरण तुरन्त होता है, जबकि भाड़े पर खरीद में स्वामित्व का हस्तांतरण अन्तिम किश्त पाने पर होता है।

वस्तु विक्रय के निर्माण विधि वह होती है जिसमें वस्तु विक्रय अनुबंध के रूप में प्रस्ताव तथा स्वीकृति होती है। वस्तु विक्रय अनुबंध की विषय सामग्री साधारणतः माल ही होता है। यह तीन प्रकार का होता है विद्यमान माल, भावी माल तथा संयोगिक माल। विक्रय अनुबंध मे विषय वस्तु का नष्ट होना भी महत्वपूर्ण है। अनुबंध के पूर्ण होने के पहले यदि माल नष्ट हो जाता है तो अनुबंध व्यर्थ होगा। अगर माल का कुछ हिस्सा नष्ट होता है तो क्रेता के इच्छा पर शेष बचे माल के लिए अनुबंध होगा। विक्रय अनुबंध में मूल्य निर्धारण किया जाता है तथा इस मूल्य का विक्रेता को क्रेता द्वारा मुद्रा के रूप में भुगतान करना आवश्यक है।

विक्रय अनुबंध में शर्त तथा आश्वासन का भी महत्व है। शर्त से आशय एक बंधन से है जो अनुबंध के मुख्य आशय के लिए परम आवश्यक है और जिसका खण्डन होन पर अनुबंध के परित्याग का अधिकार उत्पन्न हो जाता है, जबकि आश्वासन एक ऐसा बंधन है जो अनुबंध के मुख्य आशय के लिये समपार्श्विक है। अर्थात् इसका खण्डन होने पर क्रेता क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है। अतः इस रूप मे शर्त तथा आश्वासन में अन्तर है।

1.22 शब्दावली

वस्तु विक्रय अनुबंध– विक्रय अनुबंध वह अनुबंध है, जिसके द्वारा विक्रेता एक निश्चित मूल्य के बदले क्रेता को माल का स्वामित्व हस्तांतरित करता है, किन्तु जब माल के स्वामित्व का हस्तांतरण भविष्य में हो तो उसे वस्तु विक्रय का ठहराव कहते है।

विक्रय अनुबंध का निर्माण– किसी अन्य अनुबंध की तरह विक्रय अनुबंध के निमार्ण के लिए प्रस्ताव तथा उसकी स्वीकृति की आवश्यकता होती है। इसमें माल तथा माल के मूल्य का निर्धारण भी मुद्रा में होता है।

विषय वस्तु का नष्ट होना– विक्रय अनुबंध के सम्बन्ध में माल महत्वपूर्ण है। अनुबंध के पूर्व यदि माल पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से नष्ट हो जाता है, तो उसे वस्तु का नष्ट होना कहते है।

मूल्य– वस्तु विक्रय अनुबंध में माल का प्रतिफल मुद्रा में ही होना चाहिये। इसे ही मूल्य कहते है। यदि मुद्रा के स्थान पर वस्तु दी जाय तो उसे वस्तु विनिमय कहते है।

मूल्य का भुगतान– मूल्य का भुगतान देश में प्रचलित मुद्रा से ही होता है।

शर्त– शर्त एक बंधन है जो अनुबंध के मुख्य आशय के लिए परम आवश्यक है। इसके खण्डन होने पर अनुबंध के परित्याग का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

आश्वासन– आश्वासन एक ऐसा बंधन है जो अनुबंध के मुख्य आशय के लिए समपार्श्विक होता है तथा इसका खण्डन होने पर क्रेता विक्रेता को क्षतिपूर्ण के लिए बाध्य कर सकता है।

गर्भित शर्त तथा आश्वासन– शर्ते तथा आश्वासन स्पष्ट तब होते है जब लिखित या मौखिक रूप से वर्णित होते है। गर्भित शर्त तथा आश्वासन तब होते है जब वे राजनियम के अन्तर्गत मान्य समझे जाते है।

क्रेता सावधानी सिद्धान्त– क्रेता सावधानी सिद्धान्त से तात्पर्य है कि क्रेता स्वयं वस्तु के विषय में सावधान रहे अर्थात वह अपने हितो की रक्षा करें। इसका अर्थ यह है कि वह वस्तु को स्वयं जाँच–परख कर ले कि वस्तु उसकी आवश्यकता के अनुसार हों।

1.23 बोध प्रश्न

(अ)– इंगित करें कि निम्नलिखित वक्तव्य सही है या गलत–

(i) विक्रेता से आशय उस व्यक्ति से है जो माल बेचता है अथवा माल बेचने के लिए सहमत होता है।

(ii) विक्रय में अधिकतर हस्तांतरण होता है, स्वामितव का नही।

(iii) विक्रय एक निष्पादित अनुबंध है।

(iv) विक्रय हो जाने के पश्चात सारा जोकिम क्रेता का होता है।

(v) विक्रय के पश्चात यदि क्रेता दिवालिया हो जाता है तो विक्रेता माल को रोक सकता है।

(vi) विक्रय के पश्चात यदि विक्रेता माल की सुपुर्दगी देने से पूर्व दिवालिया हो जाय तो उनके प्रापक काके माल की सुपुर्दगी देने के लिए बाध्य किया जा सकता।

(vii) शर्त एक ऐसा बंधन है जो कि अनुबंध के मुख्य उद्देश्य के लिए आवश्यक है।

(viii) शर्त के भंग होने पर क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत किया जा सकता है।
(ix) आश्वासन के भंग होने पर अनुबंध के भंग के लिए वाद प्रस्तुत किया जा सकता है।
(x) शर्त का भंग आश्वासन का भंग माना जा सकता है।
(xi) आश्वासन का भंग शर्त का भंग नही माना जा सकता है।
(xii) विक्रय अनुबंध में स्वत्व गर्भित आश्वासन होता है।

(ब) कोष्ठक में दिये हुए उपयुक्त शब्दो से रिक्त स्थानो को भरिए–

(i) विक्रय के माल के ..... का हस्तांतरण होता है। (अधिकार/अधिकार तथा स्वामित्व दोनो)
(ii) विक्रय में यदि क्रेता मूल्य का भुगतान करने से पूर्व दिवालिया हो जाता है तो विक्रेता माल को ..... सकता है। (रोक/नही रोक)
(iii) विक्रय समाप्त हो जाने के पश्चात माल की जोखिम ..... पर होती है। (विक्रेता/क्रेता)
(iv) विक्रय ..... होता है। (शर्त रहित/ शर्त सहित)

1.24 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ)

(i) सही (ii) गलत (iii) सही (iv) सही (v) गलत (vi) गलत (vii) सही (viii) सही (ix) गलत (x) सही (xi) सही (xii) गलत।

(ब)

(उत्तर– (i)– अधिकार तथा स्वामित्व दोनो, (ii) नही रोक, (iii) क्रेता (iv) शर्त रहित)

1.25 स्वपरख प्रश्न

1. विक्रय अनुबंध क्या है ? इसके लक्षणों को बताइयें।
2. विक्रय अनुबंध के अन्तर्गत माल की परिभाषा एवं उसके प्रकार बताइये।
3. विक्रय तथा विक्रय के ठहराव में क्या अन्तर है।
4. मूल्य से क्या आशय है ? मूल्य निर्धारण सम्बन्धी नियमों को बताइये।
5. शर्त क्या है ? गर्भित शर्त को उदाहरण सहित बताइये।
6. शर्त तथा आश्वासन में अन्तर बताइये।
7. क्रेता सावधानी सिद्धान्त से क्या आशय है ? इस नियम के अपवाद बताइये।

1.26 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws: Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (p) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law: Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law: K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई 2 विक्रय अनुबंध का निष्पादन, स्वत्व का हस्तांतरण तथा अदत्त विक्रेता

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 विक्रय अनुबंध के निष्पादन का अर्थ
2.3 विक्रेता के कर्त्तव्य
2.4 विक्रेता के अधिकार
2.5 क्रेता के कर्त्तव्य
2.6 क्रेता के अधिकार
2.7 माल की सुपुर्दगी
2.8 सुपुर्दगी के नियम
2.9 माल के स्वामित्व (स्वत्व) का हस्तान्तरण
2.10 अदत्त विक्रेता का अर्थ
2.11 अदत्त विक्रेता के लक्षण
2.12 अदत्त विक्रेता के अधिकार
2.13 क्रेता के विरूद्ध अधिकार
2.14 माल के विरूद्ध अधिकार
2.15 ग्रहणाधिकार अथवा विशेषाधिकार
2.16 माल को मार्ग मे रोकने का अधिकार
2.17 माल को पुनः बेचने का अधिकार
2.18 विक्रय अनुबंध भंग के लिए वाद
2.19 नीलाम द्वारा विक्रय
2.20 सारांश
2.21 शब्दावली
2.22 बोध प्रश्न
2.23 बोध प्रश्न के उत्तर
2.24 स्वपरख प्रश्न
2.25 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- विक्रय अनुबन्ध के निष्पादन के अर्थ का वर्णन कर सकें ।
- विक्रेता तथा क्रेता के कर्त्तव्य को बता सकें ।
- माल के मूल्य के भुगतान तथा सुपुर्दगी सम्बन्धी शर्ते एक साथ पूरी होने को स्पष्ट कर सकें ।
- माल की सुपुर्दगी का अर्थ स्पष्ट कर सकें ।
- क्रेता द्वारा माल की स्वीकृति का वर्णन कर सकें ।
- माल के अधिकार के हस्तान्तरण के अर्थ को बता सकें ।
- अदत्त विक्रेता का अर्थ बता सकें ।
- अदत्त विक्रेता के अधिकार को स्पष्ट कर सकें।

2.1 प्रस्तावना

इकाई 11 में वस्तु विक्रय अनुबन्ध के सम्बन्ध में आप पढ़ चुके है। अगला महत्वपूर्ण सन्दर्भ वस्तु विक्रय अनुबन्ध के निष्पादन के सम्बन्ध मे है। इस सन्दर्भ में विक्रेता तथा क्रेता के कर्त्तव्य को स्पष्ट किया गया है। वस्तु विक्रय अनुबन्ध के निष्पादन मे माल के सुपुर्दगी सम्बन्धी नियम को स्पष्ट किया गया है, इसमें क्रेता द्वारा माल की स्वीकृति को बताया गया है। यदि माल के मूल्य का पूर्ण भुगतान विक्रेता को नही हुआ है तो उसे अदत्त विक्रेता कहा जायेगा। इस सन्दर्भ में यह भी समझाया गया है कि इस तरह के अदत्त विक्रेता के माल के विरूद्ध अधिकार होते हैं। इसमें अदत्त विक्रेता के माल पर विशेषाधिकार का भी वर्णन किया गया है।

2.2 वस्तु विक्रय अनुबन्ध के निष्पादन का अर्थ

वस्तु विक्रय के अनुबंध का निष्पादन हेतु "भुगतान तथा सुपुर्दगी एक साथ पूरी होनी चाहिये"। इसका अर्थ यह है कि निष्पादन में यह नितांत आवश्यक है क्रेता तथा विक्रेता दो अपने–अपने कर्त्तव्यो का पालन करे। दोनों मे से कोई कभी ऐसा कार्य न करे कि जो उसके अधिकार की सीमा के बाहर हो।

2.3 विक्रेता के कर्त्तव्य

विक्रेता का कर्त्तव्य है कि विक्रय के अनुबंध की शर्तो के अनुसार माल की सुपुर्दगी दे। धारा 31 के अनुसार क्रेता के दो कर्त्तव्य है–

(i) क्रेता माल की सुपुर्दगी ले।

(ii) वह माल के मूल्य का भुगतान करे।

इस सम्बन्ध मे सुपुर्दगी का अर्थ है एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को स्वेच्छापूर्वक माल का हस्तांतरण होता है। माल के भौतिक सुपुर्दगी को वास्तविक सुपुर्दगी कहते है। जब माल विक्रेता की ओर से किसी अन्य के पास रहे तो रचनात्मक सुपुर्दगी होती है। सुपुर्दगी के लिए माल पर अधिकार एवं नियंत्रण आवश्यक है। कभी–कभी आंशिक सुपुर्दगी भी होती है। उदाहरण के लिए यदि विक्रेता खेत के घास के एक हिस्से को बेचता है सम्पूर्ण खेत के घास को नही बेचता तो उसे आंशिक सुपुर्दगी कहते है।

2.4 विक्रेता के अधिकार

विक्रेता के निम्नलिखित अधिकार है–

(i) मूल्य प्राप्त करने का अधिकार– धारा 32 के अनुसार माल का विक्रेता क्रेता को सुपुर्द किये जाने वाले माल के लिए मूल्य प्राप्त करने का अधिकारी है।

(ii) मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकार– धारा 55(1) के अनुसार जहॉ विक्रय अनुबन्ध के अन्तर्गत माल का स्वामित्व क्रेता को मिल चुका है अथवा क्रेता दोषपूर्ण ढंग से अनुबन्ध की शर्तो के अनुसार माल का मूल्य चुकाने की उपेक्षा अथवा इन्कार करता है, तो विक्रेता माल के मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत करने का अधिकारी है।

(iii) अस्वीकृति के लिए क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार– धारा 56 के अनुसार जहॉ क्रेता दो सम्पूर्ण ढंग से माल की स्वीकृति अथवा मूल्य चुकाने मे

उपेक्षा एवं इन्कार करता है, तो विक्रेता माल की अस्वीकृति के लिए क्षतिपूर्ति का वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(iv) विशिष्ट निष्पादन– विक्रेता को अनुबन्ध का विशिष्ट निष्पादन करने का अधिकार है।

(v) विशिष्ट क्षतिपूर्ति के रूप में ब्याज प्राप्त करने का अधिकार– विक्रेता माल के मूल्य पर ब्याज प्राप्त करने का उस समय से अधिकारी है जिस तिथि को माल सुपुर्द किया गया था अथवा भुगतान देय था।

2.5 क्रेता के कर्तव्य

क्रेता का कर्त्तव्य है कि वह माल की सुपुर्दगी ले। माल की सुपुर्दगी लेने पर माल का जोखिम अब क्रेता पर आ जायेगा। अब क्रेता का कर्त्तव्य होगा कि माल के मूल्य का भुगतान करें।

2.6 क्रेता के अधिकार

क्रेता के निम्नलिखित अधिकार हैं–

(i) माल की सुपुर्दगी लेने का अधिकार– धारा 31 के अनुसार क्रेता को माल की सुपुर्दगी लेने का मूलभूत अधिकार है।

(ii) गलत मात्रा की सुपुर्दगी की दशा में– धारा 32 के अनुसार विक्रेता द्वारा माल की गलत मात्रा में सुपुदर्गी की दशा में क्रेता का यह अधिकार है कि वह चाहे तो उसे स्वीकार करे अथवा अस्वीकार करें।

(iii) माल की परीक्षा करने का अधिकार– यदि क्रेता को ऐसा माल सुपुर्द किया गया है, जिसे उसने परीक्षण नही किया है, तो तब तक माल को स्वीकार नहीं किया जायेगा जब तक वह माल का परीक्षण न कर लें।

(iv) सुपुर्दगी प्राप्त न होने पर क्षतिपूर्ति का अधिकार– धारा 57 के अनुसार जहॉ विक्रेता दोषपूर्ण ढंग से माल की सुपुर्दगी देने में उपेक्षा अथवा इन्कार करता है, तो क्रेता क्षतिपूर्ति के लिये वाद प्रस्तुत कर सकता है।

2.7 माल की सुपुर्दगी

विक्रेता को माल के मूल्य मिल जाने के पश्चात् उसका कर्त्तव्य है कि वह माल की सुपुर्दगी क्रेता को कर दें। सुपुर्दगी का अर्थ है कि, **"एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को स्वेच्छापूर्वक माल का हस्तान्तरण सुपुदर्गी कहलाता है।"**

2.8 सुपुर्दगी के नियम

सुपुर्दगी के नियम निम्नलिखित हैं:

1 **सुपुदर्गी का ढंग–** यह प्रश्न कि विक्रेता को माल के क्रेता के पास भेजना है अथवा क्रेता को स्वयं जाकर सुपुर्दगी प्राप्त करनी है, यह बात पक्षकारों के अनुबन्ध पर निर्भर करती है, जो स्पष्ट अथवा गर्भित हो सकती है। ऐसे किसी अनुबन्ध के अभाव में सुपुर्दगी का ढंग व्यापार की रीति के अनुसार निश्चित किया जाता है।

2 **सुपुर्दगी का स्थान–** साधारणतः अनुबन्ध में सुपुर्दगी का स्थान दिया जाता है। अतः जब अनुबन्ध में स्थान दिया हो, तो विक्रेता का यह कर्तव्य है कि कार्य के दिन तथा कार्य के समय के भीतर ही उक्त स्थान पर सुपुर्दगी दे।

3 **सुपुर्दगी का समय–** किसी स्पष्ट अनुबन्ध के अभाव में विक्रेता माल को उस समय तक सुपुर्द करने के लिए बाध्य नहीं है, जब तक कि क्रेता सुपुर्दगी के लिए आवेदन या मांग न करें।

4 **माल का तीसरे व्यक्ति के अधिकार में होना–** जब बिक्री के समय माल किसी तीसरे व्यक्ति के अधिकार में है, तो जब तक यह तीसरा व्यक्ति माल को क्रेता की तरफ से रखने की सहमति प्रदान प्रदान न कर दे सुपुर्दगी नहीं मानी जायेगी। यह रचनात्मक सुपुर्दगी होती है। माल के अधिकार सम्बन्धी प्रलेखों का हस्तान्तरण भी सुपुर्दगी ही माना जाता है।

5 **सुपुर्दगी का व्यय अथवा लागत–** सुपुर्दगी का खर्च विक्रेता को सहन करना पड़ेगा अथवा यदि अनुबन्ध में स्पष्ट रूप से तय हो गया है कि क्रेता को ऐसे व्ययों को सहन करना होगा। किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में माल सुपुर्दगी योग्य स्थिति में लाने तथा इससे सम्बद्ध सभी व्यय विक्रेता को करने पड़ेंगे।

6 **गलत मात्रा में माल की सुपुर्दगी– (क)** जब विक्रेता, क्रेता को जितना माल भेजने का अनुबन्ध हुआ है उससे कम माल भेजता है, तो क्रेता उसे लेने से इन्कार कर सकता है, पर जब क्रेता इस तरह सुपुर्द किये गये माल को स्वीकार कर लेता है तो उसे अनुबन्ध की दर के अनुसार मूल्य का भुगतान करना होगा। **'अ', 'ब'** को 2,000 मीटर धागे की रील (प्रत्येक रील में 200 मीटर धागा) विक्रय करता है। सुपुर्दगी लेने के बाद **'ब'** को ज्ञात होता है कि रीलों में धागा 200 मीटर से कम है और यह कमी औसत रूप से 6 प्रतिशत है। **'ब'** माल को वापस कर सकता है, परन्तु अगर वह नहीं लौटाता है तो उसे तय किये हुए मूल्य की दर से नाप के अनुसार भुगतान करना होगा।

7 **किस्तो मे सुपुर्दगी–** किसी विशेष अनुबंध के अभाव में **क्रेता किस्तों में सुपुर्दगी लेने के लिए बाध्य नहीं है।** इसका अभिप्राय यह है कि किस्तों में सुपुर्दगी उसी समय दी एवं मांगी जा सकती है जबकि अनुबन्ध में ऐसी व्यवस्था की गयी है।

8 **वाहक को सुपुर्दगी–** जब कभी माल वाहक द्वारा जैसे– रेलवे बिल्टी या जहाज द्वारा भेजा जाता है तो उसे वाहक द्वारा माल की सुपुर्दगी मानते है। इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण केस लॉ (वादविधि) का उल्लेख करना आवश्यक है, जो निम्नलिखित है–

केस लॉ– 'शंकरदास बनाम **भानामल (1926) लाहौर'** के विवाद में विक्रेता ने तेल बेचने का अनुबन्ध किया तथा उसका मूल्य क्रेता से प्राप्त करके अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार माल रेलवे अधिकारियों को सुपुर्द करके उसकी रेलवे बिल्टी को क्रेता के पास भेज दिया। न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया कि क्रेता को माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण हो चुका है।

वाहक द्वारा माल की सुपुर्दगी के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम है–

(1) जब विक्रय अनुबन्ध के अनुसार विक्रेता को माल को क्रेता के पास भेजने का अधिकार है, तो ऐसी दशा में किसी एक वाहक को, जिसका नाम क्रेता के द्वारा बताया गया है क्रेता के पास माल पहुंचाने के उद्देश्य से माल की सुपुर्दगी देना, क्रेता को सुपुर्दगी देना समझा जायेगा।

(2) क्रेता द्वारा दिये गये किसी विपरीत अधिकार के अभाव में, विक्रेता, क्रेता की ओर से वाहक के साथ ऐसा अनुबंध कर सकता है जो कि माल की प्रकृति तथा मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उचित हो। यदि विक्रेता ऐसा करने में असावधानी करता है तथा माल मार्ग में खो जाता है अथवा उसे कोई हानि पहुँचती है, तो क्रेता ऐसे वाहक को सुपुर्दगी देने को अपने लिए सुपुर्दगी मानने से इन्कार कर सकता है, अथवा ऐसी हानि के लिए विक्रेता को उत्तरदायी ठहरा सकता है।

(3) किसी विपरीत ठहराव के अभाव में, यदि माल विक्रेता द्वारा क्रेता को ऐसी स्थिति में जलमार्ग से भेजा जाय जिसमें माल का बीमा कराना आवश्यक हो, तो विक्रेता को ऐसी सूचना क्रेता को देनी चाहिए जिससे कि वह आसानी से माल का बीमा करा सके, परन्तु यदि विक्रेता इस प्रकार की सूचना नहीं देता तो सामुद्रिक यात्रा के समय माल विक्रेता की जोखिम पर समझा जायेगा।

अतः किसी विशिष्ट अनुबन्ध के अभाव में वाहक को सुपुर्दगी दे देने के बाद माल का स्वामित्व मार्ग में होने वाली जोखिम के साथ क्रेता के पास चला जाता है।

9 क्रेता को माल की जांच करने का अधिकार

जब क्रेता को ऐसे माल की सुपुर्दगी दी जाती है जिसकी उसने पहले कभी जांच नहीं की है, तो माल उसके द्वारा तब तक स्वीकृत नहीं माना जाता जब तक कि उसे जांच करने का यथोचित अवसर प्राप्त न हो जाय, जिससे कि वह यह निश्चित कर सके कि माल अनुबन्ध के अनुसार है या नहीं। ऐसा अवसर देने के बाद यदि क्रेता माल की जांच नहीं करता तो माल क्रेता द्वारा स्वीकार किया गया माना जाता है।

किसी विपरीत ठहराव के अभाव में जब विक्रेता क्रेता को माल की सुपुर्दगी देता है, तो क्रेता के अनुरोध पर यह निश्चित करने के उद्देश्य से की माल अनुबंध के अनुसार है या नहीं, विक्रेता माल की जांच के लिए यथोचित अवसर प्रदान करने के लिए बाध्य है।

2.9 माल के स्वामित्व (स्वत्व) का हस्तान्तरण

माल के अधिकार के हस्तान्तरण से आशय– माल के स्वत्व या अधिकार के हस्तान्तरण से आश्य, '**माल के स्वामित्व के अधिकार के हस्तान्तरण'** से है, केवल '**माल के हस्तान्तरण'** से नही। 'माल के स्वामित्व या स्वत्व के हस्तान्तरण' और 'माल के हस्तान्तरण' में बहुत अन्तर है। **यहां हम यह अध्ययन करेंगे कि माल के स्वामित्व या स्वत्व का हस्तान्तरण किसके द्वारा वैध है।**

माल का विक्रय ऐसे व्यक्ति द्वारा, जो माल का स्वामी नहीं है– स्वामित्व के हस्तान्तरण के सम्बन्ध में यह स्पष्ट है कि माल का स्वामी विक्रेता होता है। इसी कारण विक्रेता ही '**माल के स्वामित्व**' का क्रेता को हस्तांतरण करने की योग्यता रखता है। प्रायः विक्रेता वही माल बेचते है, जिसे बेचने का उन्हें अधिकार होता है, परन्तु कभी–कभी विक्रेता चोरी का माल क्रेता को बेचता है, अथवा कोई एजेण्ट अपने अधिकार की सीमा के बाहर किसी माल का विक्रय कर देता है। इन दोनों ही परिस्थितियों में विक्रेता माल का वास्तविक स्वामी नहीं होता। **अब प्रश्न यह उठता है कि ऐसी दशा में किस पक्षकार को माल के मूल्य की हानि सहन करनी पड़ेगी :**

1 क्या वास्तविक स्वामी सदैव के लिए माल से वंचित हो जायेगा ?
अथवा
2 क्या निर्दोष क्रेता हानि को सहन करेगा ?
3 क्या दोषी विक्रेता हर्जाना देगा ?

ऐसी परिस्थितियों मे, यदि विक्रेता (जो कि माल का असली स्वामी नहीं है) दोषपूर्ण विक्रय के लिए माल का मूल्य निर्दोष क्रेता को वापस करने में समर्थ है तो क्रेता अपनी हानि की पूर्ति विक्रेता से ही करा सकता है, परन्तु यदि माल का विक्रेता (जो वास्तविक स्वामी नहीं है) एक दिवालिया व्यक्ति है अर्थात् इस योग्य नहीं है कि वह मूल्य का भुगतान कर सके, तो ऐसी परिस्थिति में कठिनाई यह होती है कि विक्रेता से कुछ भी वसूल नहीं किया जा सकता। **भारतीय विक्रय के अनुबंध में ऐसी स्थिति से निबटने के लिए कुछ नियम दिये गये है।**

धारा 27 के अनुसार– कोई भी क्रेता अपने माल के विक्रेता से श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता इसका आशय यह है कि यदि विक्रेता का अधिकार अच्छा है, तो क्रेता का भी अधिकार अच्छा होगा। इसके विपरीत यदि विक्रेता का अधिकार सीमित या दूषित है तो क्रेता का अधिकार भी सीमित या दूषित होगा अर्थात् क्रेता को विक्रेता से अच्छा अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता, भले ही क्रेता ने सद्विश्वास से माल खरीदा हो और उसके लिए मूल्य चुकाया हों।

धारा 27 में दिया गया उपर्युक्त नियम लैटिन भाषा के इस सिद्धान्त पर आधारित है "Nemo dat quod non habet" है जिसका अर्थ है कि **'कोई भी वह वस्तु नहीं दे सकता जो उसके अधिकार में नहीं है।'** (None can give or transfer what he does not himself possess)। इस नियम को दूसरे शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि क्रेता वस्तु के ऊपर विक्रेता से श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता। अतः यदि विक्रेता का अधिकार श्रेष्ठ है, तो क्रेता को भी श्रेष्ठ अधिकार की प्राप्ति हो जाती है।

नियम के अपवाद

नियम यह है कि विक्रेता के अधिकार के समान ही क्रेता का स्वत्व होता है अर्थात् विक्रेता के स्वत्व से अच्छा स्वत्व क्रेता प्राप्त नहीं कर सकता है, परन्तु कुछ दशाओं में क्रेता विक्रेता से अच्छा अधिकार भी प्राप्त कर सकता है। यह निम्नलिखित परिस्थितियों में हो सकता है :

(1) **अवरोध द्वारा स्वत्वाधिकार की प्राप्ति–** यदि माल का स्वामी अपने आचरण से क्रेता को यह प्रदर्शित करता है अथवा विश्वास करा देता है कि विक्रेता माल का स्वामी है अथवा स्वामी से उसे माल बेचने का अधिकार प्राप्त है तथा क्रेता को इस विश्वास पर माल क्रय करने के लिए प्रेरित करता है तो बाद में स्वामी यह नहीं कह सकता है कि विक्रेता को माल बेचने का कोई अधिकार न था। उदाहरणार्थ, **'अ'** के गोदाम में **'ब'** 100 गाठें रूई की रखी है। **'अ'** इस रूई को **'स'** को बेच देता है। विक्रय के समय **'ब'** वहीं पर उपस्थित था, परन्तु वह इस विक्रय के सम्बन्ध में मौन रहता है तथा कुछ भी नहीं कहता। यहाँ **'ब'** का आचरण यह प्रदर्शित करता है कि **'अ'** रूई का स्वामी है।

(2) **व्यापारिक एजेण्ट द्वारा विक्रय–** जब किसी व्यापारिक एजेण्ट के अधिकार में स्वामी की सहमति से माल अथवा माल सम्बन्धी अधिकार प्रपत्र हो तो व्यापार

की साधारण प्रगति में उसके द्वारा किया गया विक्रय स्वामी पर लागू होगा बशर्ते कि क्रेता ने सद्विश्वास से कार्य किया है तथा अनुबन्ध के समय उसे यह –सूचना नहीं थी कि विक्रेता को माल बेचने को कोई अधिकार नहीं है। माल के क्रेता को विक्रेता (एजेण्ट) से उत्तम अधिकार प्राप्त होगा। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित केसलॉ महत्वपूर्ण है–

फॉक्स बनाम **किंग** के वाद मे **'अ'** ने एक मोटर एक व्यापारिक एजेण्ट **'ब'** को इस शर्त पर बेचने के लिए दी थी कि मोटर एक निश्चित मूल्य से कम पर न बेची जाय। **'ब'** मोटर को निश्चित मूल्य से कम पर बेचकर बिक्री की रकम हजम कर गया। क्रेता ने मोटर सद्विश्वास के साथ **'ब'** के दोष की जानकारी न होते हुए खरीदी थी। न्यायालय ने निर्णय दिया कि **'अ'** क्रेता से मोटर वापस नहीं ले सकता।

(3) संयुक्त स्वामियों में से किसी एक के द्वारा विक्रय– यदि माल के अनेक संयुक्त स्वामियों में से किसी एक को संयुक्त स्वामियों की सहमति से माल पर एकाकी अधिकार प्राप्त है, तो माल का स्वामित्व किसी भी ऐसे व्यक्ति को हस्तान्तरित हो सकता है, जो कि माल को सद्विश्वास के साथ खरीदे तथा जिसे विक्रय अनुबन्ध करते समय यह ज्ञात न हो कि विक्रेता को विक्रय करने का कोई अधिकार नहीं हैं। उदाहरण के लिए, **'अ'** और **'ब'** एक विशिष्ट माल के संयुक्त स्वामी है। **'अ'** माल को **'ब'** के अधिकार में देता है। **'ब'** माल को **'स'** के हाथ में बेच देता है, जो सद्विश्वास के साथ इसे खरीदता है। ऐसी परिस्थिति में **'स'** को माल पर वैध अधिकार प्राप्त होगा।

(4) व्यर्थनीय अनुबन्ध के अधीन माल पर अधिकार रखने वाले व्यक्ति द्वारा विक्रय– यदि विक्रेता ने माल पर अधिकार भारतीय अनुबन्ध अधिनियम की **धारा** 19 तथा 19 (अ) क अधीन व्यर्थनीय अनुबन्ध के अन्तर्गत प्राप्त किया है तथा वह अनुबन्ध विक्रय के समय तक निरस्त नहीं किया गया है, तो क्रेता को ऐसे माल पर अच्छा अधिकार प्राप्त होगा, यदि वह सद्भावना से माल खरीदे तथा उसे विक्रेता के दोषपूर्ण अधिकार की जानकारी न हों।

(5) विक्रय के बाद माल पर अधिकार रखने वाले विक्रेता द्वारा विक्रय– जब किसी विक्रेता द्वारा माल बेच देने के बाद भी माल अथवा माल के अधिकार सम्बन्धी प्रपत्र उसके अधिकार में है और वह अथवा उसका व्यापारिक एजेण्ट माल को किसी तीसरे व्यक्ति के हाथ बेच देता है जो कि माल की सुपुर्दगी सद्विश्वास के साथ तथा पूर्व विक्रय की जानकारी न रखते हुए ले लेता है तो वह माल के ऊपर वैध अधिकार प्राप्त कर लेगा। उदाहरणार्थ, **'अ'** कुछ माल **'ब'** को बेचता है। **'ब'** माल को **'अ'** के पास कुछ समय के लिए छोड़ देता है। **'अ'** उस माल को **'स'** के हाथ बेच देता है। **'स'** सद्भावना के साथ तथा पूर्व विक्रय का ज्ञान न होते हुए माल खरीदता है। **'स'** को इस माल पर वैध अधिकार प्राप्त होगा।

(6) माल पर अधिकार रखने वाले क्रेता द्वारा विक्रय– जब क्रेता, विक्रेता की सहमति से माल का स्वामित्व हस्तांतरित होने से पहले ही माल पर अधिकार प्राप्त कर ले तथा इसके बाद माल को तीसरे व्यक्ति को बेच दे, अथवा किसी अन्य प्रकार से इसकी व्यवस्था कर दे और यदि तीसरा व्यक्ति सद्विश्वास के साथ

तथा मूल विक्रेता का वस्तु पर ग्रहणाधिकार अथवा किसी अन्य अधिकार की सूचना के बिना, माल की सुपुर्दगी ले, तो उसे माल पर वैध अधिकार प्राप्त होगा।

2.10 अदत्त विक्रेता का अर्थ

निम्नलिखित दशाओं में माल का विक्रेता अदत्त विक्रेता माना जाता है।

(1) (i) जब उसे कोई माल का पूरा भुगतान न किया गया हो अथवा न भुगतान करने का प्रस्ताव ही किया गया हो

(ii) धारा 45 (1) के अनुसार जब उसे कोई विनिमय बिल अथवा कोई विनिमय साध्य प्रलेख शर्त युक्त भुगतान के रूप में प्राप्त हुआ हो तथा वह शर्त उस प्रलेख के अप्रतिष्ठित अथवा किसी अन्य कारण से पूर्ण न हुई हों। उदाहरणार्थ–'अ', 'ब' को क्रय किये गये माल के बदले 1000 रू0 का चेक देता है किन्तु उस बैंक में प्रस्तुत करने पर 'ब' को उसका भुगतान प्राप्त नहीं होता। ऐसी दशा में 'ब' एक अदत्त विक्रेता समझा जायेगा।

(2) धारा 45 (2) के अनुसार विक्रेता शब्द में वे सभी व्यक्ति सम्मिलित किये जा सकते है, जो विक्रेता की स्थिति में हों जैसे–विक्रेता का प्रतिनिधि जिसे जहाजी बिल्टी का बेचान किया गया हो अथवा कोई प्रेषक अथवा प्रतिनिधि जिसने स्वयं मूल्य का भुगतान किया हो अथवा जो अप्रत्यक्ष रूप से मूल्य का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी हो।

अदत्त विक्रेता के सम्बन्ध में निम्नलिखित विवााद महत्वपूर्ण है–

खुशाल भाई महजी भाई पटेल बनाम मोहम्मद हुसैन रहीम वक्स के विवाद में वादी ने प्रतिवादी के यहाँ बिना किसी आदेश के माल भेजा जो उसने स्वीकार कर लिया। बाद में प्रतिवादी ने इस आधार पर माल का भुगतान करने से इन्कार कर दिया कि उसने माल का कोई आदेश नहीं दिया था। भारत के उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि प्रतिवादी द्वारा माल स्वीकार किया जाना यह मानने का पर्याप्त आधार है कि उसने माल का वास्तविक आदेश दिया था। अतः मोहम्मद हुसैन रहीम वक्स माल का भुगतान करने के लिए बाध्य है।

2.11 अदत्त विक्रेता के लक्षण

अदत्त विक्रेता के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित है–

1. ऐसा व्यक्ति जिसने दूसरे व्यक्ति को माल बेंच दिया है और माल के स्वामित्व का हस्तान्तरण हो चुका है। यह महत्वहीन है कि उसने माल की सुपुर्दगी क्रेता को दी है अथवा नहीं।

2. विक्रय किये गये माल का पूर्ण अथवा आंशिक भुगतान न हुआ हो।

3. एक बार का अदत्त विक्रेता पुनः अदत्त विक्रेता बन सकता है यदि उस विक्रेता को दिया गया विनिमय साध्य विलेख (प्रतिज्ञा पत्र, चैक अथवा विनिमय पत्र) माल की सुपुर्दगी से पूर्व ही अप्रतिष्ठित हो गया हो।

4. विक्रय किये गये माल के मूल्य के बदले अदत्त विक्रेता को चैक विनियमय पत्र अथवा प्रतिज्ञा पत्र प्राप्त हुआ हो किन्तु वह अप्रतिष्ठित हो गया हो।

2.12 अदत्त विक्रेता के अधिकार

अदत्त विक्रेता के अधिकारों को निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(अ) क्रेता के विरूद्ध अधिकार
(ब) माल के विरूद्ध अधिकार।

2.13 क्रेता के विरूद्ध अधिकार

अदत्त विक्रेता द्वारा जब माल की सुपुर्दगी क्रेता को की जाती है तो उस दशा में अदत्त विक्रेता क्रेता के विरूद्ध निम्न कानूनी अधिकारों का प्रयोग कर सकता है–

1. **मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत करना** जब–—— तक कि कोई अन्य ठहराव न हो गया हो, माल का विक्रेता माल की सुपुर्दगी देने के समय ही मूल्य का भुगतान पाने का अधिकारी है। यदि क्रेता मूल्य चुकाने में त्रुटि करता है तो विक्रेता मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

2. **क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत करना——** धारा 56 के अनुसार जब क्रेता दोषपूर्ण ढंग से माल स्वीकार करने तथा मूल्य का भुगतान करने में असावधानी करता है अथवा इन्कार करता है तो क्रेता पर ऐसी अस्वीकृति के कारण होने वाली क्षति की पूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

3. **निश्चित तिथि से पूर्व अनुबन्ध का खण्डन करने का अधिकार——** धारा 60 के अनुसार जब क्रेता सुपुर्दगी की तिथि से पूर्व ही अनुबन्ध का खण्डन कर देता है तो विक्रेता अपनी इच्छानुसार अनुबन्ध को चालू समझकर सुपुर्दगी की तिथि तक प्रतीक्षा कर सकता है अथवा उस दिन अनुबन्ध का खण्डन हुआ मान कर क्रेता पर क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

4. **ब्याज के लिए वाद प्रस्तुत करना——** धारा 61 (1) के अनुसार जब क्रेता सुपुर्दगी की तिथि से पूर्व ही अनुबन्ध का खण्डन कर देता है तो विक्रेता अपनी इच्छानुसार अनुबन्ध को चालू समझकर सुपुर्दगी की तिथि तक प्रतीक्षा कर सकता है अथवा उस दिन अनुबन्ध का खण्डन हुआ मानकर क्रेता पर क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

2.14 माल के विरूद्ध अधिकार

(i) **माल के स्वामित्व के हस्तान्तरण होने की दशा में——** जब माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित हो गया हो तो अदत्त विक्रेता को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होते हैं–

1. माल पर ग्रहणाधिकार अथवा विशेषाधिकार यदि माल उसके अधिकार में हो।
2. क्रेता के दिवालिया होने की स्थिति में मार्ग में माल को रोकने का अधिकार यदि माल उसके पास से चला गया हो तथा
3. माल को पुनः विक्रय करेन का अधिकार

2.15 ग्रहणाधिकार अथवा विशेषाधिकार

धारा 47 के अनुसार ग्रहणाधिकार से आशय माल के मूल्य प्राप्त करने तक अपने पास रोक रखने से है, अदत्त विक्रेता जिसके अधिकार में माल हों, निम्नलिखित परिस्थितियों में माल उस समय तक अपने पास रोके रख सकता है जब तक कि उसे मूल्य चुकाया न जाय अथवा प्रस्तुत न किया जाय :

(i) जब माल उधार की शर्त पर न बेचा गया हो।
(ii) जब माल उधार बेचा गया हो किन्तु उधार की अवधि समाप्त हो गयी हो।

(iii) जब क्रेता दिवालिया हो गया हो

अदत्त विक्रेता अपने ग्रहणाधिकार का प्रयोग उस समय भी कर सकता है जबकि उसके पास माल पर अधिकार क्रेता के प्रतिनिधि अथवा निक्षेपगृहीता के रूप में हो।

आंशिक सुपुर्दगी की दशा में ग्रहणाधिकार

जहाँ अदत्त विक्रेता ने माल की आंशिक सुपुर्दगी दे दी हो, तो वह शेष माल पर ग्रहणाधिकार का उपयोग कर सकता है जब तक इस तरह की आंशिक सुपुर्दगी ऐसी परिस्थितियों मे न दी गयी हो जिससे यह प्रतीत हो कि उसने ग्रहणाधिकार का परित्याग करने का ठहराव किया है।

ग्रहणाधिकार सम्बन्धी नियम

निम्नलिखित शर्तों का पालन किये जाने पर ही ग्रहणाधिकार का प्रयोग कियाा जा सकता है–

1. यदि माल का स्वामित्व विक्रेता से क्रेता को हस्तांतरित हो गया है–
2. यदि माल उधार की शर्त पर न बेचा गया हो।
3. यदि माल उधार की शर्त पर बेंचा गया हो तो उधार की अवधि समाप्त हो गई हो।
4. यदि माल वास्तविक रूप से अदत्त विक्रेता के अधिकार में हों।
5. यदि विक्रय अनुबन्ध में ग्रहणाधिकार के विरूद्ध कोई विपरीत बात न हो।
6. यदि माल के सम्पूर्ण मूल्य का भुगतान प्राप्त न हुआ हो।
7. ग्रहणाधिकार का उपयोग केवल माल के मूल्य के लिए ही किया जा सकता है, व्ययो के लिए नहीं।
8. क्रेता के दिवालिया होने पर ग्रहणाधिकार का प्रयोग किया जा सकता है।
9. ग्रहणाधिकार व्यक्तिगत अधिकार है, इसलिए यह स्वयं विक्रेता अथवा उसके एजेन्ट द्वारा प्रयोग में लाया जा सकता है तथा अन्य किसी व्यक्ति को हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता है।
10. यदि विक्रेता ने सम्पूर्ण माल में से आंशिक माल की सुपुर्दगी क्रेता को दे दी हो तो माल के शेष भाग पर, जो उसके पास है, वह अपना ग्रहणाधिकार प्रयोग कर सकता है बशर्ते कि आंशिक सुपुर्दगी का आशय सम्पूर्ण माल पर ग्रहणाधिकार का परित्याग न हो।

ग्रहणाधिकार की समाप्ति

निम्नलिखित परिस्थितियों में अदत्त विक्रेता का ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है–

1. जब वह क्रेता के पास माल पहुँचाने के उद्देश्य से तथा माल की व्यवस्था करने का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखे बिना ही अदत्त विक्रेता से सुपुर्दगी किसी वाहक अथवा अन्य किसी निक्षेपगृहीता को कर देता है।
2. जब क्रेता अथवा उसका प्रतिनिधि वैधानिक ढंग से माल पर अधिकार कर लेता है।
3. जब वह (अदत्त विक्रेता) अपने ग्रहणाधिकार का परित्याग कर देता है।

4. माल का मूल्य अदत्त विक्रेता को प्राप्त हो जाने पर उसके ग्रहणाधिकार का अन्त हो जाता है, किन्तु यदि उसने माल पर डिक्री प्राप्त कर ली है तो उसका अधिकार समाप्त नहीं होगा।
5. यदि अदत्त विक्रेता को माल की आंशिक सुपुर्दगी दे देता है और उससे यह प्रकट होता है कि उसने अपने ग्रहणाधिकार का परित्याग कर दिया है तो भी ग्रहणाधिकार समाप्त हुआ माना जाता है।
6. यदि माल का क्रेता विक्रेता को उचित रूप में यथासमय माल का भुगतान प्रस्तुत करता है किन्तु वह उसे स्वीकार नहीं करता है तो अदत्त विक्रेता का ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है।
7. यदि अदत्त विक्रेता ने अपने आचरण या शब्दों से ऐसा प्रदर्शन किया है जिससे तीसरे पक्षकार को यह विश्वास हो जाता है कि माल पर अदत्त विक्रेता का ग्रहणाधिकार नहीं है तो अवरोध द्वारा ग्रहणाधिकार समाप्त हो जाता है।
8. जब विक्रेता क्रेता को माल की सुपुर्दगी देने से अनुचित रूप से इन्कार कर देता है तो उसके इस इन्कार से विक्रय अनुबन्ध का खण्डन हो जाता हे जिसके परिणामस्वरूप उस माल पर विक्रेता का ग्रहणाधिकार भी समाप्त हो जाता है।

2.16 माल को मार्ग में रोकने का अधिकार

[धारा 50–52 के अनुसार]– यदि माल का क्रेता दिवालिया हो गया हो तो अदत्त विक्रेता जिसके अधिकार से माल निकल गया हो, माल को मार्ग में रोक सकता है और जब तक माल मार्ग में है, वह माल को अपने अधिकार में ले सकता है और जब तक उसे मूल्य न चुकाया जाय अथवा मूल्य प्रस्तुत न किया जाय तब तक वह उसे रोके रख सकता है।

मुल्ला एवं पोलक के अनुसार, 'अदत्त विक्रेता द्वारा ऐसे माल को जो क्रेता के दिवालिया हो जाने की दशा में क्रेता द्वारा माल पर वास्तविक अधिकार प्राप्त करने के पूर्व पुनः अपने अधिकार में लिए जाने के अधिकार को माल को मार्ग में रोकने को अधिकार कहते है।

इस प्रकार अदत्त विक्रेता को यह अधिकार उस समय प्राप्त होता है जब क्रेता दिवालिया हो गया हो और माल मार्ग में ही हों।

माल को मार्ग में रोकने के अधिकार के प्रयोग की शर्तें

माल को मार्ग में रोकने के अधिकार का प्रयोग करने के लिए यह आवश्यक है कि निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जायः

(i) जब माल अदत्त विक्रेता के अधिकार में न हो।

(ii) जब क्रेता दिवालिया हो चुका हो।

(iii) जब माल मार्ग में हो।

(iv) क्रेता के दिवालिया होने की सूचना अदत्त विक्रेता को प्राप्त हो गयी हो।

(v) अदत्त विक्रेता ने माल पृथक कर दिया हो अर्थात् माल क्रेता को पहुँचाने के लिए भेज दिया गया हो।

(vi) जब अदत्त विक्रेता का माल को मार्ग में रोकने का अधिकार इस अधिनियम अथवा किसी अन्य अधिनियम द्वारा समाप्त न हुआ हो।

(vii) जब विक्रेता को माल का सम्पूर्ण मूल्य न मिला हो।

(viii) जब विक्रेता से माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तांतरित हो चुका हो।

माल को मार्ग में रहने की अवधि

माल के मार्ग मे रहने की अवधि के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम लागू होते है–

1. धारा 51 (1) के अनुसार माल उस समय मार्ग में रहना समझा जाता है जब वह क्रेता को सुपुर्दगी देने के उद्देश्य से किसी वाहक अथवा अन्य निक्षेपगृहीता को दे दिया जाता है या क्रेता अथवा उसका प्रतिनिधि उसकी सुपुर्दगी प्राप्त न कर लें।

2. धारा 51 (2) के अनुसार– यदि क्रेता अथवा उसका प्रतिनिधि माल की सुपुर्दगी उसके नियत स्थान पर पहुॅचने से पूर्व ले लेता है, तो माल का मार्ग में रहना समाप्त हो जाता है।

3. धारा 51 (3) के अनुसार– यदि नियत स्थान पर पहुँचने के बाद माल का वाहक अथवा कोई अन्य निक्षेपगृहीता क्रेता या उसके एजेन्ट के सम्मुख यह स्वीकार कर लेता है कि वह उसकी ओर से माल को अपने अधिकार में रखता है और वह क्रेता अथवा उसके प्रतिनिधि के लिए निक्षेपगृहीता के रूप में माल को रखे रहता है तो माल का मार्ग में रहना समाप्त हो जाता है और इस बात का कोई महत्व नहीं रहता कि क्रेता ने किसी अन्य स्थान पर माल पहुँचाने का आदेश दिया हो।

4. धारा 51 (4) के अनुसार– यदि क्रेता माल लेने से इन्कार कर देता है और वाहक अथवा अन्य निक्षेपगृहीता माल को अपने अधिकार में रखे रहता है, तो माल का मार्ग में रहना समाप्त नहीं होता, भले ही विक्रेता ने माल को वापस लेने से इन्कार कर दिया हो।

उदाहरणार्थ– 'अ', 'ब' को 100 चाय की पेटी रेलवे से भेजता है तथा 'ब' इसे लेने से इन्कार कर देता है तथा 'अ' भी उस माल को वापस लेने से इन्कार कर देता है और इस प्रकार माल रेलवे के पास ही रहता है। यहाँ पर माल का अभी तक मार्ग में ही होना माना जायेगा।

5. जब माल किसी ऐसे जहाज को सुपुर्द कर दिया गया हो जिसे क्रेता ने किराये पर लिया हो, तो यह प्रत्येक मामले की परिस्थिति पर निर्भर करता है कि जहाज का मास्टर माल को एक वाहक के रूप में रखता है अथवा क्रेता के प्रतिनिधि के रूप में।

6. जब वाहक अथवा अन्य निक्षेपगृहीता दोषपूर्ण ढंग से क्रेता अथवा उसके प्रतिनिधि को माल की सुपुर्दगी देने से इन्कार कर देता है, तो माल का मार्ग में रहना समाप्त समझा जाता है।

7. जब क्रेता अथवा उसके प्रतिनिधि को माल की आंशिक सुपुर्दगी दे दी गयी हो तो शेष माल को मार्ग में रोका जा सकता है बशर्ते आंशिक सुपुर्दगी ऐसी परिस्थिति में न दी गयी हो, जिससे कि सम्पूर्ण माल की सुपुर्दगी देने का ठहराव प्रकट होता हो।

माल को मार्ग में किस प्रकार रोका जा सकता है ?

निम्नलिखित परिस्थितियों में माल को मार्ग में रोका जा सकता है–

1. धारा 52 (2) के अनुसार अदत्त विक्रेता माल पर वास्तविक रूप से अधिकार करके अथवा वाहक या अन्य निक्षेपगृहीता को जिसके अधिकार में माल हो अपने दावे की सूचना देकर मार्ग में अपने माल को रोकने के अधिकार का प्रयोग कर सकता है। इस प्रकार की सूचना या तो उस व्यक्ति को दी जा सकती है जिसके वास्तविक अधिकार में माल हो अथवा उसके प्रधान को दी जा सकती है।

2. जब विक्रेता द्वारा माल को मार्ग में रोकने की सूचना वाहक अथवा निक्षेपगृहीता को दी जाती है, जिसके अधिकार में माल है तो वह विक्रेता के आदेशानुसार माल की पुनः सुपुर्दगी देगा। पुनः सुपुर्दगी का व्यय विक्रेता को सहन करना पड़ेगा।

क्रेता द्वारा उप–विक्रय अथवा बन्धक का प्रभाव

धारा (53) के अनुसार क्रेता द्वारा किया गया उप–विक्रय अथवा बन्धक अदत्त विक्रेता के ग्रहणाधिकार अथवा मार्ग में रोकने के अधिकार को निम्नलिखित रूप से प्रभावित करता है–

(i) जब तक विक्रेता अपनी सहमति न दे, क्रेता के उप–विक्रय अथवा बन्धक का अदत्त विक्रेता के ग्रहणाधिकार अथवा मार्ग में रोकने के अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

(ii) विक्रेता के ग्रहणाधिकार अथवा मार्ग में रोकने के अधिकार उस समय निष्फल हो जाते है, जब क्रेता माल सम्बन्धी अधिकार पत्र निर्गमित होने अथवा वैध रूप में हस्तांतरित करने के बाद अपना अधिकार पत्र किसी ऐसे व्यक्ति के पक्ष में हस्तांतरित कर देता है, जो सद्विश्वास तथा प्रतिफल के फलस्वरूप प्राप्त करता है। ऐसी दशा में यदि हस्तान्तरण बन्धक के रूप में किया गया है, तो विक्रेता का ग्रहणाधिकार तथा मार्ग में रोकने का अधिकार के अधीन ही प्रयोग में लाया जा सकता है।

(iii) जब क्रेता माल का अधिकार पत्र बन्धक के रूप में रख कर माल को हस्तान्तरित कर देता है तो ऐसी दशा में अदत्त विक्रेता बन्धकगृहीता को इस बात के लिए बाध्य कर सकता है कि वह क्रेता के विरूद्ध अपनी मांग को सर्वप्रथम अपने हाथ में क्रेता के किसी अन्य माल अथवा प्रतिभूति से संतुष्ट करें।

ग्रहणाधिकार तथा मार्ग में रोकने के अधिकार में अन्तर– अन्तर को निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है–

	अन्तर का आधार	ग्रहणाधिकार	मार्ग में रोकने का अधिकार
1.	अर्थ	ग्रहणाधिकार का अर्थ माल को अपने पास रोकना है।	इसका अर्थ है कि माल को वाहक के माध्यम से पुनः प्राप्त करना यदि विक्रेता के हाथ से निकल गया हो किन्तु क्रेता के पास न पहुँचा हो।
2.	प्रयोग	ग्रहणाधिकार का प्रयोग क्रेता द्वारा भुगतान न	इसका प्रयोग क्रेता के दिवालिया होने की दशा में ही किया जा

		करने की दशा में अदत्त विक्रेता द्वारा किया जा सकता है।	सकता है।
3.	माल का अधिकार	इसका उपयोग उसी समय किया जा सकता है जबकि माल अदत्त विक्रेता के वास्तविक या रचनात्मक अधिकार में हो।	इसका प्रयोग उस समय किया जा सकता है जबकि माल अदत्त विक्रेता के अधिकार में न पहुँचा हो अर्थात् माल मार्ग में ही हो।
4.	उद्देश्य	इसका उद्देश्य माल को तब तक रोक रखना है जब तक कि विक्रेता को उसका भुगतानन न प्राप्त हो जाय।	माल को मार्ग में रोकने का उद्देश्य माल को पुनः अधिकार में लेना है।
5.	समाप्ति पर अधिकार	ग्रहणाधिकार के समाप्त होने पर माल के विरूद्ध विक्रेता को कोई अधिकार नहीं प्राप्त होता है।	माल को मार्ग में रोक लेने पर माल विक्रेता के अधिकार में आ जाता है।

2.17 माल को पुनः बेचने का अधिकार

अदत्त विक्रेता निम्नलिखित परिस्थितियों में माल का पुनः विक्रय कर सकता है–

1. धारा 54 (2) के अनुसार– जब अदत्त विक्रेता, जिसने ग्रहणाधिकार अथवा मार्ग में रोकने के अधिकार का प्रयोग कर लिया हो, माल का पुनः विक्रय करता है तथा मूल क्रेता को इसकी सूचना न दी गयी हो तो भी क्रेता को माल के विरूद्ध अच्छा अधिकार प्राप्त होगा।

2. धारा 54 (3) के अनुसार– जब माल शीघ्र नष्ट होने वाली प्रकृति का है अथवा अदत्त विक्रेता जिसने ग्रहणाधिकार अथवा मार्ग में रोकने के अधिकार का प्रयोग कर लिया है, क्रेता को पुनः बेचने के आशय की सूचना दे देता है तो अदत्त विक्रेता, यदि क्रेता को उचित समय के अन्दर माल का मूल्य नहीं चुकाता है अथवा प्रस्तुत नहीं करता है तो माल को पुनः बेच सकता है और मूल्य क्रेता से उसके द्वारा अनुबन्ध भंग किये जाने के कारण हुई हानि की क्षतिपूर्ति वसूल कर सकता है किन्तु यदि पुनः विक्रय पर विक्रेता को लाभ हुआ हो तो क्रेता इसके पाने का अधिकारी नहीं है। इसके विपरीत, यदि ऐसी सूचना नहीं दी जाती है तो विक्रेता हानि की पूर्ति कराने का अधिकारी नहीं होगा। यही नहीं, यदि पुनः विक्रय पर कोई लाभ हुआ हो तो क्रेता पाने का अधिकारी होगा।

3. जहाँ विक्रेता क्रेता द्वारा त्रुटि किये जाने पर स्पष्ट रूप से माल के पुनः विक्रय का अधिकार अपने हाथों में सुरक्षित रखता है और क्रेता के द्वारा त्रुटि किये जाने पर माल का विक्रय करता है, तो विक्रय के मूल अनुबन्ध का परित्याग हो

जाता है, किन्तु इससे विक्रेता को क्षतिपूर्ति कराने के अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

4. माल का पुनः विक्रय करना अथवा न करना यह बात पूर्णतः अदत्त विक्रेता की इच्छा पर निर्भर करती है। अतः क्रेता अदत्त विक्रेता को माल का पुनः विक्रय करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता है।

5. धारा 46 (2) के अनुसार– यदि माल का स्वामित्व क्रेता के पास हस्तान्तरित न हुआ हो, तो अदत्त विक्रेता को उपरोक्त अधिकारों के अतिरिक्त माल की सुपुर्दगी रोक लेने का अधिकार भी प्राप्त हो जाता है, जो क्रेता के पास स्वामित्व चले जाने की स्थिति मे उसके ग्रहणाधिकार तथा मार्ग में रोक रखने के अधिकार की भाँति सह–विस्तृत होता है।

2.18 विक्रय अनुबन्ध भंग के लिए वाद

विक्रेता के उपचार–

क्रेता द्वारा किसी अनुबन्ध के भंग किये जाने पर विक्रेता को उसके विरूद्ध निम्नलिखित उपचार प्राप्त होते है–

1. **धारा 55 (1) के अनुसार मूल्य के लिए वाद –** जहाँ विक्रय अनुबन्ध के अन्तर्गत माल का स्वामित्व क्रेता को हस्तान्तरित हो जाता है और क्रेता दोषपूर्ण ढंग से अनुबन्ध की शर्तों के अनुसार माल का मूल्य चुकाने में उपेक्षा अथवा इन्कार करता है, तो विक्रेता माल के मूल्य का वाद प्रस्तुत करने का अधिकारी है।

2. **धारा 55 (2) के अुनसार माल का स्वामित्व हस्तांतरित न होने पर –** जब विक्रय अनुबन्ध के अंतर्गत सुपुर्दगी का विचार किये बिना माल का मूल्य किसी निश्चित दिन चुकाना हो और क्रेता दोषपूर्ण ढंग से मूल्य चुकाने में उपेक्षा अथवा इन्कार करता है, तो विक्रेता उस मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है, भले ही माल का स्वामित्व अभी हस्तान्तरित नहीं हुआ हो तथा अनुबन्ध के लिए पृथक नहीं किया गया हो।

3. **धारा 56 के अनुसार अस्वीकृत पर क्षतिपूर्ति के लिए वाद –** जब क्रेता दोषपूर्ण ढंग से माल स्वीकार करने अथवा उसका मूल्य चुकाने में असावधानी करता है अथवा इन्कार करता है, तो विक्रेता उस पर अस्वीकृति के कारण होने वाली क्षति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

4. **धारा 60 के अनुसार निश्चित तिथि से पूर्व अनुबन्ध के खण्डन पर वाद –** यदि अनुबन्ध की तिथि से पहले ही क्रेता अनुबन्ध का खण्डन न कर देता है तो विक्रेता उसे अनुबन्ध का खण्डन मान कर क्रेता पर वाद प्रस्तुत कर सकता है।

5. **धारा 61 के अनुसार व्याज के लिए वाद –** यदि विक्रेता तथा क्रेता के बीच माल के मूल्य के भुगतान के लिए कोई तिथि निश्चित है और उस तिथि के बाद भुगतान न करने की दशा में, व्याज चुकाने का प्रावधान है तो विक्रेता क्रेता के विरूद्ध व्याज प्राप्त करने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

क्रेता के उपचार

विक्रेता द्वारा विक्रय अनुबन्ध के भंग किये जाने पर क्रेता को निम्नलिखित उपचार प्राप्त है–

1. **धारा 57 के अनुसार सुपुर्दगी प्राप्त न होने पर क्षतिपूर्ति के लिए वाद–** जब विक्रेता दोषपूर्ण ढंग से माल की सुपुर्दगी देने में उपेक्षा अथवा इन्कार करता है तो क्रेता क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है।

2. **धारा 58 के अनुसार विशिष्ट निष्पादन के लिए वाद–** यदि विक्रेता ने निश्चित माल की सुपुर्दगी देने में अनुबन्ध को भंग किया हो, तो क्रेता को उस पर वाद प्रस्तुत करने का अधिकार है। यहाँ पर यदि न्यायालय उचित समझे तो वह अपनी डिक्री द्वारा अनुबन्ध के निर्दिष्ट निष्पादन की आज्ञा दे सकता है। डिक्री शर्त सहित या शर्त रहित हो सकती है।

3. **धारा 59 के अुनसार आश्वासन भंग के लिए उपचार–** जब विक्रेता ने किसी आश्वासन को भंग किया हो अथवा किसी शर्त के भंग को आश्वासन का भंग माना गया हो, तो क्रेता उसके लिए क्षतिपूर्ति कराने का अधिकारी है।

4. **धारा 60 के अनुसार निश्चित तिथि से पूर्व अनुबन्ध भंग करने का अधिकार–** यदि विक्रेता ने निश्चित तिथि के पूर्व ही अनुबन्ध भंग कर दिया है तो यदि क्रेता चाहे तो अनुबन्ध को उसी दिन समाप्त कर क्षतिपूर्ति के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है अथवा सुपुर्दगी की तिथि तक प्रतीक्षा कर सकता है।

5. **धारा 61 (2) के अनुसार ब्याज के लिए वाद–** यदि विक्रेता ने अनुबन्ध भंग किया है तथा इसके फलस्वरूप क्रेता दिये गये मूल्य को वापस पाने का अधिकारी है तो वह उस पर ब्याज पाने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है। इस ब्याज का भुगतान उस तिथि से किया जायेगा जिस तिथि को क्रेता ने विक्रेता को मूल्य का भुगतान किया था।

6. **अन्य उपचार–** विक्रेता के विरूद्ध उपर्युक्त अधिकारों के अतिरिक्त एक क्रेता के निम्नलिखित उपचार भी है–

(i) धारा 37 के अनुसार अनुबन्ध के अनुसार सुपुर्दगी पाने का अधिकार।

(ii) धारा 38 के अनुसार विपरीत अनुबन्ध के अभाव में किस्तों में सुपुर्दगी होने पर, अनुबन्ध समाप्त करने का अधिकार।

(iii) धारा 41 के अनुसार सुपुर्दगी प्राप्त होने पर वस्तुओं के निरीक्षण का अधिकार।

क्षतिपूर्ति तथा विशिष्ट क्षतिपूर्ति के रूप में ब्याज–

1. यह अधिनियम विक्रेता अथवा क्रेता के ब्याज वसूल किये जाने अथवा विशिष्ट क्षतिपूर्ति के अधिकार को उस स्थिति से प्रभावित नही करता है जबकि किसी सन्नियम द्वारा ब्याज अथवा विशिष्ट क्षति वसूल की जा सकती हो।

2. किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में न्यायालय निम्नलिखित परिस्थितियों में उचित दर से ब्याज की घोषणा कर सकती है–

(i) विक्रेता द्वारा मूल्य के लिए वाद प्रस्तुत किये जाने की तिथि से अथवा भुगतान की नियत तिथि से ब्याज दिलाया जा सकता है।

(ii) क्रेता द्वारा मूल्य की वापसी के लिए वाद प्रस्तुत किये जाने पर जबकि विक्रेता द्वारा अनुबन्ध भंग किया गया हो– जिस तिथि को मूल्य का भुगतान किया गया था उस तिथि से ब्याज दिलवाया जा सकता है।

2.19 नीलाम द्वारा विक्रय

नीलाम द्वारा विक्रय का अर्थ– नीलाम द्वारा विक्रय सार्वजनिक विक्रय का वह स्वरूप है जिसके अन्तर्गत सबसे उँची बोली लगाने वाले को माल का विक्रय किया जाता है।

नीलाम द्वारा विक्रय में निम्नलिखित नियम लागू होते है–

1. धारा 64 (1) के अनुसार– जब माल विक्रय के लिए अनेक ढेर में रखा जाता है तो प्रत्येक ढेर का विक्रय एक पृथक अनुबन्ध की विषय–वस्तु समझी जायेगी।

2. धारा 64 (2) के अनुसार– विक्रय उस समय पूर्ण हो जाता है जब नीलामकर्त्ता हथौड़े की चोट से अथवा किसी अन्य प्रचलित तरीके से उसका पूर्ण होना घोषित कर देता है और जब तक ऐसी घोषणा न कर दी जाय बोली बोलने वाला अपनी बोली वापस ले सकता है।

3. धारा 64 (3) के अनुसार– बोली बोलने का अधिकार स्पष्ट रूप से विक्रेता अथवा उसकी ओर से अन्य किसी के द्वारा सुरक्षित रक्षा जा सकता है और यदि ऐसा अधिकार सुरक्षित रखा गया हो, तो विक्रेता अथवा उसकी ओर से अन्य कोई व्यक्ति दी गयी व्यवस्थाओं के अनुसार बोली बोल सकता है।

4. धारा 64 (4) के अनुसार– यदि विक्रेता की ओर से बोली बोलने के अधिकार को सूचना नहीं दी गयी हो, तो विक्रेता द्वारा स्वयं बोली बोलना अथवा उसके द्वारा इस कार्य के लिए किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त किया जाना अवैध होगा अथवा यदि नीलामकर्ता जानबूझकर विक्रेता अथवा उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति को बोली स्वीकार न करे तो इस प्रकार से किये गये विक्रय को क्रेता कपटपूर्ण मान सकता है।

5. धारा 64 (5) के अनुसार– विक्रय किसी आरक्षित अथवा नियत मूल्य के अन्तर्गत सूचित किया जा सकता है।

6. धारा 64 (6) के अनुसार– यदि विक्रेता मूल्य को बढ़ाने के उद्देश्य से बनावटी का प्रयोग करे तो विक्रय क्रेता की इच्छा पर व्यर्थनीय होता है।

नीलाम द्वारा विक्रय में अन्य महत्वपूर्ण नियम–

1. गलती से आरक्षित मूल्य से कम पर माल का विक्रय करने पर नीलामकर्त्ता यदि गलती से आरक्षित या निर्धारित मूल्य से कम मूल्य पर नीलाम समाप्त कर देता है तो वह अधिकतम बोली लगाने वाले को माल की सुपुर्दगी देने के लिए बाध्य नहीं है।

2. यदि विक्रेता को क्षति पहुँचाने के उद्देश्य से कई क्रेता द्वारा मिलकर बोली लगाने पर नीलामकर्त्ता विक्रय को निरस्त कर सकता है।

3. विक्रेता चाहे तो पहले से ही बोली लगाने का अधिकार सुरक्षित रख सकता है किन्तु शर्त यह है कि उसने एक बोली लगायी हो। यदि वह एक से अधिक बोली लगाये जो उसका मन्तव्य अपने हित की सुरक्षा करना नहीं है बल्कि मूल्य बढ़ाना है जो कि कपट है।

नोक आउट समझौता

नोक आउट समझौते से आशय बोली बोलने वाले व्यक्तियों के बीच एक ऐसे परस्परिक समझौते से है जिसके द्वारा वे एक दूसरे के विरूद्ध बोली बोलने से अपने आप को विरत रखते है तथा इस प्रकार को धोखा देने की दृष्टि से नहीं किया गया है तो वह वैध समझौता है। विक्रेता ऐसे समझौते से अपने हितों को बचाने के लिए निम्नतम मूल्य का निर्धारण कर सकता है।

नीलाम द्वारा विक्रय में गर्भित आश्वासन

नीलाम द्वारा विक्रय में नीलामकर्त्ता क्रेता को निम्नलिखित गर्भित आश्वासन देता है–

1. नीलामकर्त्ता वस्तु के विक्रय का वैधानिक अधिकार रखता है।
2. नीलामकर्त्ता वास्तविक स्वामी के अधिकार में दोष से अनभिज्ञ है।
3. क्रेता मूल्य के बदले में माल पर अच्छा अधिकार प्राप्त कर लेगा।

2.20 सारांश

विक्रय अनुबंध के निष्पादन से तात्पर्य है कि क्रेता तथा विक्रेता दोनो अपने–अपने कर्त्तव्यों का अनुपालन करें। दोनों में से कोई भी ऐसा कार्य न करें जो उनके अधिकार सीमा के परे हो। इसके अन्तर्गत विक्रेता का कर्त्तव्य है कि वह माल की सुपुर्दगी दे। वह माल के सम्बन्ध में वाहक से अनुबंध करें साथ ही क्रेता को यह उचित अवसर दे कि वह माल का परिक्षण कर लें। उसे मूल्य प्राप्त करने का अधिकार है यदि क्रेता मूल्य देने में आनाकानी करता है या मूल्य नहीं देता है तो विक्रेता क्रेता के विरूद्ध वाद प्रस्तुत कर सकता है। विक्रेता क्रेता की अस्वीकृति के लिए क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है। यदि विशिष्ट क्षतिपूर्ति होती है तो विक्रेता को ब्याज प्राप्त करने का अधिकार है।

विक्रय अनुबंध के निष्पादन में क्रेता का कर्त्तव्य है कि वह मूल्य का भुगतान करें माल के सुपुर्दगी की माँग करें। यदि गलत मात्रा में माल की सुपुर्दगी होती है तो क्रेता माल लेने से इन्कार कर सकता है। यदि क्रेता माल की सुपुर्दगी लेने से इन्कार करता है। यदि क्रेता हानि के लिए उत्तरदायी होगा। क्रेता के अपने अधिकार भी है। उसे अधिकार है कि माल की सुपुर्दगी से माल की परीक्षा या जाँच करें। यदि विक्रेता द्वारा आश्वासन भंग किया जाता है तेा क्रेता क्षतिपूर्ति का अधिकार है।

विक्रय अनुबंध निष्पादन के लिये भुगतान तथा सुपुर्दगी एक साथ पूरी होने वाली शर्ते है। माल की सुपुर्दगी से आशय है एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को स्वेच्छापूर्वक माल के अधिकार का हस्तान्तरण हो। सुपुर्दगी के कई प्रकार जैसे वास्तविक, रचनात्मक तथा सांकेतिक होते है।

इस सम्बन्ध में दूसरा महत्वपूर्ण शीर्षक माल के अधिकार अथवा स्वत्वाधिकार अथवा स्वत्व के अधिकार का हस्तांतरण है। वास्तव में विक्रेता ही माल का असली स्वामी है अतः उसे ही यह अधिकार है कि वह माल को बेचे तथा क्रेता को माल की सुपुर्दगी दे यदि विक्रेता चोरी के माल को बेचता है तो स्वत्व का अधिकार गलत है तथा क्रेता माल का स्वामी नहीं हो सकता। अधिकार के सम्बन्ध में भारतीय वस्तु विक्रय अनुबंध की अधिनियम 1930 की धारा 27 के अनुसार कोई भी क्रेता अपने माल के विक्रेता से श्रेष्ठ अधिकार नहीं प्राप्त कर सकता। इसका मतलब है विक्रेता को यदि श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त हो तो क्रेता को श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त होगा। इस ईकाई में अदत्त विक्रेता का उल्लेख भी महत्वपूर्ण है। अदत्त विक्रेता से तात्पर्य यह है कि विक्रेता जिसे विक्रय किये गये माल का सम्पूर्ण मूल्य प्राप्त नहीं हुआ है, माल को अपने पास रोक सकता है अथवा मार्ग में रोक सकता है अथवा किसी विशिष्ट दशाओं में माल को पुनः बेच सकता है। इसे ग्रहणाधिकार या विशेषाधिकार भी कहते है।

2.21 शब्दावली

विक्रय अनुबंध का निष्पादन– विक्रय अनुबंध के निष्पादन से तात्पर्य है कि भुगतान तथा सुपुर्दगी एक साथ पूरी होने वाली शर्त है। यहाँ आवश्यक है कि क्रेता तथा विक्रेता अपने कर्त्तव्यों का पालन करें तथा अपने अधिकार सीमा से परे कार्य न करें।

विक्रेता– जो माल बेचता है, वह क्रेता है।

क्रेता– जो माल क्रय करता है, वह क्रेता है।

माल का हस्तांतरण– विक्रय अनुबंध के निष्पादन में विक्रेता से क्रेता को माल का हस्तांतरण होता है।

विक्रेता के कर्त्तव्य– विक्रेता का कर्त्तव्य है कि वह क्रेता को माल की सुपुर्दगी दे तथा वह क्रेता को माल परीक्षण का अवसर दे।

विक्रेता के अधिकार– विक्रेता को यह अधिकार है कि वह क्रेता से माल का मूल्य प्राप्त करें। यदि क्रेता मूल्य देने में आनाकानी करता है तो विक्रेता वाद प्रस्तुत कर सकता है।

क्रेता का कर्त्तव्य– क्रेता का कर्त्तव्य है कि वह माल के मूल्य का भुगतान करें। वह माल की सुपुर्दगी की माँग करें।

क्रेता के अधिकार– क्रेता का अधिकार है कि वह माल की सुपुर्दगी प्राप्त करें। यदि सुपुर्दगी प्राप्त न हो तो क्रेता क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त करता है। उसे अधिकार है कि उसे माल के परीक्षण का अवसर मिले।

माल की सुपुर्दगी– सुपुर्दगी से तात्पर्य "एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को स्वेच्छापूर्वक माल के अधिकार का हस्तांतरण करना है।"

वास्तविक सुपुर्दगी– जब विक्रेता द्वारा क्रेता को वास्तविक माल सुपुर्द किया जाता है तो उसे वास्तविक सुपुर्दगी कहते है।

रचनात्मक सुपुर्दगी– इसके अन्तर्गत माल तो विक्रेता या उसके प्रतिनिधि के पास रहता है, किन्तु माल सम्बन्धी अधिकार पत्र जैसे– रेलवे रसीद (R/R) तथा बिल ऑफ लैडिंग (B/L) क्रेता या उसके प्रतिनिधि को सौप दिया जाता है।

सांकेतिक सुपुर्दगी– जब माल का परिमाण या तौल बहुत अधिक हो तथा हस्तांतरण करना कठिन हो तो विक्रेता केवल संकेत (जैसे गोदाम की कुंजी) प्रदान करता है तो उसे सांकेतिक सुपुर्दगी कहते है।

माल की किस्तों मे सुपुर्दगी– कभी–कभी विक्रेता माल को कई किश्तों में अर्थात कई भाग में क्रेता को सुपुर्द कर सकता है।

स्वत्वाधिकार का हस्तांतरण– सामान्य रूप में माल के प्रयोग का अधिकार क्रेता को हस्तांतरित होता है। माल का अधिकार या स्वत्वाधिकार के हस्तांतरण से तात्पर्य माल के स्वामित्व एवं प्रयोग दोनों का हस्तांतरण क्रेता को होने से है।

अदत्त विक्रेता– अदत्त विक्रेता से तात्पर्य है कि ऐसा विक्रेता जिसे माल का सम्पूर्ण मूल्य प्राप्त न हो। उसे चेक या विनिमय पत्र मिला हो किन्तु बैंक से वह प्रतिष्ठित न हुआ हो।

ग्रहणाधिकार या विशेषाधिकार– ग्रहणाधिकार या विशेषाधिकार से तात्पर्य माल के मूल्य प्राप्त होने तक माल को अपने पास रोके रखना।

माल को मार्ग में रोकना– यदि माल का क्रेता दिवादिया हो गया हो तो अदत्त विक्रेता माल को मार्ग में रोक सकता है।

माल को पुनः बेचना– यदि बेचा गया माल नाशवान प्रकृति का है तो अदत्त विक्रेता उसे पुनः बेच सकता है।

विक्रय अनुबंध का भंग होना– क्रेता द्वारा विक्रय अनुबंध भंग होने पर विक्रेता को उपचार प्राप्त होता है तथा विक्रेता द्वारा अनुबंध भंग होने पर क्रेता को उपचार प्राप्त होता है।

नीलाम द्वारा विक्रय– नीलाम द्वारा विक्रय सार्वजनिक विक्रय का वह स्वरूप है जिसके अन्तर्गत सबसे ऊँची बोली बोलने वाले को माल का विक्रय किया जाता है।

क्रेता को विक्रेता से श्रेष्ठ अधिकार नहीं प्राप्त होना– लैटिन भाषा के शब्द "Nemo dat quod non habet जिसका अर्थ है कि, "कोई भी वह वस्तु नही दे सकता जो उसके अधिकार में नहीं है।" अर्थात क्रेता को विक्रेता से श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त नही होता।

अवरोध का सिद्धान्त– यदि माल के वास्तविक स्वामी ने अपने आचरण द्वारा क्रेता को यह विश्वास दिलाया हो कि विक्रेता ही माल का वास्तविक स्वामी है। या माल को बेचने हेतु स्वामी से उसे अधिकार प्राप्त है और क्रेता को इस विश्वास पर माल क्रय करने हेतु प्रेरित किया है तो बाद में वह अर्थात माल का वास्तविक स्वामी यह नही कहेगा कि उसके पास माल को बेचने का अधिकार नही था तो क्रेता को अच्छा अधिकार प्राप्त हो जाता है।

2.22 बोध प्रश्न

सही उत्तर चुनिये–

(i) अदत्त विक्रेता के माल के विरूद्ध अधिकार है–

(अ) ग्रहणाधिकार (ब) माल को मार्ग में रोकने का अधिकार

(स) माल को पुनः बेचने का अधिकार (द) उपरोक्त सभी

(ii) अदत्त विक्रेता के विरूद्ध अधिकार है–

(अ) मूल्य के लिये वाद (ब) क्षतिपूर्ति के लिये वाद

(स) ब्याज के लिये वाद (द) उपरोक्त सभी

(iii) अदत्त विक्रेता माल के पुनः विक्रय के अधिकार का उपयोग कर सकता है–

(अ) जब माल शीघ्र नष्ट होने वाली प्रकृति का हो।

(ब) जब क्रेता भुगतान को तत्पर हो।

(स) जब क्रेता को पुनः बेचने की सूचना नहीं दी गई हो।

(द) इनमें से कोई नहीं।

2.23 बोध प्रश्नों के उत्तर

उत्तर– (i) (द) (ii) (द) (iii) (अ)]

2.24 स्वपरख प्रश्न

1. विक्रय अनुबंध के निष्पादन से क्या आशय है ?

2. वस्तु विक्रय अनुबंध में सुपुर्दगी की परिभाषा दीजिये तथा इसके नियमों को बताइये।
3. माल की सुपुर्दगी से क्या आशय है ? सुपुर्दगी तथा मूल्य के भुगतान सम्बन्धी नियम बताइए।
4. 'कोई भी व्यक्ति' माल के अपने अधिकार से अच्छा अधिकार क्रेता को नहीं दे सकता। इस कथन को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
5. अदत्त विक्रेता की परिभाषा दीजिए।
6. ग्रहणाधिकार या विशेषाधिकार को स्पष्ट कीजिए।
7. अवरोध द्वारा सिद्धान्त को समझाइये।
8. नीलाम द्वारा विक्रय को बताइये।

2.25 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws: Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (p) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law: Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law: K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई–3 उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उपभोक्ता संरक्षण का अर्थ
3.3 उपभोक्ता के सामान्य अधिकार
3.4 भारत में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता एवं महत्व
3.5 उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 का संक्षिप्त परिचय
3.6 अधिनियम के उद्देश्य
3.7 उपभोक्ता संरक्षण (संशोधन) अधिनियम 2002 के प्रावधान
3.8 परिभाषाएं
3.9 उपभोक्ता संरक्षण परिषदें
3.10 विवाद निवारण ऐजेन्सीज
3.11 विविध
3.12 सारांश
3.13 शब्दावली
3.14 बोध प्रश्न
3.15 बोध प्रश्न के उत्तर
3.16 स्वपरख प्रश्न
3.17 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- उपभोक्ता संरक्षण का अर्थ समझ सकें।
- उपभोक्ता के अधिकारों को समझ सकें।
- उपभोक्ता अधिनियम 1986 के नियमों को जान सकें।
- उपभोक्ता संरक्षण संशोधित अधिनियम 2002 के नियमों को जान सकें।
- उपभोक्ता संरक्षण परिषदों को समझ सकें।
- विवाद निवारण ऐजेन्सियों के बारे में जान सकें।

3.1 प्रस्तावना

वर्तमान अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता व्यावसायिक जगत का केन्द्र माना जाता है। **'ग्राहक सदैव ठीक है' , 'उपभोक्ता बाजार का राजा है', 'ग्राहक ही परम परमेश्वर है'** आदि नारे उपभोक्ता के महत्व का संकेत देते है। उपभोक्ता की आवश्यकतानुसार ही उत्पादन एवं वितरण किये जाने तथा उपभोक्ता की सन्तुष्टि से ही व्यावसायिक इकाइयाँ लाभ कमाती है। जिस उत्पादन से उपभोक्ता की सन्तुष्टि अधिक होगी उसकी बिक्री भी अधिक होगी। बिक्री अधिक होने पर उसका उत्पादन बड़े पैमाने पर होगा और व्यावसायिक इकाई को बड़ी मात्रा में उत्पादन की मितव्ययिताएँ प्राप्त होगी। इससे लाभ में भारी वृद्धि होगी।

उपभोक्ता के इतने ज्यादा महत्वपूर्ण होने के बावजूद भी उपभोक्ता केवल नाम के राजा के समान है जो राजा होते हुए भी अधिकारों एवं सुविधाओं से सवर्था वंचित रहता है।

उसका शोषण कभी कम माप–तौल के कारण तो कभी वस्तुओं की घटिया किस्म के कारण, कभी मिलावट करके, कभी नकली वस्तुएँ उपलब्ध कराके, कभी वस्तुओं की कालाबाजारी, कभी मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि करके किया जाता है। दैनिक उपभोग में व्यापक मिलावट, घटिया किस्म की दवाएँ एवं बिजली उपकरण तथा खतरनाक रसायनों से उपभोक्ताओं के जीवन से खिलवाड़ किया जाता है।

अतएव उपभोक्ता वर्ग को शोषण से संरक्षण देने हेतु ही भारत में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 एक ऐतिहासिक एवं महत्वपूर्ण प्रभावी कदम है।

3.2 उपभोक्ता संरक्षण का अर्थ

उपभोक्ता संरक्षण से आशय उन सभी उपायों से है जो कि उपभोक्ता को उनका विभिन्न रूप में होने वाले शोषण से मुक्ति प्रदान करने में सहायक है। उपभोक्ता के मुख्य अधिकारों व हितों को सुरक्षा प्रदान करना ही उपभोक्ता संरक्षण है। उपभोक्ताओं के अधिकारों एवं हितों की रक्षा करने में उपभोक्ता चेतना, उपभोक्ता शिक्षा, वैधानिक अधिनियम, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, प्रदूषण की रोकथाम के उपाय आदि सहायक होते है।

3.3 उपभोक्ता के सामान्य अधिकार

उपभोक्ता को विभिन्न अधिकार प्राप्त है। अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति **जॉन एफ. कैनेडी व जॉनसन** पहले व्यक्ति थे जिन्होने उपभोक्ता के अधिकारों को निम्नवत् रूप में सूत्रबद्ध किया–

(1) सुरक्षा का अधिकार,
(2) चुनाव का अधिकार,
(3) जानने का अधिकार,
(4) सुनवाई का अधिकार,

बाद में इन अधिकारों में **पाँचवाँ अधिकार जोड़ा गया जिसे 'मूल्य के अधिकार'** के रूप में जाना जाता है।

भारत के उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की टिप्पणी तथा **धारा** 6 में उपभोक्ता के अधिकारों को बताया गया है। इनमें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्य आठ अधिकारों में से सात अधिकार है। आठवाँ अधिकार 'पर्यावरण का अधिकार' हमारे देश में सम्मिलित नहीं है।

1. **सुरक्षा का अधिकार–** सुरक्षा का अधिकार उपभोक्ता को समस्त ऐसी वस्तुओं के विपणन के लिए सुरक्षा प्रदान करने में सहायक है जो कि उसके स्वास्थ्य एवं जीवन के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं, जैसे– वस्तुओं में मिलावट एवं खतरनाक रसायन आदि। इस प्रकार उपभोक्ता को माल एवं सेवाओं (जो हानिकारक हो) से सुरक्षा प्रदान की जाती है।

2. **चयन करने का अधिकार–** चयन के अधिकार के अन्तर्गत वह विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं में से अपनी इच्छा एवं आवश्यकताओं के अनुरूप उपयुक्त वस्तु अथवा सेवा का चयन कर सकता है। उसे किसी वस्तु अथवा सेवा को क्रय करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। उपभोक्ता व्यापक उत्पादों में से कोई भी उत्पाद चुन सकता है।

3. **सूचना पाने का अधिकार–** कोई वस्तु अथवा सेवा क्रय करने से पूर्व उपभोक्ता उसके सम्बन्ध में आवश्यक सूचनाएँ जैसे– वस्तु की किस्म, स्तर, मूल्य,

उपयोग, वजन, नाप–तौल आदि को प्राप्त कर सकता है। इसीलिए सभी आवश्यक सूचनाएँ उत्पाद के पैकेट पर देनी होती है।

4. **सुने जाने का अधिकार–** उपभोक्ता का यह अधिकार है कि उसकी परिवेदनाओं तथा सुरक्षा एवं हितों के संरक्षण से सम्बन्धित विचारों को सुना जाय। बहुत से व्यावसायिक संस्थानों ने अपने सेवा एवं शिकायत प्रकोष्ठ स्थापित किये है।

5. **उपचार का अधिकार–** उपभोक्ता को परिवेदनाओं एवं शिकायतों का उचित न्यायपूर्ण उपचार अथवा समाधान प्रदान किया गया है तथा वह न्यायालय की शरण ले सकता है।

6. **उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार–** उपभोक्ता को अधिकार है कि वह जीवन भर ज्ञान व सूचनाएँ प्राप्त करें। ऐसी जानकारी मिलावट जाँचने की विधि, नाप–तौल की विधि आदि के सम्बन्ध में हो सकती है।

7. **मूल्य अथवा प्रतिफल का अधिकार–** उपभोक्ता चुकाये गये धन, वस्तु विक्रय के दौरान अथवा विज्ञापन में किये गये वायदों एवं जगाई गई आशाओं को पूरा करने का अधिकार रखता है।

3.4 भारत में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता एवं महत्व

उपभोक्ताओं के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता उस समय अनुभव हुई, जब उपभोक्ताओं को सही मूल्य पर सही मात्रा में सही किस्म की सही समय पर सही वस्तुएँ उपलब्ध होने में कठिनाई होने लगी तथा वितरण श्रृंखलाओं ने भ्रामक सूचनाओं तथा विभिन्न प्रकार से उपभोक्ताओं को जाने की विधियों द्वारा उपभोक्ताओं का शोषण किया।

भारत में उपभोक्ताओं के संरक्षण हेतु उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता इसलिए हुई क्योंकि भारतीय उपभोक्ता बाजार दुनिया के सबसे बड़ा उपभोक्ता बाजार की स्थिति प्राप्त करने जा रहा है तथा उस अनुपात में उपभोक्ताओं को प्राप्त सुविधाएँ नगण्य है।

भारत में अधिकांश उपभोक्ता गरीब, असहाय एवं अज्ञानी है। यहाँ अधिकांश बाजार में **विक्रेता का बाजार** है तथा अधिकांश विक्रेता भ्रष्ट, धोखेबाज एवं मुनाफाखोरी करने वाले है। दैनिक जीवन तक में प्रयोग में आने वाली वस्तुओं में मिलावट, घटिया दवाएँ एवं बिजली के उपकरण और खतरनाक रसायन से उपभोक्ताओं के जीवन को खतरा दिनों–दिन बढ़ता जा रहा है।

वर्तमान में भारत के सन्दर्भ में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की सर्वाधिक आवश्यकता निम्नवत् कारणों से है–

1. **सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति जागरूकता लाना–** व्यवसायियों मे सामाजिक उत्तरदायित्वों के प्रति चेतना लाने के प्रयास किये जा रहे है क्योंकि गलत तरीकों से अधिकाधिक लाभ कमाने की लालसा उन्हें सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति उदासीन बना रही है।

2. **शोषण की प्रवृत्ति से रक्षा करने के लिए–** व्यवसायियों द्वारा उपभोक्ताओं का शोषण करने के लिए कम तोलना, उपभोग की वस्तुओं में मिलावट करना, कृत्रिम कमी उत्पन्न कर देना, कालाबाजारी करना आदि तरीके अपनाये जाते है। तथा उपभोक्ता आसानी से व्यवसायियों की शोषण करने की मनोवृत्ति से बचाने के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम आवश्यक है।

3. **उपभोक्ता को जागरूक करने के लिए–** सामान्य उपभोक्ता अपने अधिकारों के प्रति उदासीन है तथा उसे अपने अधिकारों की जानकारी नहीं है। वह कुछ करने के लिए अपने आपको पूर्णतः अकेला, असहाय एवं निष्क्रीय अनुभव करता है।

4. **आवश्यक सूचनाएँ उपलब्ध कराने हेतु–** सामान्य उपभोक्ता को वस्तुओं की गुणवत्ता, शुद्धता, उपयोगिता, मूल्य–स्तर आदि के बारे में जानकारी कराना परम आवश्यक है। उपभोक्ता के इस मूलभूत अधिकार की क्रियान्विति के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता है।

5. **शिकायतों का निपटारा करने के लिए–** उपभोक्ताओं को शिकायतें करने का अधिकार प्राप्त है तथा उनकी शिकायतों का निपटारा यथाशीघ्र करने की भी व्यवस्था है।

6. **एकाधिकारी मनोवृत्ति से मुक्ति प्रदान करने के लिए–** व्यवसायियों के अनाधिकृत संयोजनों से वस्तुओं के उत्पादन तथा वितरण पर एकाधिकार स्थापित कर लेने की प्रवृत्ति से उपभोक्ताओं का शोषण होता है। इस प्रकार उपभोक्ताओं को एकाधिकारी व्यावसायिक संगठनों के शोषण का शिकार होना पड़ता है। इस अनुचित एकाधिकारी मनोवृत्ति से उपभोक्ताओं को बचाने के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता है। प्रदूषण की दूषित बीमारी के प्रति उपभोक्ता को सुरक्षा प्रदान करने के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता है।

मानव कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि सभी मनुष्यों को उपभोग के लिए पर्याप्त मात्रा में सस्ती, सुन्दर, शुद्ध एवं सही गुणवत्ता वाली वस्तुएँ उपलब्ध हो। इसलिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम आवश्यक है।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम की आवश्यकता के कुछ अन्य कारण निम्नवत् है– (i) उत्पाद की गुणवत्ता के प्रति जागरूक करने के लिए; (ii) उपभोग के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए, (iii) गुणवत्ता वाली वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहित करेन के लिए (iv) वितरण प्रणाली के दोषों को दूर करने के लिए, (v) जीवन–स्तर को ऊँचा उठाने के लिए, (vi) उपभोक्ताओं को मानसिक तनाव से मुक्ति प्रदान करने के लिए आदि।

3.5 उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 का संक्षिप्त परिचय

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 का प्राथमिक उद्देश्य उपभोक्ताओं के हितों को अच्छे तरीके से रक्षा करना तथा इस उद्देश्य के लिए उपभोक्ता विवादों तथा अन्य सम्बन्धित मामलों का निपटारा करने के लिए उपभोक्ता परिषदों तथा अन्य एजेन्सियों की स्थापना करना है। यह एक व्यापक अधिनियम है। इसमें उपभोक्ताओं की शिकायतों तथा अन्य सम्बन्धित मामलों को निपटाने के लिए उपभोक्ता परिषदों एंव अन्य सत्ताओं की स्थापना का प्रावधान किया गया है। यह अधिनियम 24 दिसम्बर, 1986 को संसद द्वारा पारित हुआ। 15 अप्रैल, 1987 से जम्मू कश्मीर को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में लागू हुआ। स्थापना, गठन एवं क्षेत्र से सम्बन्धित धाराएँ 1 जुलाई, 1987 से लागू हुई है। यह अधिनियम सभी माल एवं सेवाओं, छोटे व बड़े उपक्रमों, चाहे वे निजी क्षेत्र में हो या लोक क्षेत्र में पर लागू होता है।

इस अधिनियम में 31 धाराएँ जो कि चार अध्यायों में विभक्त है– पहला अध्याय है **प्रारम्भिक** (1 से 3 तक की धाराएँ), दूसरा अध्याय है **उपभोक्ता संरक्षण परिषदें** (4 से 8 तक की धाराएँ) तीसरा अध्याय **उपभोक्त विवाद निवारण एजेन्सीज** (9 से लेकर 27 तक धाराएँ) तथा चौथा अध्याय है **विविध** (28 से लेकर 31 तक धाराएँ) है। प्रस्तुत अधिनियम उपभोक्ता की शिकायतों को शीघ्र तथा कम व्यय पर हल करेन की व्यवस्था करता है। इस अधिनियम में उपभोक्ता वर्ग को कुछ अधिकार दिये गये है।

3.6 अधिनियम के उद्देश्य

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के निम्नलिखित उद्देश्य है–

1. उपभोक्ता के हितों का श्रेष्ठ संरक्षण करना–

उपभोक्ताओं के हितों का श्रेष्ठ संरक्षण करने के लिए इसमें उपभोक्ता विवादों का निपटारा करने के लिए उपभोक्ता परिषद् तथा अन्य फोरमों की स्थापना का प्रावधान है।

2. अधिकारों का संवर्द्धन एवं संरक्षण करना–

अधिनियम का उद्देश्य उपभोक्ताओं के विभिन्न अधिकारों का संवर्द्धन एवं संरक्षण करना है। उद्देश्यों का संवर्द्धन एवं संरक्षण केन्द्र एंव राज्यों के स्तर पर स्थापित व्यवसाय संरक्षण परिषदों द्वारा किया जाता है।

3. विवादों का शीघ्र एंव सरल निपटारा करने के लिए न्यायिक तन्त्र की स्थापना–

उपभोक्ता के विवादों का शीघ्र एवं सरल ढंग से निपटारा करने के लिए जिला, राज्य तथा केन्द्रीय स्तर पर अर्द्ध–सरकारी न्यायिक तन्त्र की स्थापना किये जाने का प्रावधान है। अधिनियम त्रि–स्तरीय शिकायत निपटारा तन्त्र की स्थापना करने की व्यवस्था करता है। जिला फोरम, राज्य उपभोक्ता समाधान आयोग तथा राष्ट्रीय आयोग की स्थापना क्रमशः जिला, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर की गयी है।

3.7 उपभोक्ता संरक्षण (संशोधन) अधिनियम 2002 के प्रावधान

अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों को निम्नवत् दिया जा रहा है–

प्रारम्भिक–

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम का अध्याय 1 प्रारम्भिक बातों से सम्बन्धित है जिसमें शीर्षक, क्षेत्र, इसके लागू होने की परिभाषाओं के बारे में प्रावधान किया गया है–

शीर्षक, क्षेत्र, प्रारम्भ एवं प्रयुक्ति [धारा 1]

1. **संक्षिप्त शीर्षक–** इस अधिनियम का नाम उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 2002 है।

2. **क्षेत्र–** यह अधिनियम जम्मू कश्मीर राज्य को छोड़कर शेष सम्पूर्ण भारत में प्रभावी होता है।

3. **प्रयुक्ति–** प्रस्तुत अधिनियम सभी माल व सेवाओं पर लागू होता है जब तक कि केन्द्रीय सरकार किसी माल अथवा सेवा को इस अधिनियम के प्रावधानों से पृथक् न कर दें।

अधिनियम के लक्ष्य

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 2002 के प्रमुख लक्ष्य निम्नलिखित है–

(i) अधिनियम के कार्यक्षेत्र को व्यापक बनाना, ताकि उपभोक्ता प्रतिबन्धित व्यापार व्यवहार से सम्बन्धित अपनी शिकायतें प्रस्तुत कर सके।

(ii) स्व–रोजगार में लगे उपभोक्ताओं द्वारा अपने व्यापार हेतु क्रय की गई वस्तुओं के दूषित पाये जाने पर संस्था के समक्ष शिकायत पेश करना।

(iii) भवन निर्माण से सम्बन्धित सेवाओं को शामिल करना।

(iv) जिला मंच, राज्य आयोग तथा राष्ट्रीय आयोग में प्रस्तुत की जाने वाली शिकायतों के सम्बन्ध में मौद्रिक सीमा को बढ़ाना।

(v) शिकायतें सुनने वाली एजेन्सियों के अधिकार को बढ़ाना।

(vi) मिथ्या शिकायतें करने वालों के विरूद्ध दण्डात्मक कार्यवाही करना।

(vii) एक वर्ष की समय सीमा के भीतर पेश की गयी शिकायतों हेतु प्रावधान करना।

3.8 परिभाषाएँ [धारा 2]

जब तक विषय या सन्दर्भ से कोई प्रतिकूल अर्थ न निकले, परिभाषित शब्दों का अर्थ इस धारा की उप–धाराओं मे बताए अनुसार रहेगा–

1 उचित प्रयोगशाला

उपयुक्त प्रयोगशाला का आशय ऐसी प्रयोगशाला या संगठन से है जो कि–

(i) केन्द्रीय सरकार से मान्य हो,

(ii) केन्द्रीय सरकार द्वारा दिशानिर्देशों के अनुरूप राज्य सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हो,

(iii) देश में लागू किसी विधान द्वारा अथवा उसके अधीन स्थापित कोई भी प्रयोगशाला या संगठन जो किसी माल का विश्लेषण या जाँच करने के लिए केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा इस विचार को सुनिश्चित करने लिए उक्त माल में कोई दोष है या नहीं, संचालित, वित्त पोषित अथवा सहायता प्राप्त हो।

2 शिकायतकर्ता या परिवादी– [धारा 2 (1) (b)]

शिकायतकर्ता से अभिप्रेत है–

(i) किसी भी उपभोक्ता से है।

(ii) ऐसी स्वैच्छिक उपभोक्ता संस्था से है जिसका पंजीयन कम्पनी अधिनियम, 1956 अथवा तत्सम प्रचलित किसी अन्य संविधि के अन्तर्गत हुआ हो।

(iii) देश में प्रचलित किसी भी अन्य संविधि के अन्तर्गत पंजीकृत स्वैच्छिक उपभोक्ता संघ।

(iv) केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार से है।

(v) समान प्रकार का हित रखने वाले उपभोक्ताओं की दशा में उनकी ओर से एक अथवा अधिक उपभोक्ता से है।

3 शिकायत का परिवाद– [धारा 2 (1) (c)]

शिकायत का आशय शिकायतकर्ता द्वारा इस अधिनियम के अधीन राहत प्राप्त करने के लिए लिखित रूप में प्रस्तुत किये गये किसी दोषारोपण से है जो–

(i) किसी व्यापारी अथवा सेवा प्रदाता द्वारा अपनाये गये किसी अनुचित व्यापार–व्यवहार या प्रतिबन्धात्मक व्यापार–व्यवहार के कारण हो जिसके परिणामस्वरूप शिकायतकर्ता को कोई हानि उठानी पड़ी हो,

(ii) शिकायत में वर्णित माल में एक अथवा एक से अधिक दोष विद्यमान हो,

(iii) उसके द्वारा किराये पर ली गई या प्राप्त की गई सेवाओं अथवा उन सेवाओं, जिनकों किराये पर लेने या प्राप्त करने का ठहराव किया गया हो, एक या अधिक दोष हों,

(iv) शिकायत में वर्णित माल के लिए किसी व्यापारी अथवा सेवा प्रदाता ने निर्धारित मूल्य से अथवा उस समय प्रचलित विधान के अधीन निश्चित मूल्य से अधिक मूल्य प्राप्त किया हो अथवा माल पर या उसके पैकेज पर अधिक मूल्य अंकित किया हो,

(v) व्यापारी अथवा सेवाप्रदाता ऐसे माल की बिक्री हेतु प्रस्तुति जो जीवन एवं सुरक्षा के लिए खतरनाक हो अथवा उन नियमों के विरूद्ध हो जिनके अन्तर्गत ऐसे माल के संघटक तत्व, उपयोग के ढंग एवं प्रभाव के सम्बन्ध में सूचना का प्रदर्शन अनिवार्य हो, अथवा व्यापारी या सेवा प्रदाता पर्याप्त परिश्रम से यह पता लगा सकता हो कि माल जनता के लिए असुरक्षित है।

(vi) सेवाएँ, जो कि उपयोग होने पर जनता की सुरक्षा की दृष्टि से खतरनाक है या खतरनाक हो सकती है, सेवा प्रदाता द्वारा प्रस्तुत की जाती है।

4 उपभोक्ता

(a) कोई ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसने प्रतिफल के बदले किसी माल को खरीदा हो जिसका भुगतान कर दिया गया हो अथवा भुगतान करने का वचन दिया हो अथवा आंशिक भुगतान एवं आंशिक वचन दिया हो अथवा किसी प्रणाली के अधीन भुगतान स्थगित कर दिया हो।

व्यापारिक उद्देश्य तब तक नहीं माना जायेगा जब तक कि कोई व्यक्ति स्वरोजगार द्वारा अपनी आजीविका चलाने के लिए कोई माल खरीदता अथवा उपयोग नही करता है। इसमें ऐसा व्यक्ति सम्मिलित नहीं किया जाता है जो माल को पुनः विक्रय अथवा वाणिज्यिक उद्देश्य से प्राप्त करता हो।

(b) ऐसा व्यक्ति जो प्रतिफल के बदले किन्हीं ऐसी सेवाओं को किराये पर लेता है जिनका भुगतान कर दिया हो अथवा भुगतान करने का वचन दिया हो अथवा किसी प्रणाली के अधीन भुगतान स्थगित कर दिया हो। इसमें ऐसी सेवाओं से लाभ उठाने वाले व्यक्ति को भी शामिल करते है जिसने सेवाओं का लाभ किसी ऐसे व्यक्ति के अनुमोदन पर उठाया हो।

उपभोक्ता में ऐसे व्यक्ति को सम्मिलित नहीं किया जायेगा जो किसी वाणिज्यिक उद्देश्य के लिए सेवाएँ उपलब्ध कराता है।

निम्नलिखित उपभोक्ता नहीं है : उपभोक्ता में निम्नलिखित को सम्मिलित नहीं किया जाता है– (i) व्यक्ति जो किसी वाणिज्यिक उद्देश्य के लिए माल खरीदता है। (ii) व्यक्ति जिसने माल का क्रय नहीं किया है। एक व्यक्ति तब तक शिकायत नहीं कर सकता जब तक कि उसने माल क्रय नहीं किया हो अथवा सेवाओं का

उपयोग नही किया हो। यह शर्त स्वैच्छिक उपभोक्ता संस्थाओं अथवा सरकार द्वारा प्रस्तुत की गई शिकायत की स्थिति में प्रभावी न होगी।

इस प्रकार उपभोक्ता से आशय ऐसे व्यक्ति से है–

(i) जो माल को प्रतिफल के बदले उपयोग के लिए खरीदता हो,

(ii) जो माल का उपयोग क्रेता की अनुमति से करता हो,

(iii) जो माल का क्रय अथवा सेवा का क्रय या सेवा को किराये पर प्रतिफल दे चुका हो अथवा देने का वचन देता हो,

(iv) माल या सेवा का प्रतिफल दे चुका हो अथवा देने का वचन देता हो,

(v) जो प्रतिफल के फलस्वरूप किराये पर माल अथवा सेवाएँ लेता हो,

(vi) जो किराये पर लेने वाले व्यक्ति की आज्ञा से सेवाओं का उपयोग करता हो,

(vii) जो अस्थगित भुगतान अथवा विलम्बित भुगतान विधि अथवा किस्त भुगतान विधि के अन्तर्गत भुगतान करने का वचन देता हो।

अपवाद

यदि माल को पुनः विक्रय या वाणिज्यिक प्रयोगन के लिए प्राप्त किया जाय तो वह उपभोक्ता नहीं है।

5. उपभोक्ता विवाद– [धारा 2 (1) (e)]

उपभोक्ता विवाद से आशय ऐसे विवाद से है जिसके अन्तर्गत वह व्यक्ति जिसके विरूद्ध शिकायत की गई है, शिकायत से सम्बन्धित आरोपों का प्रतिवाद करता है।

6 दोष [धारा 2 (1) (f)]

दोष से आशय किसी माल की किस्म, मात्रा, क्षमता, शुद्धता अथवा मानक जिसे उस समय प्रचलित किसी विधान के अधीन व्यापारी द्वारा, किसी भी ढंग से, माल के सम्बन्ध में बनाये रखना आवश्यक हो, में किसी त्रुटि, अपूर्णता अथवा कमी से है।

7 कमी [धारा 2 (1) (g)]

कमी से आशय निष्पादन की किस्म, प्रकृति तथा निष्पादन का ढंग, जिसे उस समय लागू किसी विधान के अधीन व्यक्ति द्वारा किसी अनुबन्ध के अन्तर्गत या सेवा के सम्बन्ध में निष्पादन का दायित्व लिया हो, में त्रुटि, अपूर्णता, कमी अथवा अपर्याप्तता से है।

8 जिला मंच [धारा 2 (1) (h)]

जिला मंच से आशय ऐसे उपभोक्ता विवाद निवारण मंच से है जिसकी स्थापना धारा 9 (a) के अधीन की गई हो।

9 माल [धारा 2 (1) (i)]

माल से आशय उस माल से है जिसे वस्तु विक्रय अधिनियम, 1930 (3) में परिभाषित किया गया है।

वस्तु विक्रय अधिनियम, 1930 की धारा 2 (7) के अनुसार माल से आशय "प्रत्येक प्रकार की चल सम्पत्ति से है, जिसमें अभियोज्य दावे एवं मुद्रा सम्मिलित नही होते, किन्तु स्कंध व अंश, खड़ी फसलें, घास तथा ऐसी वस्तुयें जो भूमि से जुड़ी हो।"

10 विनिर्माता से आशय उस व्यक्ति से है जो–

(i) किसी माल अथवा उसके किसी भाग को बनाता अथवा निर्मित करता हो, या

(ii) स्वयं तो किसी माल को बनाता अथवा निर्मित नहीं करता हो किन्तु दूसरे के द्वारा बनाये अथवा निर्मित किये गये हिस्सों को जोड़ता हो तथा अन्तिम उत्पाद को स्वयं द्वारा निर्मित घोषित करता हो, अथवा

(iii) दूसरे निर्माताओं द्वारा निर्मित माल पर स्वयं का चिन्ह लगाता हो अथवा लगाने देता हो तथा उक्त माल को स्वयं द्वारा निर्मित हुआ माल घोषित करता हो।

11 सदस्य [धारा 2 (1) (j)]

सदस्य में अध्यक्ष तथा राष्ट्रीय आयोग, राज्य आयोग तथा जिला मंच का सदस्य भी आता है।

12 राष्ट्रीय आयोग [धारा 2 (1) (k)]

राष्ट्रीय आयोग से आशय राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग से है जिसकी स्थापना इस अधिनियम की धारा 9 (c) के अधीन हुई हो।

13 व्यक्ति [धारा 2 (1) (m)]

व्यक्ति में निम्न को शमिल किया जायेगा–

(i) कोई फर्म चाहे पंजीकृत हो अथवा नहीं,

(ii) कोई अविभाजित हिन्दू परिवार,

(iii) कोई सहकारी समिति,

(iv) अन्य व्यक्तियों की संस्था चाहे उसका समिति पंजीयन अधिनियम के अधीन पंजीयन हुआ हो या नहीं।

14 नियमन [धारा 2 (1) (nn)]

नियमन से आशय इस अधिनियम के अन्तर्गत राष्ट्रीय आयोग द्वारा बनाये गये नियमन से है।

15 प्रतिबन्धित व्यापार–व्यवहार [धारा 2 (1) (nnn)]

प्रतिबन्धित व्यापार व्यवहार से आशय उस व्यापार–व्यवहार से है जो कि मूल्य अथवा सुपुर्दगी की शर्तो अथवा बाजार में माल अथवा सेवाओं के प्रवाह को आकर्षित करने के लिए किया गया हो तथा उपभोक्ताओं पर अनुचित लागतों अथवा प्रतिबन्धों को आरोपित करता हो। इसमें मूल्य वृद्धि के लिए व्यापारी द्वारा माल/सेवाओं की पूर्ति में विलम्ब करने अथवा माल को किराये पर लेने अथवा क्रय से पूर्व माल को प्राप्त करने सम्बन्धी व्यापार व्यवहार भी शामिल है।

कोई भी विक्रेता किसी माल या सेवा के विक्रय करते समय क्रेता को किसी वस्तु या सेवा का क्रय करने के लिए बाध्य नही कर सकता।

16 सेवा [धारा 2(1) (o)]

सेवा से आशय किसी भी विवरण की ऐसी सेवा से है जो कि सम्भावित उपयोगकर्ता के लिए उपलब्ध की गई हो तथा इसमें बैकिंग, वित्त, बीमा, परिवहन, माल तैयार करने, विद्युत अथवा ऊर्जा की आपूर्ति, भोजन या रहने का अस्थायी स्थान या दोनों, आवास निर्माण, मनोरंजन या नवीन समाचारों या अन्य सूचनाओं को प्रदान करने के सम्बन्ध में प्रदान की गई सुविधाएँ भी आती है। इसमें किसी

ऐसी सेवा को सम्मिलित नहीं किया जाता हो जो कि निःशुल्क हो अथवा किसी व्यक्तिगत सेवा के अनुबन्ध के अधीन प्रदान की गई हो।
सरकारी अस्पतालों में निःशुल्क उपचार मिलने के कारण इसे सेवा में शामिल नहीं किया जाता।

17 भ्रामक माल एवं सेवाएँ [धारा 2 (1) (oo)]

भ्रामक माल अथवा सेवा से अभिप्राय ऐसे माल अथवा सेवा से है जो कि शुद्ध बतलायी गई हो किन्तु वास्तव में ऐसा न हो।

18 राज्य आयोग [धारा 2 (1) (p)]

राज्य आयोग से अभिप्राय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग से है जिसकी स्थापना धारा 9 (b) के अन्तर्गत की गई हो।

19 व्यापारी [धारा 2 (1) (q)]

माल के सम्बन्ध में व्यापारी से आशय ऐसे व्यक्ति से है जो विक्रय के उद्देश्य से माल को बेचता है अथवा उसका वितरण करता है तथा इसमें निर्माता भी सम्मिलित है। माल का विक्रय अथवा वितरण पैकेज के रूप में होने पर उसकी पैकिंग करने वाला भी व्यापारी में शामिल किया जाता है।

20 अनुचित व्यापार–व्यवहार [धारा 2 (1) (r)]-

अनुचित व्यापार–व्यवहार से आशय उस व्यापारिक व्यवहार से है जिसके द्वारा किसी वस्तु का विक्रय, उपभोग या आपूर्ति बढ़ाने के लिए या सेवाओं की व्यवस्था करने के लिए निम्नलिखित में से एक या अधिक प्रकार के अनुचित तरीके या धोखाधड़ीपूर्ण व्यवहार का उपयोग किया जाता है–

(I) लिखित, मौखिक या प्रत्यक्ष प्रदर्शन द्वारा होने वाला कोई कथन हो–

(i) माल के किसी विशेष मानक, किस्म, श्रेणी, मिश्रण, शैली या प्रतिरूप के सम्बन्ध मे मिथ्या प्रस्तुतिकरण करता हो।

(ii) सेवा के किसी विशेष मानक, किस्म या श्रेणी के सम्बन्ध में मिथ्या प्रस्तुतिकरण करता हो।

(iii) पुनः निर्मित, पुराने, नवीनीकृत या पुनः अनुकूलित वस्तुओं को नया बताता हो।

(iv) माल या सेवाओं के बारे में ऐसा प्रयोजन, अनुमोदन, कार्य निष्पादन, विशेषताएँ, अतिरिक्त सामग्री प्रयोग अथवा उपयोगिताएँ बताना जो वास्तव में नही होता है।

(v) वस्तु या सेवा के उपयोग के सम्बन्ध में मिथ्या प्रचार करने के सम्बन्ध में है।

(vi) बिना किसी आधार पर किसी वस्तु या माल की उपयुक्तता, क्षमता या जीवन काल आदि को शर्त अथवा आश्वासन के रूप में जनता में प्रचार करना।

(vii) उपयुक्त जाँच के बिना किसी वस्तु की निष्पादन क्षमता, उपादेयता अथवा आयु सीमा के सम्बन्ध में गारण्टी या आश्वासन देना।

(viii) जनता में ऐसा प्रचार करना जिसका अभिप्राय–

(a) वस्तु अथवा सेवा के लिए वारण्टी अथवा गारण्टी देना हो,

(b) वस्तु या उसके किसी भाग को प्रतिस्थापित करने, रख–रखाव या उसकी मरम्मत करने का वचन देना जब तक वह वस्तु विशिष्ट परिणाम प्राप्त न कर सकें।

(ix) उत्पाद या सेवा को विक्रय किये जाने या विक्रय किये जाने वाली कीमत के विषय में भ्रम उत्पन्न करना।

(x) अन्य व्यक्ति के माल अथवा सेवाओं के विषय में झूठी अथवा भ्रमपूर्ण बातें करना जिससे अन्य के माल या सेवा या व्यापार को खराब नाम मिले।

(II) **सौदेबाजी मूल्यों अथवा प्रलोभन के द्वारा विक्रय के विज्ञापन करना–** जब वह किसी ऐसे विज्ञापन के समाचार पत्र अथवा अन्य प्रकार से प्रकाशन की आज्ञा देता है जिसमें **सौदाकारी मूल्य पर माल बेचने का प्रस्ताव** हो तथा विक्रेता उस मूल्य पर माल बेचने की इच्छा न रखता हो या कम से कम माल के विक्रय की इच्छा न रखता हो, तब तक यह अनुचित व्यापार माना जायेगा।

(III) व्यापारी द्वारा **उपहार, पुरस्कार या अन्य वस्तुओं को देने का प्रस्ताव** जब वास्तव में उसका ऐसा कोई इरादा नहीं है।

किसी वस्तु की बिक्री अथवा व्यावसायिक हित को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से किसी **प्रतियोगिता, लॉटरी, भाग्य या कौशल का खेल** आदि का आयोजन करना अनुचित व्यापार है।

इसमें ऐसी योजना मे भागिता से रोकना भी सम्मिलित है जो कि उपहार, पुरस्कार अथवा अन्य निःशुल्क सामान प्रदान करती हो।

(IV) ऐसे माल की पूर्ति या बिक्री की आज्ञा प्रदान करना जिसके बारे में विनिर्माता यह जानता है कि माल के प्रयोग में आने वाली जोखिम को कम करने या रोकने की दृष्टि से वस्तु के कार्य निष्पादन, सामग्री, डिजाइन, निर्माण, फिनिशिंग अथवा पैकेजिंग के सम्बन्ध में **निर्धारित स्तर–मानों का प्रयोग नहीं किया जा रहा है।**

(IV) कीमत बढ़ाने के उद्देश्य से **माल की जमाखोरी करना, उसे नष्ट करना अथवा विक्रय से इन्कार करना** जिससे माल की आपूर्ति सीमित हो जाये।

3.9 उपभोक्ता संरक्षण परिषदें– [धारा 4 से 8 तक]

(I) केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद्

स्थापना [धारा (1)] – केन्द्रीय सरकार अधिसूचना जारी करके निर्धारित तिथि से केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद् की स्थापना करेगी।

गठन [धारा 4 (1)] – केन्द्रीय सरकार इस परिषद् में विभिन्न विभागों व क्षेत्रों के सरकारी तथा गैर–सरकारी सदस्यों को नामांकित करेगी। केन्द्रीय सरकार के खाद्य व नागरिक आपूर्ति मन्त्री इसके अध्यक्ष होंगे।

केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद् का कार्यकाल तीन वर्ष रहेगा।

इस परिषद् के किसी पद के खाली हो जाने पर उस पद पर पुनः उसी वर्ग का प्रतिनिधि सदस्य नियुक्त किया जायेगा तथा ऐसे सदस्य का कार्यकाल परिषद् के कार्यकाल की समाप्ति पर समाप्त हो जायेगा। आवश्यकता के समय चाहे जब इसकी सभा बुलायी जा सकती है किन्तु एक वर्ष में कम से कम तीन सभाएँ होना आवश्यक है तथा सभा का समय व स्थान अध्यक्ष द्वारा निर्धारित किया जायेगा।

धारा 5 के अनुसार, सभा में भाग लेने के लिए कम से कम 10 दिन पूर्व सूचना देना आवश्यक है।

केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद के उद्देश्य [धारा 6]

इसका उद्देश्य देश मे उपभोक्ताओं के निम्न अधिकारों का संवर्द्धन एवं संरक्षण करना है जैसे–

(i) घातक माल के विपणन के विरूद्ध संरक्षण पाने का अधिकार।

(ii) माल की किस्म, मात्रा, शुद्धता तथा मूल्य के बारे में सूचना पाने का अधिकार।

(iii) उपभोक्ताओं को सुनने तथा विश्वास दिलाने का अधिकार।

(iv) अनुचित व्यापार–व्यवहार के विरूद्ध निवारण पाने का अधिकार तथा

(v) उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार।

(II) **राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषदें**

धारा 7 (1) के अनुसार, राज्य सरकार अधिसूचना में निर्दिष्ट विधि से राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद् की स्थापना करेगी।

गठन– राज्य परिषद का गठन निम्न प्रकार से किया जाये।

(i) राज्य सरकार के उपभोक्ता मामलों का प्रभारी मन्त्री अध्यक्ष।

(ii) सरकारी या गैर–सरकारी सदस्य जो राज्य सरकार द्वारा समय–समय पर अधिसूचना किये जायें।

(iii) अन्य अधिकारियों, सरकारी अथवा गैर–सरकारी अधिकारीयों की संख्या 10 से अधिक नहीं होगी। इनकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जायेगी।

इसकी सभा आवश्यकता के समय बुलायी जा सकती है। एक वर्ष में कम से कम 2 सभाएँ होना आवश्यक है।

राज्य परिषद् की सभाएँ ऐसे समय एवं स्थान पर आयोजित की जायेगी जो अध्यक्ष उपयुक्त समझें।

उद्देश्य– प्रत्येक राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद् के उद्देश्य वही होंगे जिनका वर्णन धारा 6 में है।

जिला उपभोक्ता संरक्षण परिषद् [धारा 8 A (1)]– राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा प्रत्येक जिले में जिला उपभोक्ता समिति की स्थापना करेगी। अधिसूचना में इंगित की गयी तिथि से काम करना शुरू कर देगी।

जिला उपभोक्ता संरक्षण समिति के सदस्य निम्नलिखित होते है–

(अ) जिला कलेक्टर, अध्यक्ष।

(ब) राज्य सरकार द्वारा निर्धारित अन्य सरकारी तथा गैर–सरकारी सदस्य। ये राज्य सरकार का प्रतिनिधित्व करेंगे।

(स) जिला उपभोक्ता संरक्षण समिति की सभा जिले में कलेक्टर द्वारा निर्धारित स्थान पर सम्पन्न होगी।

3.10 विवाद निवारण एजेन्सीज [धारा 9 से 27 तक]

धारा 9 में उपभोक्ताओं के विवादो के निवारण के लिए निम्नलिखित अर्द्ध–न्यायिक व्यवस्था की गई है–

I. जिला मंच,

II. राज्य आयोग,

III. राष्ट्रीय आयोग।

उपरोक्त को विस्तारपूर्वक स्पष्ट किया जा रहा है–

I. जिला मंच–

स्थापना– धारा 9 (a) के अनुसार, प्रत्येक राज्य की राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा प्रत्येक जिले में एक उपभोक्ता विवाद निवारण मंच स्थापित करेगी जिसे जिला मंच के नाम से जाना जायेगा।

राज्य सरकार एक जिले में एक से अधिक जिला मंच भी स्थापित कर सकती है।

गठन धारा 10 (1) के अनुसार

जिला मंच में निम्नलिखित को शामिल किया जाता है–

(i) व्यक्ति जो जिला न्यायाधीश हो या रहा हो बनने की योग्यता रखता हो, इसका अध्यक्ष होगा।

(ii) योग्यता, सत्यनिष्ठा और ख्याति प्राप्त दो व्यक्ति–सदस्य। इनमें एक महिला होगी।

ऐसे व्यक्ति के पास किसी स्नातक डिग्री का होना आवश्यक है तथा व्यक्ति की आयु कम से कम 35 वर्ष होना आवश्यक है। व्यक्ति के पास अर्थशास्त्र, विधि, वाणिज्य, लेखांकन, उद्योग, जनसम्पर्क अथवा प्रकाशन का ज्ञान एवं 10 वर्ष का अनुभव होना चाहिए।

अयोग्यताएँ– निम्नलिखित को अयोग्य माना जाता है–

(i) नैतिक किस्म के अपराध का दोषी पाया गया हो।

(ii) अमुक्त दिवालिया व्यक्ति।

(iii) सरकारी या किसी समामेलित संस्था की नौकरी से बर्खास्त व्यक्ति।

(iv) अस्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति।

नियुक्तियाँ राज्य सरकार द्वारा एक चयन समिति की सिफारिश पर की जायेगी।

सदस्यों का कार्यकाल धारा 10 (2) के अनुसार

जिला मंच के सदस्य का कार्यकाल 5 वर्ष अथवा 65 वर्ष तक की आयु (इन दोंनो मे से जो पहले हो) होगा एवं इनकी पुनर्नियुक्ति नहीं हो सकेगी। यदि कोई सदस्य त्याग–पत्र देना चाहे तो वह इस आशय की सूचना राज्य सरकार को देगा तथा त्याग–पत्र स्वीकार होने पर उसका स्थान खाली हो जायेगा।

परिश्रमिक व सेवा शर्तें आदि

धारा 10 (a) के अनुसार, जिला मंच के सदस्यों को देय पारिश्रमिक व भत्ते तथा सेवा–शर्तें राज्य सरकार द्वारा निर्धारित की गई होंगी।

जिला मंच का क्षेत्राधिकार–[धारा (11)]

जिला मंच के क्षेत्राधिकार में उन माल अथवा सेवाओं से सम्बन्धित शिकायतों की सुनवाई की जाती है जिनकी क्षतिपूर्ति की कुल राशि 20 लाख रूपये से अधिक न हो।

जिला मंच के क्षेत्राधिकार की स्थानीय सीमाओं में शिकायत की जा सकती है–

(i) जहाँ विरोधी पक्ष अथवा एक से अधिक विरोधी पक्ष होने पर प्रतिपक्ष दलों का प्रत्येक विरोधी पक्षकार शिकायत करते समय रहता हो या व्यवसाय चलाता हो या निजी लाभ हेतु कार्य करता हो।

(ii) एक से अधिक विरोधी पक्षकार होने पर उनमें से कोई रहते हो या व्यवसाय चलाते हो या उसका शाखा कार्यालय हो या लाभ के लिए कार्य करते हों।

(iii) जहाँ कार्यवाही का कारण उत्पन्न होता हो।

शिकायतकर्ता

शिकायत निम्नलिखित द्वारा प्रस्तुत की जा सकती है–

(अ) उपभोक्ता जिसे माल बेचा या सुपुर्द किया गया हो या ऐसी सेवाएँ दी गयी हों।

(ब) मान्य संघ, चाहे वह व्यक्ति जिसे माल बेचा या सुपुर्द किया गया है या सेवा प्रदान की है, उक्त संस्था का सदस्य हो या न हो।

(स) जिला मंच की अनुमति से एक या अधिक उपभोक्ताओं द्वारा।

(द) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार द्वारा।

शिकायत निपटारे की प्रक्रिया– (A) जिला मंच माल के सम्बन्ध में उपभोक्ता विवाद को निपटाने के लिए निम्नलिखित कार्यविधि अपनायेगा–

1. **विरोधी पक्षकार के पास शिकायत की प्रति भेजना–** जिला मंच को जब शिकायत प्राप्त होती है तो वह सबसे पहले उसकी एक प्रति प्रतिपक्ष के पास भेजेगा तथा अपना पक्ष 30 दिन के अन्दर या जिला मंच की स्वीकृति से बढ़ी हुई अवधि, जो 15 दिन से अधिक नही हो,

2. **प्रतिपक्ष द्वारा अवहेलना करने पर–** यदि प्रतिपक्ष उल्लिखित आरोपों से इन्कार करता है अथवा विवाद करता है या अपना पक्ष प्रस्तुत करने में असफल रहता या चूक करता है तो ऐसी स्थिति मे जिला मंच उपभोक्ता विवाद का निपटारा करने के लिए निम्नलिखित कार्यवाही करेगा–

(a) यदि शिकायत किसी ऐसे दोष के सम्बन्ध में हो जिसका निर्धारण माल का विश्लेषण या जाँच के बिना सम्भव नही हो तो जिला मंच शिकायतकर्ता से उक्त माल का नमूना प्राप्त करेगा और उसका विश्लेषण या जाँच करने के लिए उपयुक्त प्रयोगशाला के पास भेज देगा। प्रयोगशाला द्वारा 45 दिन में या बढ़ी हुयी अवधि में रिपोर्ट दी जायेगी।

(b) प्रयोगशाला के पास नमूना भेजने से पहले शिकायतकर्ता को जिला मंच द्वारा निर्देशित शुल्क जिला मंच के पास जमा कराना होगा। प्रतिवेदन की प्रति, अपनी उपयुक्त टिप्पणियों सहित, प्रतिपक्ष के पास भेज देगा।

3. **प्रतिपक्ष तथा शिकायतकर्ता की सुनवाई–** जिला मंच प्रतिपक्ष तथा शिकयतकर्ता को प्रयोगशाला द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन के सम्बन्ध में की गई आपत्तियों की सुनवाई का पर्याप्त अवसर प्रदान किया जाता है तत्पश्चात् ही जिला मंच उचित आदेश देता है।

(B) सेवा सम्बन्धी शिकायतों के निवारण की प्रक्रिया– ऐसी स्थिति में जिल मंच निम्नलिखित कार्यविधि अपनायेगा–

(i) **प्रतिपक्ष के पास शिकायत की प्रति भेजना–** जिला मंच शिकायत प्राप्त होने पर उसकी एक प्रति प्रतिपक्ष के पास भेजेगा जिसमें यह उल्लेख होगा कि वह इस मामले में अपना पक्ष 30 दिन के अन्दर या जिला मंच द्वारा बढ़ाई गई अवधि, जो 15 दिन से अधिक की नहीं हो सकती, के अन्दर प्रस्तुत करें।

(ii) **प्रतिपक्ष द्वारा इन्कार या अवहेलना करने पर–** यदि शिकायत की प्रति प्राप्त होने पर प्रतिपक्ष शिकायत में उल्लिखित आरोंपों से मना करता है या विवाद करता है या दी गई अवधि में अपना पक्ष प्रस्तुत करने में चूक करता है तो ऐसी स्थिति में जिला मंच निम्नलिखित कार्यवाही करता है–

यदि प्रतिपक्ष शिकायत में उल्लिखित आरोपों से मना करता है, विवाद का निपटारा करेगा।

जिला मंच के अधिकार [धारा 13 (4)]– जिला मंच को निम्नलिखित मामलों में वही अधिकार है जो कि नागरिक प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन एक सिविल न्यायालय को है–

(i) प्रतिवादी अथवा साक्षी को सम्मन जारी करना,

(ii) उपस्थित होने के लिए बाध्य करना,

(iii) गवाह का शपथ–पत्र स्वीकार करना,

(iv) प्रयोगशाला से किसी माल की जाँच करना,

(v) गवाहों की जाँच करने का आदेश निर्गमित करना।

जिला मंच के समक्ष प्रस्तुत की गई सम्पूर्ण कार्यवाही को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 193 व 228 के अधीन न्यायिक कार्यवाही माना जायेगा तथा जिला मंच को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 के लिए सिविल न्यायालय माना जायेगा।

जिला मंच के आदेश– जब जिला मंच सन्तुष्ट हो जाता है कि जिस माल के दोषो के विरूद्ध शिकायत की गई है, उनमे कोई भी दोष विद्यामन है अथवा सेवाओं के विरूद्ध लगाये गये आरोप सिद्ध होते है वह प्रतिपक्ष को निम्नलिखित बातों का पालन करने को कह सकता है–

(i) माल के सम्बन्ध में दोष को दूर करना,

(ii) माल को दोष रहित माल से बदलना,

(iii) माल की कीमत वापस लौटाना,

(iv) क्षतिपूर्ति की राशि का भुगतान करना,

(v) अनुचित व्यवहार अथवा प्रतिबन्धात्मक व्यापार–व्यवहार को बन्द करना,

(vi) खतरनाक माल बेचने का प्रस्ताव न करना।

कार्यवाही का संचालन जिला मंच के अध्यक्ष द्वारा कम से कम एक सदस्य के साथ बैठकर किया जाता है तथा यदि कोई ऐसा सदस्य कार्यवाही के संचालन में भाग नही ले पाता है तो अन्य सदस्य के साथ मिलकर कार्यवाही का संचालन किया जाता है।

जब कार्यवाही का संचालन अध्यक्ष तथा किसी एक सदस्य द्वारा किया गया हो और वे एकमत न हो तो वे अपने मतभेद को अन्य सदस्य के समक्ष प्रस्तुत करेंगे तथा बहुमत से ही जिला मंच का आदेश माना जायेगा।

जिला मंच के आदेश के विरूद्ध अपील– धारा 15 के अनुसार, जिला मंच के

आदेश से पीड़ीत व्यक्ति राज्य आयोग के समक्ष आदेश की तिथि से 30 दिन के अन्दर, अपील कर सकता है। किन्तु यदि राज्य आयोग चाहे तो 30 दिन के बाद भी अपील स्वीकार कर सकता है।

II. राज्य आयोग

राज्य आयोग के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रावधान है–

स्थापना धारा 19 (b)– राष्ट्र के संविधान के ढाँचे के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य में राज्य सरकार उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग की स्थपना कर सकती है जिसे राज्य आयोग कहा जाता है। राज्य आयोग की स्थापना उपभोक्ता निवारण हेतु राज्य सरकार द्वारा की जाती है। इसके लिए राज्य सरकार अधिसूचना निर्गमित करती है।

आयोग का गठन– धारा 16 (a) के अनुसार, राज्य आयोग का गठन निम्नवत् किया जायेगा–

(i) व्यक्ति जो उच्च न्यायालय का न्यायाधीश हो या रह चुका हो और जिसकी नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाये, वह राज्य आयोग का अध्यक्ष होगा। अध्यक्ष की नियुक्ति उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सलाह के बिना नहीं की जायेगी।

(ii) दो अन्य सदस्य जो योग्यता, सत्यनिष्ठा और ख्याति प्राप्त हो तथा ऐसे व्यक्ति अर्थशास्त्र, लेखाशास्त्र, कानून, उद्योग, जनसम्पर्क या प्रशासन का ज्ञान अथवा अनुभव रखते हो। इन दो सदस्यों में से एक महिला होगी।

(iii) ऐसे व्यक्ति की कम से कम आयु 35 वर्ष हो।

(iv) स्नातक डिग्री हों।

अधिक से अधिक 50% सदस्य ऐसे होने चाहिए जिनकी न्यायिक पृष्ठभूमि हो।

अयोग्यताएँ

निम्नलिखित व्यक्तियों को आयोग का सदस्य नहीं बनाया जा सकता–

(i) व्यक्ति नैतिक अपराध का दोषी पाया गया हो और कारावास की सजा हुई हो,

(ii) अमुक्त दिवालिया हो,

(iii) अस्वस्थ मस्तिष्क वाला व्यक्ति हो,

(iv) यदि राज्य सरकार की सम्पत्ति में उसका कोई वित्तीय अथवा अन्य प्रकार का हित हो जिससे उसकी निष्पक्षता के प्रभावित होने की सम्भावना हो,

(v) व्यक्ति जिसे सरकारी अथवा समामेलित संस्था की नौकरी से हटाया गया हो या निष्कासित किया गया हो,

(vi) यदि उसमें राज्य सरकार द्वारा निर्धारित कोई अन्य अयोग्यता हो।

सदस्यों की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा एक चयन समिति की सिफारिश पर की जायेंगी।

वेतन, भत्ते व सेवा शर्तें आदि– सदस्यों को देय वेतन अथवा मानदेय राशि एवं अन्य भत्ते तथा सेवा शर्तें राज्य सरकार द्वारा निर्धारित की जायेगी।

कार्यकाल धारा 16 (3)– इस अधिनियम के अनुसार, राज्य आयोग के सदस्य का कार्यकाल 5 वर्ष या 67 वर्ष की आयु तक, जो भी पहले रहेगा, सदस्यों की पुनर्नियुक्ति नहीं की जा सकेगी।

न्यायिक क्षेत्राधिकार– [धारा 17] राज्य आयोग का न्यायिक क्षेत्राधिकार इस प्रकार है–

(i) प्रत्यक्ष रूप से ऐसी शिकायतों पर विचार करना जिनमें माल या सेवा का मूल्य तथा क्षतिपूर्ति 5 लाख रू0 या उससे अधिक किन्तु 20 लाख रूपये से कम हो।

(ii) उस राज्य के किसी जिला मंच द्वारा दिये गये निर्णय के विरूद्ध की गई याचिका पर विचार करना।

(iii) जिला मंच के अधीन कोई उपभोक्ता विवाद जो विचाराधीन हो या निर्णय दे दिया गया हो और उसके सम्बन्ध मे राज्य आयोग को यह लगता हो कि सम्बन्धित जिला मंच ने अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन किया हो या क्षेत्राधिकार का पालन करने में असमर्थ रहा हो तो वांछित अभिलेखों को मँगवाना तथा आदेश निर्गमन करना।

राज्य आयोग द्वारा अपनायी जाने वाली उपभोक्ता विवादों के निपटारे की प्रक्रिया– उपभोक्ता विवादों का निपटारा करने हेतु राज्य आयोग द्वारा अपनायी जाने वाली प्रक्रिया जिला मंच द्वारा शिकायतों का निपटारा करने के लिए अपनायी जाने वाली प्रक्रिया के समान होगी।

धारा 18 के अनुसार, यदि जिला मंच की कार्यविधि में कोई संशोधन किया जाता है तो वे संशोधन ज्यों के त्यों राज्य आयोग की प्रक्रिया पर भी प्रभावी होते है।

अध्यक्ष का पद रिक्त होना [धारा 18 (A)]– यदि राज्य आयोग के अध्यक्ष का पद रिक्त है अथवा अन्य किसी कारण से वह अपने कर्तव्यों का निष्पादन करने में असमर्थ है तो राज्य सरकार द्वारा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के पास भेज देगी तथा जो अध्यक्ष के कार्य का निष्पादन करने के लिए उच्च न्यायालय क न्यायाधीश को मनोनीत करेगा।

राज्य आयोग के आदेश के विरूद्ध अपील किया जाना– [धारा 19] राज्य आयोग के आदेश से पीड़ित व्यक्ति आदेश की तिथि से 30 दिन के अन्दर राष्ट्रीय आयोग के समक्ष अपील कर सकता है। ऐसी अपील निर्धारित प्रारूप एवं ढंग से की जानी चाहिए।

राष्ट्रीय आयोग 30 दिन की इस अवधि के समाप्त हो जाने के पश्चात् भी अपील स्वीकार कर सकता है।

III. राष्ट्रीय आयोग

केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा **राष्ट्रीय आयोग** की स्थापना कर सकेगी। भारत में उपभोक्ता के विवादों को हल करने हेतु यह एक स्वतन्त्र एवं वैधानिक संस्था है। इसका पूरा नाम राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग है।

गठन– राष्ट्रीय आयोग में निम्नलिखित को शामिल किया जाता है–

(i) एक ऐसा व्यक्ति जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हो या रह चुका हो और जिसकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाये, वह इस आयोग का अध्यक्ष

होगा। उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सलाह के बिना अध्यक्ष की नियुक्ति नहीं की जा सकती है।

(ii) चार अन्य ऐसे सदस्य जो योग्यता, सत्यनिष्ठा एवं ख्यातिप्राप्त व्यक्ति होगें तथा अर्थशास्त्र, लेखाशास्त्र, जनसम्पर्क या प्रशासन का ज्ञान अथवा अनुभव प्राप्त व्यक्ति हो। इनमें से एक सदस्य महिला होगी।

योग्यताएँ– राष्ट्रीय आयोग के सदस्य के पास निम्नवत् योग्याताएँ होनी चाहिए–

(i) उसकी आयु कम से कम 35 वर्ष की हो।

(ii) उसके पास किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय की स्नातक डिग्री हो।

(iii) योग्य, सत्यनिष्ठा और कम से कम 10 वर्ष का अनुभव वाला व्यक्ति हो।

अयोग्यताएँ– निम्नलिखित को सदस्य बनने के अयोग्य माना जाता है–

(i) ऐसा व्यक्ति किसी नैतिक अपराध का दोषी पाया गया हो और सजा हुई हो, अथवा

(ii) व्यक्ति जो अमुक्त दिवालिया हो, अथवा

(iii) व्यक्ति जो अस्वस्थ मस्तिष्क वाला हो,

(iv) व्यक्ति जिसे किसी सरकारी अथवा समामेलित संस्था की नौकरी से हटाया अथवा निष्कासित किया गया हो, अथवा

सदस्यों की नियुक्तियाँ केन्द्रीय सरकार द्वारा एक चयन समिति की सिफारिश पर की जायेगी। चयन समिति में निम्न व्यक्ति होंगे–

(i) व्यक्ति जो उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश हो इसे भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा नामांकित किया जायेगा जो कि इसका अध्यक्ष होगा।

(ii) भारत के विधि विभाग तथा उपभोक्ता मामलों के सचिव इसके सदस्य होंगे।

वेतन, भत्ते व सेवा शर्तें आदि– राष्ट्रीय आयोग के सदस्यो को देय वेतन, भत्ते एवं शर्तें केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित की गई होंगी।

कार्यकाल– राष्ट्रीय आयोग के सदस्य का कार्यकाल 5 वर्ष या 70 वर्ष की आयु तक, जो भी पहले हो, होगा। सदस्य की पुनर्नियुक्ति नहीं की जा सकती है।

आयोग का न्यायिक क्षेत्राधिकार– [धारा 21] राष्ट्रीय आयोग का क्षेत्राधिकार इस प्रकार होगा–

(i) ऐसी शिकायतों पर विचार करना जिनमें माल सेवा मा मूल्य तथा क्षतिपूर्ति 1 करोड़ रू0 से ज्यादा हो।

(ii) राज्य आयोग के आदेश के विरूद्ध की गई अपील पर सुनवाई करना।

(iii) राज्य आयोग के अधीन विचारधीन या निर्णीत कोई उपभोक्ता विवाद जिसके सम्बन्ध में राष्ट्रीय आयोग को यह लगता हो कि सम्बन्धित राज्य आयोग ने अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन किया है या क्षेत्राधिकार का उपयोग करने में असमर्थ रहा है या अपने न्यायिक क्षेत्राधिकार का उपयोग करने में मौलिक अनियमितता की है तो सम्बन्धित अभिलेखों को मँगवाना एवं समुचित आदेश देना।

राष्ट्रीय आयोग द्वारा अपील की सुनवायी की प्रक्रिया–

राज्य आयोग के आदेशों के विरूद्ध अपील राष्ट्रीय आयोग के समक्ष की जाती है। उपभोक्ता संरक्षण नियम, 1987 के नियम 15 के अनुसार राष्ट्रीय आयोग राज्य आयोगों के आदेश के विरूद्ध अपीलों पर सुनवाई की निम्नलिखित प्रक्रिया अपनायेगा–

(i) **अपीलार्थी द्वारा अपील करना–** राष्ट्रीय आयोग के समक्ष अपील करने के लिए अपीलार्थी या उसका एजेण्ट एक स्मरण–पत्र प्रस्तुत करता है। यह स्मरण पत्र व्यक्तिशः या पंजीकृत डाक से भेजा जा सकता है।

(ii) **स्मरण पत्र का प्रारूप–** स्मरण–पत्र पठनीय **लेख में या टाइप** किया हुआ, **विभिन्न शीषकों में बँटा हुआ** होगा तथा

(iii) **राज्य आयोग के आदेश की प्रतिलिपि करना–** स्मरण–पत्र के साथ राज्य आयोग के आदेश की प्रमाणित प्रतिलिपि भी संलग्न की जायेगी।

(iv) स्मरण–पत्र के साथ अपील आदेश का विरोध करने वाले आधारों के प्रमाण भी संलग्न किये जायें।

(v) **अपील की अवधि समाप्त होने के बाद अपील किया जाना–** अपील के लिए दी गई अवधि समाप्त हो जाने की स्थिति में तो अपील के स्मरण–पत्र के साथ उन तथ्यों का शपथ–पत्र भी संलग्न करना होगा जिनके आधार पर अपीलार्थी अपील स्वीकार करने के लिए राष्ट्रीय आयोग को सन्तुष्ट करना चाहता है।

(vi) **प्रतियों की संख्या–** अपीलार्थी को स्मरण–पत्र की छः प्रतियाँ संलग्न करनी पड़ती है।

(vii) **सुनवायी पर उपस्थिति**– प्रत्येक पक्षकार या उसके एजेण्ट को अपील की सुनवायी की निर्धारित तिथि पर राष्ट्रीय आयोग के समक्ष उपस्थित होना चाहिए। यदि अपीलार्थी या उसका एजेण्ट उपस्थित नहीं होते हैं तो आयोग उस अपील को निरस्त कर सकता है या एक पक्षकार को सुनकर निर्णय कर सकता है। यदि बचाव पक्ष या प्रतिनिधि उपस्थित नहीं होंगे तो आयोग एक पक्षकार को सुन लेगा तथा अपील का गुण–दोष के आधार पर निर्णय करेगा।

(viii) **अपील पर निर्णय स्थगन–** राष्ट्रीय आयोग जब भी चाहे अपील की सुनवाई स्थगित कर सकता है। राष्ट्रीय आयोग प्रथम सुनवाई की तिथि से 90 दिन के अन्दर अपना निर्णय देगा।

(ix) **आदेश पर हस्ताक्षर तथा संवहन–** राष्ट्रीय आयोग द्वारा दिये गये अपील के आदेश पर अध्यक्ष तथा सदस्यों के हस्ताक्षर होने चाहिए।

ऐसे आदेश की सूचना सम्बन्धित पक्षों को निःशुल्क दी जायेगी।

शिकायत निवारण की प्रक्रिया– उपभोक्ता संरक्षण नियम, 1987 के अनुरूप केन्द्रीय सरकार ने राष्ट्रीय आयोग द्वारा शिकायतों के निपटारे के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम तय किये है–

(1) **शिकायत प्रस्तुत करना–** राष्ट्रीय आयोग के समक्ष शिकायत करेन सम्बन्धी नियम निम्नवत् है–

(i) शिकायत को शिकायतकर्ता द्वारा स्वयं या एजेण्ट द्वारा प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

(ii) शिकायत व्यक्तिगत रूप से या पंजीकृत डाक द्वारा की जा सकती है।

(iii) शिकायत में शिकायतकर्ता का नाम, पता तथा विवरण, विरोधी पक्षकार का नाम, पता एवं विवरण होना चाहिए।

(iv) शिकायत से सम्बन्धित तथ्य, शिकायत उत्पन्न होने का स्थान, समय आदि का उल्लेख हो।

(v) आरोपों को पुष्ट करने वाले प्रलेख हो।

(vi) शिकायत के लिए अपेक्षित राहत का दावा किया गया हो।

राष्ट्रीय आयोग शिकायत निवारण हेतु वही प्रक्रिया अपनायेगा जो जिला मंच अपनाता है।

(2) **सुनवाई की तिथि पर उपस्थिति–** सभी सम्बन्धित पक्षकार अथवा उसके एजेण्ट राष्ट्रीय आयोग के समक्ष निर्धारित या स्थगित की गई तिथि पर उपस्थित रहेंगे।

राष्ट्रीय आयोग शिकायत की सुनवाई को स्थगित भी कर सकता है परन्तु राष्ट्रीय आयोग की सुनवाई की तिथि से पाँच महीने के अन्दर अपना निर्णय दे देगा।

(3) **आदेश देना–** राष्ट्रीय आयोग सुनवाई की कार्यवाही पूरी हो जाने पर निम्नलिखित कार्यों को करने के सम्बन्ध में आदेश दे सकता है–

(i) माल में **दोष को दूर करने के लिए।**

(ii) उसी प्रकार का नया **दोषमुक्त माल देने के लिए।**

(iii) **चुकाये गये मूल्य को लौटाने के लिए।**

(iv) उपभोक्ता को हुई क्षति या हानि की पूर्ति के लिए **मंच द्वारा निर्धारित राशि देने के लिए।**

(v) सेवाओं के दोषों को दूर करने के लिए।

(vi) अनुचित व्यापार–व्यवहार या प्रतिबन्धात्मक व्यापार–व्यवहार को बन्द करने या उसकी पुनरावृत्ति न करने के।

(vii) खतरनाक माल के बेचने का प्रस्ताव नहीं करने तथा बेचने के लिए किये जा रहे प्रस्ताव को वापस लेने के लिए।

(4) राष्ट्रीय आयोग के आदेश के विरूद्ध याचिका दायर करना– राष्ट्रीय आयोग के आदेश से पीड़ित व्यक्ति उक्त आदेश की तिथि से 30 दिन में उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकता है।

धारा 23 कहती है कि उच्चतम न्यायालय 30 दिन की अवधि समाप्त हो जाने के पश्चात् भी अपील को तब स्वीकार कर सकता है जब वह इस बात से सन्तुष्ट हो कि निर्धारित अवधि में अपील न करने के पर्याप्त कारण थे।

आदेशों की अन्तिमता [धारा 24]– किसी व्यक्ति द्वारा जिला मंच, राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग में से किसी के भी आदेश के विरूद्ध अपील न करने की स्थिति में सम्बन्धित आदेश अन्तिम माना जाता है।

परिसीमा अवधि [धारा 24 (A)(i)]– जिला मंच, राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग ऐसी शिकायतों को स्वीकार नहीं कर सकतें जो कार्यवाहीं के कारण के उत्पन्न होने की तिथि से 2 वर्ष के भीतर प्रस्तुत नहीं की जाती है।

जिला मंच, राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग शिकायतों को उक्त अवधि के बाद भी स्वीकार कर सकेगा बशर्ते शिकायतकर्ता उन्हें सन्तुष्ट कर दे कि निर्धारित अवधि में अपील न करने के पर्याप्त कारण थे।

प्रशासनिक नियन्त्रण [धारा 24 (B)]– राष्ट्रीय आयोग का राज्य आयोगों पर प्रशासकीय नियन्त्रण निम्नलिखित के सम्बन्ध में होना है–

(i) दावों के संस्थापन, निपटारा, विचारण आदि के सम्बन्ध में प्रतिवेदन माँगना,

(ii) मामलों की सुनवाई में समान प्रक्रिया अपनाना।

राज्य आयोग का अपने क्षेत्राधिकार के सभी जिला मंचों पर प्रशासकीय नियन्त्रण होगा।

आदेशो को लागू करना [धारा 25]– जिला मंच, राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग द्वारा दिये गये आदेशों को वैसे ही लागू किया जायेगा जैसे कि एक न्यायालय द्वारा अपने यहाँ प्रस्तुत किसी विवाद के सम्बन्ध में दिये गये आदेश या डिक्री को लागू किया जाता है। यदि आदेश को लागू कराना सम्भव न हो तो ऐसी स्थिति मे उसके द्वारा उक्त आदेश को स्थानीय क्षेत्राधिकार वाले किसी ऐसे न्यायालय के पास भेजाना वैधानिक होगा जिसके क्षेत्राधिकार में–

(i) कम्पनी का पंजीकृत कार्यालय स्थित हो।

(ii) जहाँ व्यक्ति स्वेच्छा से निवास करता हो या व्यापार करता हो या लाभ के लिए व्यक्तिगत कार्य करता हो।

तत्पश्चात् न्यायालय आदेश को उसी प्रकार से कार्यान्वित करेगा जिस प्रकार कि वह स्वयं के द्वारा दिये गये आदेश या डिक्री लागू करता है।

तुच्छ या तंग करने वाली शिकायतों को निरस्त किया जाना [धारा 26]– यदि शिकायत तुच्छ या तंग करने वाली पायी जाय तो जिला मंच, राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग उक्त शिकायत को निरस्त कर सकता है तथा विरोधी पक्ष को शिकायतकर्ता द्वारा लागू जो कि 10,000रू0 से अधिक न हो देने का आदेश दे सकता है।

दण्ड सम्बन्धी प्रावधान [धारा 27]– जिला मंच, राज्य आयोग या राष्ट्रीय अयोग द्वारा दिये गये आदेश की अनुपालना करने में यदि कोई व्यापारी या व्यक्ति असफल रहता है तो ऐसा व्यापारी या व्यक्ति कम से कम एक महीना तथा अधिक से अधिक तीन वर्ष तक के कारावास अथवा कम से कम 2,000 रू0 तथा अधिकतम 10,000रू0 तक आर्थिक दण्ड अथवा दोनों का भागी हो सकता है।

यदि जिला मंच राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग मामले की परिस्थितियों को देखते हुए सन्तुष्ट हो जाता है तो न्यूनतम दण्ड से भी कम दण्ड दे सकते है।

3.11 विविध

सद्विश्वास में की गई कार्यवाही का संरक्षण [धारा 28 से 29 तक]–

धारा 28 के अनुसार, यदि जिला मंच, राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग एवं उनके आदेशो के निर्गमन के सम्बन्ध में सद्विश्वास से कार्य किया है तो उक्त जिला मंच राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग के किसी सदस्य, अधिकारी या कार्य करने वाले किसी अन्य व्यक्ति के विरूद्ध कोई वैधानिक कार्यवाही नहीं की जा सकेगी।

नियम बनाने का अधिकार [धारा 30 से 31 तक]–

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम में नियम बनाने के अधिकार केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों को दिये गये है–

(1) **केन्द्रीय सरकार के अधिकार–** केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के सम्बन्ध में [धारा 4] तथा [धारा 22] के सम्बन्ध में नियम संसद की मंजूरी से बना सकती है।

(2) **राज्य सरकार के अधिकार–** राज्य सरकार अधिसूचना निर्गमित करके इस अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के सम्बन्ध में धारा 10 (3), 12 (2), 13 (1) (c), 14 (3), 15 तथा 16 (2) के सम्बन्ध नियम बना सकती है।

3.12 सारांश

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 उपभोक्ता के हितों के संरक्षण के लिए तथा उपभोक्ता विवादों के निपटारे क लिए लागू किया गया। यह अधिनियम 1 जुलाई 1987 से समस्त भारत में (जम्मू और कश्मीर को छोड़कर) लागू हुआ। उक्त अधिनियम के अंतर्गत उपभोक्ताओं के विवादों को तय करने के उद्देश्य से जिला स्तर पर जिला फोरम, राज्य स्तर पर राज्य आयोग तथा राष्ट्र स्तर पर राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की गयी। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य उपभोक्ता को उनके अधिकारों को बताना तथा उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करना एवं उनके हितों का संरक्षण करना है।

यह अधिनियम सभी माल व सेवाओं पर लागू होता है। इस अधिनियम में सन् 1991, 1993, 1996 एवं सन् 2002 में हुए आधारभूत संशोधनो का यथा स्थान उल्लेख किया गया है।

उपर्युक्त उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 में कुल मिलाकर 31 धाराएँ है जो कि चार अध्यायों में विभक्त है। पहला अध्याय है प्रारंभिक, जिसमें 1 से 3 तक धाराएँ है। दूसरा अध्याय है उपभोक्ता संरक्षण परिषदें जिसमें 4 से 8 तक की धाराएं है, तीसरा अध्याय है उपभोक्ता विवाद निवारण एजेन्सीज जिसमें 9 से लेकर 27 तक धाराएं है। तथा चौथा अध्याय है विविध, जिसमें 28 से लेकर 31 तक धाराएं है। प्रस्तुत अधिनियम उभोक्ता की शिकायतों को शीघ्रता से तथा कम व्यय पर दूर करने की व्यवस्था करता है। इस अधिनियम की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि अब सीधा क्रेता होना आवश्यक नहीं है, बल्कि अधिनियम के अंतर्गत किसी दोषपूर्ण वस्तु या उत्पादन का उपभोक्ता एवं उपभोक्ता संगठन भी माल अथवा सेवा में हुई कमियों के सिलसिले में सम्बंधित कम्पनी के विरूद्ध सादे कागज पर व्यक्तिगत रूप में या डाक के माध्यम से शिकायत दर्ज कराकर विविध परितोष के रूप में क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकता है।

3.13 शब्दावली

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986– उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 उपभोक्ता हितो के संरक्षण के लिए तथा उपभोक्ता विवादो के निपटारे के लिए 1 जुलाई 1987 से समस्त भारत (जम्मू और कश्मीर को छोड़कर) लागू हुआ।

उपभोक्ता– कोई ऐसा व्यक्ति जिसने प्रतिफल के बदले किसी माल को खरीदा हो तथा जिसका भुगतान कर दिया हो अथवा भुगतान करने का वचन दिया हो।

शिकायतकर्ता या परिवादी– वो कोई भी व्यक्ति या उपभोक्ता संघ, केन्द्र सरकार या राज्य सरकार या समान प्रकार का हित रखने वाला हो सकता है।

शिकायत– शिकायत का आशय शिकायतकर्ता द्वारा इस अधिनियम के अंतर्गत राहत पाने के लिए लिखित रूप से प्रस्तुत किये गये किसी दोषारोपण से है।

केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद– केन्द्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद केन्द्र सरकार द्वारा संचालित परिषद है।

राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद– राज्य उपभोक्ता संरक्षण परिषद केन्द्र सरकार द्वारा संचालित परिषद है।

जिला उपभोक्ता संरक्षण परिषद– राज्य सरकार की अधिसूचना द्वारा प्रत्येक जिले में जिला उपभोक्ता समिति की स्थापना करती है।

विवाद निवारण ऐजेन्सी– उपभोक्ता विवादों के निवारण के लिए बनाई गई अर्द्ध–न्यायिक व्यवस्था है।

जिला मंच– राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा प्रत्येक जिले में उपभोक्ता निवारण मंच बनाती है। जिला मंच के क्षेत्राधिकार में उन माल अथवा सेवाओ से संबंधित शिकायतों की सुनवाई की जाती है, जिसकी क्षतिपूर्ति की कुल राशि 20 लाख रू0 से अधिक न हो।

राज्य आयोग– राष्ट्र के संविधान के ढाँचे के अंतर्गत प्रत्येक राज्य में राज्य सरकार उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग की स्थापना कर सकती है। जिसे राज्य आयोग कहा जाता है। इस आयोग का काम प्रत्यक्ष रूप से ऐसी शिकायतों पर विचार करना है जिनमें माल या सेवा का मूल्य 5 लाख रू0 या उससे अधिक किन्तु 20 लाख रू0 से कम है।

राष्ट्रीय आयोग– केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा राष्ट्रीय आयोग की स्थापना होती है। इस आयोग का क्षेत्राधिकार ऐसी शिकायतों पर विचार करना होता है, जिनमें माल या सेवा का मूल्य तथा क्षतिपूर्ति की राशि 1 करोड़ रू0 ज्यादा हों।

3.14 बोध प्रश्न

यह बताइये कि निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर सही है या गलत।

(i) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1964 में पारित हुआ था।

(ii) जिला समिति में कम से कम दो स्त्री सदस्यों की नियुक्ति होना आवश्यक है।

(iii) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम में सन् 2002 में महत्वपूर्ण संशोधन हुये है।

(iv) जिला मंच अंतरिम आदेश पारित कर सकते है।

(v) राज्य आयोग सदस्य की न्यूनतम उम्र 35 वर्ष होनी चाहिये।

(vi) जिला मंच के सदस्य का स्नातक होना आवश्यक है।

(vii) सामान्यतः उपभोक्ता द्वारा शिकायत प्रस्तुत करने पर तिथि से चार सप्ताह में उसकी सुनवाई होनी आवश्यक है।

(viii) जिला मंच 20 लाख रू0 तक के विवादों पर सुनवाई कर सकता है।

3.15 बोध प्रश्न के उत्तर

उत्तर– (i) असत्य (ii) असत्य (iii) सत्य (iv) सत्य
(v) सत्य (vi) सत्य (vii) असत्य (viii) सत्य

3.16 स्वपरख प्रश्न

1. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत उपभोक्ता के क्या अधिकार है ?
2. उपभोक्ता संरक्षण (संशोधन) अधिनियम 2002 के क्या प्रावधान है ?
3. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के प्रमुख प्रावधानों को बताइये।
4. उपभोक्ता कौन है ? बताइये।
5. जिला उपभोक्ता मंच क्या है ?
6. राज्य आयोग पर टिप्पणी लिखिए।
7. राष्ट्रीय आयोग क्या है ? बताइये।

3.17 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws: Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (p) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law: Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law: K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई 4 विनिमय साध्य लेखपत्र अधिनियम 1881 (Negotiable Instrument Act 1881)

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 विनिमय साध्य लेखपत्र का अर्थ एवं परिभाषा
4.3 विनिमय साध्य लेखपत्र की विशेषतायें
4.4 विनिमय साध्य लेखपत्र की मान्यतायें
4.5 विनिमय साध्य लेखपत्र के प्रकार
 4.5.1 प्रतिज्ञा पत्र
 4.5.2 विनिमय विपत्र
 4.5.3 प्रतिज्ञा पत्र व विनिमय विपत्र में अन्तर
 4.5.4 चैक
 4.5.5 चैक व विनिमय विपत्र में अन्तर
4.6 विनिमय साध्य लेखपत्र के पक्षकार एवं उनके दायित्व
4.7 विनिमय साध्य लेखपत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन
4.8 बैंक द्वारा चैक का भुगतान करने से मना करना
4.9 धारक
4.10 यथाविधिधारी
4.11 यथाविधिधारी के विशेष अधिकार
4.12 सारांश
4.13 शब्दावली
4.14 बोध प्रश्न
4.15 बोध प्रश्नो के उत्तर
4.16 स्वपरख प्रश्न
4.17 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- विनिमय साध्य विलेख का अर्थ समझ सकें ।
- विनिमय साध्य विलेख के प्रकार तथा पक्षकारों को समझ सकें ।
- विनिमय साध्य विलेख में महत्वपूर्ण परिवर्तनों को समझ सकें ।
- बैंक कब चैक का भुगतान करने से मना कर सकता है, को समझ सकें
- विनिमय साध्य विलेख का धारक तथा यथाविधिधारी कौन होता है, उसे समझ सकें
- यथाविधिधारी के विशेष अधिकारों को समझ सकें ।

4.1 प्रस्तावना

भारत में विनिमय साध्य लेखपत्रों से सम्बन्धित अधिनियम 1881 में पारित हुआ। यह अधिनियम सम्पूर्ण भारत में 1 मार्च 1881 से कार्यशील हुआ। यह अधिनियम सर्वाधिक प्रचलित तीन प्रकार के विनिमय साध्य लेखपत्रों जैसे– प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय विपत्र तथा चैक से सम्बन्धित नियमों का उल्लेख करता है। यह अधिनियम अन्य विनिमय विपत्रों जैसे– हुंडियों, ट्रेजरी बिल आदि पर भी लागू होता

है बशर्ते कि उनके प्रतिकूल कोई स्थानीय प्रथा प्रचलित न हो। इस इकाई में आप विनिमय साध्य लेखपत्रों की विशेषताओं, मान्यताओं, उनके प्रकार व पक्षकारों के साथ–साथ विनिमय विपत्रों के धारी तथा यथाविधिधारी का भी अध्ययन करेंगे।

4.2 विनिमय साध्य लेखपत्र का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and definition of Negotiable Instrument)

'विनिमयसाध्य' का शाब्दिक अर्थ सुपुर्दगी द्वारा हस्तांतरित और 'लेखपत्र' शब्द का अभिप्राय, किसी ऐसे लिखित दस्तावेज से है जिससे किसी व्यक्ति के पक्ष में किसी अधिकार का सृजन होता है। इस प्रकार शाब्दिक अर्थ में 'विनिमय साध्य लेखपत्र' एक ऐसा लिखित दस्तावेज होता है जिसका हस्तांतरण सुपुर्दगी द्वारा किया जा सकता है।

विनिमयसाध्य लेखपत्र अधिनियम 1881 की धारा 13 के अनुसार, "विनिमय साध्य लेखपत्र से अभिप्राय किसी ऐसे प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र अथवा चैक से है जो किसी आदेशित व्यक्ति या वाहक को देय हो"।

उक्त परिभाषा के अर्न्तगत केवल प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र अथवा चैक सम्मिलित है अन्य विनिमय साध्य विलेख नहीं। इसके अतिरिक्त उक्त परिभाषा विनिमयसाध्य लेखपत्रों के स्वभाव एवं विशेषताओं को भी स्पष्ट नहीं करती। इसके लिये विलिस द्वारा दी गई परिभाषा उत्तम मानी जाती है।

विलिस के अनुसार, "एक विनिमयसाध्य लेखपत्र वह है जिसका स्वामित्व किसी भी ऐसे व्यक्ति को प्राप्त हो जाता है जो उसे सद्भावना से तथा मूल्य के बदले में प्राप्त करता है, यद्यपि जिस व्यक्ति से उसने प्राप्त किया है उसके स्वत्व में कोई दोष हो।

4.3 विनिमयसाध्य लेखपत्र की विशेषतायें (Characteristics of Negotiable Instrument)

टामस के अनुसार, "एक विनिमयसाध्य लेखपत्र वह होता है जो कि व्यापार की रीति रिवाजों तथा कानून के अनुसार विनिमय साध्य है और जिसका हस्तांतरण, बिना उत्तरदायी पक्षकार को सूचित किये, सुपुर्दगी अथवा बेचान एवं सुपुर्दगी से इस प्रकार किया जा सकता है कि (अ) इसका धारक अपने नाम से वाद प्रस्तुत कर सकता है और (ब) इसका वास्तविक हस्तांतरिती उन सब दोषों से मुक्त हो जाता है जो कि उस व्यक्ति के स्वामित्व में थे जिससे वह उसे प्राप्त करता है"।

विनिमयसाध्य लेखपत्र के निम्नलिखित लक्षण अथवा विशेषतायें हैं :–

(1) **आसान विनिमयसाध्यता –** विनिमयसाध्य लेखपत्र एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तांतरण करना आसान होता है। इसमें किसी औपचारिकता की आवश्यकता नहीं होती है। दूसरे शब्दों में विनिमय साध्य लेखपत्र के स्वामित्व का हस्तांतरण–(i)यदि वह आदेशानुसार देय है तो उसके केवल पृष्ठांकन एवं सुपुर्दगी द्वारा स्वामित्व हस्तांतरित हो जाता है और (ii) यदि वह वाहक को देय है तो केवल उसकी सुपुर्दगी देने से ही स्वामित्व का हस्तांतरण हो जाता है।

(2) **विनिमयसाध्य लेखपत्र लिखित होता है** – विनिमयसाध्य लेखपत्र लिखित होना चाहिये और उस पर बनाने वाले के हस्ताक्षर होने चाहिये।

(3) **धारक अपने नाम से वाद प्रस्तुत कर सकता है –** विनिमयसाध्य लेखपत्र के अनादृत हो जाने पर उसका धारक स्वयं अपने नाम से देनदार के विरूद्व

वाद प्रस्तुत करने का अधिकारी होता है। अर्थात देनदार यह नहीं कह सकता है कि मेरा आपसे (विनिमयसाध्य लेखपत्र के धारक) कोई सम्बन्ध नहीं है।

(4) **विनिमयसाध्य लेखपत्र मुद्रा के अनेक कार्य करता है –** विनिमयसाध्य लेखपत्र नकद रूपयों के समान ही एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तांतरित किया जाता है।

(5) विनिमयसाध्य लेखपत्र ऋण के अभिहस्तांकन (Assignment) का सबसे आसान तथा सुविधाजनक साधन है।

(6) विनिमयसाध्य लेखपत्र में मूल्यवान प्रतिफल का होना मान लिया जाता है अतः इसमें प्रतिफल का उल्लेख नहीं होता है।

(7) यह सद्भाव हस्तांतरिती **(**Bonofide transferee**)** को ऐसा अधिकार प्रदान करता है जिस पर हस्तांतरण करने वाले व्यक्ति के दोषों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(8) विनिमयसाध्य लेखपत्र हमेशा एक निश्चित रकम का होता है।

(9) विनिमयसाध्य लेखपत्र शर्त रहित होता है।

4.4 विनिमयसाध्य लेखपत्र की मान्यतायें **(Presumptions as to Negotiable Instrument)**

धारा 118 व 119 के अनुसार, किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में विनिमयसाध्य लेखपत्रों के सम्बन्ध में निम्नलिखित अनुमान या पूर्व धारणायें या मान्यतायें रहती हैं :–

प्रत्येक विनिमयसाध्य विलेख प्रतिफल के लिये लिखा गया है, हस्तांतरित (Negotiable) किया गया है, स्वीकृत **(**Accepted**)** किया गया है, पृष्ठाकन **(**Endorsed**)** किया गया है।

1) प्रत्येक विनिमयसाध्य विलेख में प्रतिफल का होना बिना प्रमाण दिये ही मान लिया जाता है।

2) प्रत्येक विनिमयसाध्य लेखपत्र उसी तिथि को लिखा गया या निष्पादित किया गया है जिस दिन वह लिखा गया है।

3) प्रत्येक विनिमयसाध्य विलेख उस पर लिखी तिथि के बाद परन्तु उसकी परिपक्वता से पूर्व उचित समय के अन्तर स्वीकृत किया गया था।

4) विनिमयसाध्य विलेख का प्रत्येक हस्तांतरण उसकी परिपक्वता से पहले किया गया था।

5) विनिमयसाध्य विलेख पर पृष्ठांकन उसी क्रम से किया गया है जिस क्रम में ये विलेख में दिखाये गये हैं।

6) यदि कोई विनिमय विलेख खो गया है या नष्ट हो गया है तो यह मान्यता कि उस पर यथोचित स्टाम्प था तथा खो जाने या नष्ट हो जाने पर उसे रद्द कर दिया गया है।

7) विनिमयसाध्य लेखपत्र का धारक यथाविधिधारी है किन्तु यदि किसी व्यक्ति ने कोई लेखपत्र अपराध या कपट के माध्यम से अथवा अवैध प्रतिफल के बदले प्राप्त किया हो तो उस सम्बन्ध में यह पूर्व धारणा समाप्त हो जाती है और उसे यह सिद्व करना होता है कि वह वास्तव में यथाविधिधारी है। यथाविधिधारी सिद्व करने के लिये निम्न तथ्यों के प्रमाण देने होते हैं :–

(अ) विनिमयसाध्य विलेख के लिये प्रतिफल दिया था।

(ब) विनिमयसाध्य विलेख के स्वत्व में दोष का उसे कोई ज्ञान नहीं था।

(स) विनिमयसाध्य विलेख में अंकित धन के देय होने से पूर्व ही वह धारक बन गया था अर्थात उसने प्राप्त कर लिया था।

4.5 विनिमयसाध्य लेखपत्र के प्रकार (Types of Negotiable Instrument)

1. प्रतिज्ञा पत्र
2. विनिमय विपत्र
3. चैक

इनके अतिरिक्त व्यापारिक प्रथा या प्रचलन द्वारा निम्न भी विनिमय विपत्र के समान माने जाते हैं–

ट्रेजरी बिल, लाभांश अधिपत्र, अंश अधिपत्र, वाहक ऋणपत्र, हुंडियां आदि।

4.5.1 प्रतिज्ञा पत्र – (Promissory Note)

धारा 4 के अनुसार, "प्रतिज्ञा पत्र एक लिखित प्रपत्र है (बैक नोट या करेंसी नोट को छोड़कर) जिस पर लिखने वाले के हस्ताक्षर होते हैं और जिसमें लिखने वाला शर्तरहित यह वचन देता है कि वह निश्चित व्यक्ति को, अथवा उसके आदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति को अथवा प्रपत्र के वाहक को एक निश्चित राशि का भुगतान करेगा"।

प्रतिज्ञा पत्र के आवश्यक तत्व (Essential Elements of Promissory Note)

उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार प्रतिज्ञा पत्र में निम्नलिखित तत्वों का होना आवश्यक है :–

(1) यह लिखित होना चाहिये :– प्रतिज्ञा पत्र होने के लिये विलेख का लिखित होना आवश्यक है। किसी भुगतान करने का मौखिक रूप से दिया गया वचन प्रतिज्ञा पत्र का रूप नहीं ले सकता है। लेखन स्याही से हो सकता है और वह मुद्रण **(Printing)** या टंकण **(Typing)** के रूप में भी हो सकता है। प्रतिज्ञा पत्र के लिये जिस शब्दावली का प्रयोग किया जाये उसका अभिप्राय भुगतान करने का स्पष्ट वचन देना होना चाहिये परन्तु उसमें 'वचन' शब्द का प्रयोग करना आवश्यक नहीं है।

<u>प्रतिज्ञा पत्र का नमूना (Specimen of Promissory Note)</u>

रू. 5000

दिल्ली

20 जुलाई,2011

प्राप्त मूल्य के बदले मै श्री वी0 एम0 मिश्रा को अथवा उसके आदेशानुसार आज से 2 माह बाद 5000रू. (पांच हजार रू.) की धनराशि और उस पर 10 प्रतिशत वार्षिक दर पर ब्याज देने का वचन देता हूँ।

(2) प्रतिज्ञा पत्र में भुगतान करने का स्पष्ट वचन अथवा प्रतिज्ञा होनी चाहिये – प्रतिज्ञा पत्र में भुगतान करने का वचन स्पष्ट रूप से होना चाहिये। केवल ऋण की स्वीकृति पर्याप्त नहीं है।

उदाहरण– राम निम्न शब्दावली में लिखे गये प्रपत्र पर हस्ताक्षर करता है :–

i. "श्री राकेश मैं आपका 5000रू0 का ऋणी हूँ"।
ii. "श्री राकेश को 5000रू0 का भुगतान करना है"।
iii. "श्री राकेश से 5000रू0 लिये हैं और मुझे वे ब्याज सहित उसको लौटाने हैं"।

उपर्युक्त प्रपत्र प्रतिज्ञा पत्र नहीं है क्योंकि उनमें राम ने भुगतान करने का कोई वचन नहीं दिया है उनमें राम ने अपने ऋणी होने की बात स्वीकार की है।

(3) **भुगतान करने का वचन शर्तरहित होना चाहिये** – प्रतिज्ञा पत्र में भुगतान का वचन शर्त रहित होना चाहिये। अर्थात भुगतान करने का वचन किसी अनिश्चित घटना के घटित होने पर अथवा किसी शर्त की पूर्ति पर निर्भर नहीं होना चाहिये। यदि किसी प्रपत्र में भुगतान करने का वचन किसी शर्त के पूरा होने पर निर्भर करता है तो वह वैध प्रतिज्ञा पत्र नहीं होगा और शर्त के पूरा होने के बाद भी वह विनिमय साध्य नहीं बनेगा।

उदाहरण– राम निम्न शब्दावली में लिखे गये प्रपत्रों पर हस्ताक्षर करता है :–

i. "मैं मोहन को अपने विवाह होने के 3 माह बाद 5000रू0 भुगतान करने का वचन देता हूँ"।
ii. "मैं मोहन को 5000रू0 भुगतान का वचन देता हूँ जब मैं नौकरी करूँगा"।
iii. "मैं मोहन को यथाशीघ्र जब भी सम्भव होगा 5000रू0 भुगतान का वचन देता हूँ"।

उपयुर्क्त प्रपत्र वैध प्रतिज्ञा पत्र नहीं हैं क्योंकि उनमें से प्रत्येक में भुगतान ऐसी अनिश्चित घटना पर आश्रित है जो सम्भवतः कभी भी घटित न हो और परिणाम स्वरूप रकम कभी भी देय न हो।

(4) **देय राशि निश्चित होनी चाहिये** – प्रतिज्ञा पत्र में भुगतान की जाने वाली रकम निश्चित होनी चाहिये अर्थात देय राशि ऐसी नहीं होनी चाहिये जिसमें कमी या वृद्वि की जा सकती हो। उदाहरण– राम यह वचन देता है कि वह मोहन को 1000 रू0 और अन्य सभी देय राशियों को जो बाद में देय हो देने का वचन देता हूँ। यहाँ पर देय राशि निश्चित नहीं है इसलिये यह वचन वैध प्रतिज्ञा पत्र नहीं हुआ।

यदि प्रतिज्ञा पत्र में ब्याज सहित भुगतान का वचन हो और ब्याज की दर दी हो तो ऐसा प्रतिज्ञा पत्र वैध माना जाता है।

(5) **प्रतिज्ञा पत्र पर लिखने वाले (वचनदाता) के हस्ताक्षर होने चाहिये** – प्रतिज्ञा करने वाले को पत्र का लेखक कहते हैं और उसके प्रतिज्ञा पत्र पर स्पष्ट हस्ताक्षर होने चाहिये। यदि प्रतिज्ञा करने वाला अशिक्षित हो तो वह अंगूठा लगा सकता है और यही उसके हस्ताक्षर मान लिये जायेंगे, परन्तु नाम का मुद्रण (Printing) या द्विद्रण (Perforation) या किसी अन्य रूप से लगी अनुकृति छाप (Facsimile impression) तथा रबड स्टाम्प से लगी छाप हस्ताक्षर नहीं मानी जायेगी।

(6) **लेखक एक निश्चित व्यक्ति होना चाहिये** – प्रतिज्ञा पत्र में उस व्यक्ति या उन व्यक्तियों का निश्चित रूप से उल्लेख किया जाना चाहिये जिसने या जिन्होंने भुगतान करने की देयता अपने ऊपर ली है। दूसरे शब्दों में प्रतिज्ञा पत्र में यह भी पूर्णतया स्पष्ट होना चाहिये कि कौन व्यक्ति भुगतान के लिये बाध्य हो रहा है। यदि एक से अधिक व्यक्ति भुगतान के लिये उत्तरदायी हो तो वे अपने आप को संयुक्त रूप से या, संयुक्त एवं पृथक रूप से दायी ठहरा सकते हैं किन्तु एक के बाद दूसरे के रूप में नहीं।

(7) **भुगतान पाने वाला व्यक्ति निश्चित होना चाहिये** – प्रतिज्ञा पत्र में किसी निश्चित व्यक्ति को अथवा उसके आदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति को अथवा वाहक को भुगतान करने का वचन होना चाहिये। यदि किसी प्रतिज्ञा पत्र में भुगतान पाने वाले का नाम गलत लिखा गया है या केवल उसके पदनाम का उल्लेख किया गया है तो भी वह वैध माना जाता है बशर्ते कि वह साक्ष्य द्वारा अभिनिश्चित किया जा सकता हो। प्रतिज्ञा पत्र में दो या अधिक व्यक्तियों को संयुक्त रूप से या वैकल्पिक रूप से देय बनाया जा सकता है।

(8) **भुगतान की जाने वाली रकम देश की वैधानिक मुद्रा में होनी चाहिये** – कोई ऐसा दस्तावेज भी प्रतिज्ञा पत्र नहीं होता जिसमें विदेशी मुद्रा में भुगतान करने या माल की सुपुर्दगी का वचन दिया गया हो। प्रतिज्ञा पत्र होने के लिये यह भी आवश्यक है कि भुगतान करने का वचन ऐसी मुद्रा में होना चाहिये जो देश में प्रचलित है।

उदाहरण– (अ) यदि मोहन यह प्रतिज्ञा करे कि मैं सोहन को 50 क्विंटल चावल देने का वचन देता हूँ और इसको लिखित में दे तो यह प्रतिज्ञा पत्र नहीं कहलायेगा।
(ब) "मैं राम को अथवा आदेशित व्यक्ति को 500 रू0 देने का वचन देता हूँ"। यह प्रतिज्ञा पत्र है।

4.5.2 विनिमय–विपत्र / विनिमय–पत्र – (Bill of Exchange)

परिभाषा – धारा 5 के अनुसार "विनिमय–पत्र एक ऐसा लिखित प्रपत्र है जिस पर लिखने वाले के हस्ताक्षर होते हैं और जिसमें एक शर्त रहित आज्ञा होती है जिसके द्वारा लिखने वाला किसी निश्चित व्यक्ति को यह आज्ञा देता है कि वह एक निश्चित रकम किसी निश्चित व्यक्ति को अथवा उसके आदेशित व्यक्ति को अथवा प्रपत्र के वाहक को भुगतान कर दे"।
विनिमय–पत्र में तीन पक्षकार होते हैं :–

i. विनिमय–पत्र का लिखने वाला या लेखक या आहर्त्ता (Drawer)
ii. जिस पर विनिमय–पत्र लिखा जाता है या देनदार या आहर्या (Drawee)
iii. जिसे रूपया अदा किया जाता है या लेनदार या आदाता (Payee)

यदि लेखक स्वयं ही लेनदार हो तो विनिमय–पत्र में दो ही पक्षकार रह जाते हैं। अर्थात तीन पक्षकारों का होना आवश्यक नहीं।

विनिमय–पत्र के आवश्यक तत्व या विशेषतायें (Essential Characteristics of Bill of Exchange)

विनिमय–पत्र की उपयुर्क्त परिभाषा का विश्लेषण करें तो उसमें निम्न तत्व होने चाहियेः–

(1) विनिमय–पत्र लिखित होना चाहिये।

(2) उसमें धनराशि को चुकाने का एक आदेश होना चाहिये। केवल भुगतान करने का निवेदन या अनुरोध वाला प्रपत्र विनिमय–पत्र नहीं होता। परन्तु आदेश नम्र भाषा में दिया जा सकता है।

(3) भुगतान देने का आदेश शर्त रहित होना चाहिये। अर्थात प्रपत्र में कोई शर्त नहीं होनी चाहिये।

(4) विनिमय–पत्र पर लिखने वाले के हस्ताक्षर होने चाहिये।

(5) जिस व्यक्ति पर प्रपत्र लिखा जाये, वह व्यक्ति भी निश्चित होना चाहिये। कोई विनिमय–पत्र वैकल्पिक रूप से दो या अधिक व्यक्तियों के नाम पर नहीं लिखा जा सकता है।

(6) विनिमय–पत्र में देय रकम निश्चित होनी चाहिये।

(7) भुगतान चालू मुद्रा में होना चाहिये।

(8) विनिमय–पत्र पर आवश्यक मुद्रांक (stamp) भी होने चाहिये।

(9) विनिमय–पत्र पर आज्ञा पालन करने की स्वीकृति भी होनी चाहिये।

(10) विनिमय–पत्र पर तिथि व स्थान भी लिखा होना चाहिये।

(11) विनिमय–पत्र में "मूल्य या प्रतिफल प्राप्त हो गया है" भी लिखा होना चाहिये।

विनिमय–विपत्र /विनिमय पत्र का नमूना (Specimen of Bill of Exchange)

रू. 5000

नैनीताल

17 जुलाई, 2011

आज से 2 माह पश्चात मोहन को अथवा उसके आदेशित व्यक्ति को 5000रू. (पांच हजार रू.) दे देना,जिसका प्रतिफल मिल चुका है।

हस्ताक्षर

सुरेश

उपरोक्त विनिमय पत्र में सुरेश लेखक है, राजकुमार देनदार है तथा मोहन लेनदार है।

4.5.3 प्रतिज्ञा–पत्र एवं विनिमय–पत्र में अन्तर (Difference Between Promissory Note and Bill of Exchange)

(1) **पक्षकारों की संख्या** :– विनिमय पत्र में तीन पक्षकार होते हैं (यदि कोई तीसरा व्यक्ति लेनदार हो,) लेखक, देनदार तथा लेनदार। प्रतिज्ञा पत्र में केवल दो पक्षकार होते हैं लेखक तथा देनदार।

(2) **प्रतिज्ञा–पत्र में लेखक आदाता (लेनदार) नहीं बन सकता** :– प्रतिज्ञा–पत्र में लेखक स्वयं आदाता (लेनदार) नहीं बन सकता है क्योंकि एक ही व्यक्ति वचनदाता तथा वचनगृहिता नहीं हो सकता है जब कि विनिमय–पत्र में एक ही व्यक्ति लेखक तथा आदाता बन सकता है यदि विनिमय पत्र इस शब्दावली में लिखा गया हो– "मुझे या मेरे आदेशानुसार भुगतान करें।

(3) **वचन और आदेश** :– प्रतिज्ञा पत्र में भुगतान करने का वचन दिया जाता है जब कि विनिमय–पत्र में भुगतान करने का आदेश दिया जाता है।

(4) **स्वीकृति** :– प्रतिज्ञापत्र के लिये स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि जिसे भुगतान करना होता है वही उस पर हस्ताक्षर कर भुगतान करने का वचन देता है। विनिमय विपत्र में भुगतान के लिये प्रस्तुत किये जाने से पूर्व उस पर ऋणी (देनदार) की स्वीकृति अवश्य होनी चाहिये। क्योंकि विनिमय विपत्र को लेनदार लिखता है।

(5) **देयता की प्रकृति** :– प्रतिज्ञा पत्र में लेखक का दायित्व प्रधान, प्राथमिक तथा पूर्ण रूप से होता है जब कि विनिमय विपत्र में लेखक का दायित्व गौण, द्वितीयक (स्वीकर्ता के बाद) होता है अर्थात विनिमय विपत्र में जब स्वीकृर्ता धन देने में असफल रहता है या विनिमय विपत्र अनादरित हो जाता है तभी लेखक भुगतान हेतु दायी होता है।

(6) **लेखक की स्थिति** :– प्रतिज्ञा पत्र में लेखक का लेनदार से सीधा सम्बन्ध होता है जब कि विनिमय पत्र के लेखक का स्वीकृर्ता से सीधा सम्बन्ध होता है न कि लेनदार से।

(7) **वाहक को देय** :– प्रतिज्ञा पत्र 'वाहक को देय' प्रपत्र के रूप में नहीं लिखा जा सकता है जब कि विनिमय विपत्र इस प्रकार लिखा जा सकता है।

(8) **अनादरण की सूचना** :– प्रतिज्ञा पत्र के अनादरण होने पर सूचना देने की कोई आवश्यकता नहीं होती है जबकि विनिमय विपत्र के अनादरण होने पर विपत्र के धारक का यह कर्तव्य होता है कि वह लेखक तथा पृष्ठाकनकर्त्ताओं को अनादरण की सूचना दें।

(9) **नियमों का लागू होना** :– विनिमय विपत्र में विपत्र को स्वीकृति के लिये प्रस्तुत करने तथा स्वीकृति से सम्बन्धित नियम लागू होते है जब कि प्रतिज्ञा पत्र में कोई नियम लागू नहीं होते है

अनुग्रह अथवा सहायतार्थ विनिमय विपत्र (Accommodation Bill)

अनुग्रह विनिमय विपत्र दिखने में किसी सामान्य व्यापारिक विनिमय विपत्र जैसा ही होता है परन्तु इसके अर्न्तगत न तो कोई प्रतिफल दिया जाता है और न ही कोई व्यापारिक व्यवहार किया जाता है यह तो एक मित्र द्वारा दूसरे मित्र की सहायतार्थ स्वीकार किया जाता है। अर्थात जब कोई व्यक्ति बिना किसी प्रतिफल के किसी दूसरे व्यक्ति की सहायता करने के उददेश्य से स्वीकर्त्ता के रूप में हस्ताक्षर करता है तो ऐसे विनिमय–विपत्र को 'अनुग्रह विनिमय विपत्र' कहते हैं। कभी–कभी ऐसा होता है कि वास्तव में बिना रूपया दिये–लिये ही कुछ व्यापारी आपस में एक दूसरे के ऊपर कुछ विपत्र लिख देते हैं जैसे–कोई भी व्यक्ति आर्थिक संकट में या ऐसे समय में जब उसे रूपये की बहुत आवश्यकता हो, अपने मित्र से अनुग्रह कर सकता है कि वह उसकी सहायता करे और मित्र एक विनिमय विपत्र लिख देता है तथा उसका मित्र उसे स्वीकार कर लेता है। ऐसे विपत्र को अनुग्रह विपत्र कहते हैं इन विपत्रों में कोई प्रतिफल नहीं दिया जाता है और न ही इसके द्वारा कोई मूल्य चुकाया जाता है यह तो केवल इसलिये होता है कि जिससे कि जरूरत वाला व्यक्ति इसको बट्टे (छूट) पर भुना कर रूपया प्राप्त कर ले। इस प्रकार के विपत्रों में वह व्यक्ति जो दूसरे व्यक्ति की सहायतार्थ अपना नाम देता है 'अनुग्रहकर्त्ता पक्ष' कहलाता है और वह व्यक्ति जो इस प्रकार सहायता प्राप्त करता है 'अनुग्रहीत पक्ष कहलाता है।

उदाहरण के लिये– राम को तीन माह के लिये 20000रू0 की आवश्यकता है। वह अपने मित्र मोहन से उधार मांगता है परन्तु मोहन भी उधार देने की स्थिति में नहीं है परन्तु वह राम की सहायता करने के लिये सहमत हो जाता है इस पर राम 20 हजार रू0 का एक विनिमय विपत्र मोहन के नाम लिखता है जो तीन माह बाद देय होगा तथा मोहन उसे स्वीकार कर राम को लौटा देता है इस प्रकार राम के पास 20 हजार रू0 का विनिमय पत्र आ गया। राम इस विनिमय पत्र को बैंक से बट्टे पर

भुना कर रकम प्राप्त कर अपनी आवश्यकता पूरी कर लेगा। विनिमय विपत्र के परिपक्व होने पर राम इस राशि को मोहन को दे देगा। इस प्रकार राम तीन माह के लिये आवश्यक रकम प्राप्त कर लेगा। इस प्रकार के विनिमय विपत्र को 'अनुग्रह या सहायतार्थ विनिमय विपत्र ' कहते हैं।

4.5.4 चैक (Cheque) -

धारा 6 के अनुसार– "चैक एक ऐसा विनिमय–पत्र होता है जो किसी विशिष्ट बैंक के नाम लिखा जाता है और जो स्पष्ट रूप से मांग किये जाने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से देय नहीं होता।"

इस परिभाषा से चैक की निम्नलिखित विशेषतायें होती हैं :–

(1) चैक एक विनिमय पत्र है इसलिये इसमें वे सभी विशेषतायें या लक्षण होनें आवश्यक है जो कि एक विनिमय–विपत्र में होती है। (विनिमय–विपत्र की विशेषतायें पहले बताई गई हैं)

(2) यह सदैव किसी विशिष्ट बैंक के नाम लिखा जाता है।

(3) यह सदैव मांग पर देय होता है।

(4) यह शर्त रहित होता है।

सभी चैक विनिमय पत्र होतें हैं परन्तु सभी विनिमय पत्र चैक नहीं होते हैं।

4.5.5 चैक व विनिमय पत्र में अन्तर (Difference Between Cheque and Bill of Exchange)

चैक (Cheque)	विनिमय पत्र (Bill of Exchange)
(1) चैक सदैव किसी निश्चित बैंक के नाम पर ही लिखा जाता है।	(1) विनिमय–पत्र किसी भी व्यक्ति, जिसमें बैंक भी शामिल है, के नाम लिखा जा सकता है।
(2) चैक सदैव मांग पर ही देय होता है।	(2) विनिमय–पत्र मांग पर भी देय होता है और निश्चित अवधि के बाद भी देय हो सकता है।
(3) चैक में स्वीकृति की कोई आवश्यकता नहीं होती है।	(3) विनिमय–पत्र में स्वीकृति अनिवार्य होती है । बिना स्वीकृति भुगतान नहीं किया जा सकता है।
(4) चैक में अनुग्रह के दिन नहीं दिये जाते हैं।	(4) विनिमय–पत्र में अनुग्रह के तीन दिन दिये जाते हैं।
(5) चैक रेखांकित किया जा सकता है।	(5) विनिमय–पत्र कभी भी रेखांकित नही होता।
(6) चैक में मुद्रांक या स्टाम्प लगाना आवश्यक नहीं है।	(6) विनिमय पत्र में उचित मूल्य का स्टाम्प लगाना आवश्यक है।
(7) चैक के अनादरण होने पर सूचना देने की आवश्यकता नही होती।	(7) विनिमय–पत्र के अनादरित होने पर इसकी सूचना देना आवश्यक होता है।
(8) चैक के अनादरण होने पर उसके नोटिंग कराने की आवश्यकता नही होती है।	(8) विनिमय–पत्र के अनादरण होने पर नोटिंग तथा प्रोटेस्टिग कराया जाता है।
(9) चैक का लेखक भुगतान को	(9) विनिमय–पत्र में लेखक उसके

रोकने का आदेश दे सकता है।	भुगतान को रोकने का आदेश नहीं दे सकता है।
(10) चैक को भुगतान की तिथि पर प्रस्तुत न किये जाने पर इसका आहर्त्ता अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो जाता।	(10) विनिमय विपत्र को भुगतान की तिथि पर प्रस्तुत न करने पर इसका आहर्त्ता अपने दायित्वों से मुक्त हो जाता है।

4.6 विनिमयसाध्य लेखपत्रों के पक्षकार एवं उनके दायित्व (Parties of Negotiable Instrument and Their Liabilities)

विनिमय पत्र के पक्षकार (Parties of Bill of Exchange)

(1) **आहर्त्ता या लेखक** – वह व्यक्ति जो विनिमय पत्र आहरित या लिखता है यदि लेखक ने ही धनराशी लेनी हो तो लेखक ही लेनदार भी होगा।

(2) **आहार्यी या देनदार** – वह व्यक्ति जिस पर विनिमय पत्र आहरित किया जाता है जो उसे स्वीकार करता है अर्थात देनदार जिसने धनराशि का भुगतान करना होता है कभी– कभी कोई अन्य व्यक्ति भी उस बिल को देनदार की ओर से स्वीकार कर सकता है।

(3) **स्वीकर्त्ता** – वह व्यक्ति जो विनिमय–पत्र को स्वीकार करता है साधारणतया देनदार ही स्वीकर्त्ता होता है परन्तु कोई अन्य व्यक्ति भी देनदार की ओर से विनिमय–पत्र को स्वीकार कर सकता है इस दशा में देनदार तथा स्वीकर्त्ता अलग–अलग व्यक्ति हो जायेंगे।

(4) **आदाता या लेनदार** – वह व्यक्ति जिसे विनिमय–पत्र की रकम भुगतान की जानी है। लेखक अथवा उसका आदेशित व्यक्ति लेनदार हो सकता है।

(5) **धारक** – वह व्यक्ति जो विनिमय–पत्र का अधिकारी होता है जिसने उसके आधार पर धनराशि प्राप्त करनी है। ऐसा व्यक्ति या तो लेखक होता है या कोई अन्य व्यक्ति जिसे लेखक या आदाता ने विनिमय–पत्र पृष्ठांकित कर दिया है। यदि विनिमय–पत्र वाहक को देय है तो वाहक ही उसका धारक होगा।

(6) **पृष्ठांकक** – जब किसी विनिमय पत्र का धारक उस विनिमय–पत्र को किसी अन्य व्यक्ति के नाम पृष्ठांकित (हस्तांतरित) कर देता है तो ऐसा व्यक्ति पृष्ठांकक कहलाता है।

(7) **पृष्ठांकिकी** – वह व्यक्ति जिसके नाम में विनिमय–पत्र हस्तांतरित या पृष्ठांकित किया जाता है उसे पृष्ठांकिकी कहते हैं।

(8) **आवश्यकता की दशा में आहार्यी या देनदार** – उपरोक्त पक्षों के अतिरिक्त आहार्ता यदि चाहे तो किसी ऐसे व्यक्ति का नाम भी दे सकता है। जो आवश्यकता पड़ने पर देनदार बन सके। ऐसे व्यक्ति को ही 'आवश्यकता पड़ने पर आहार्यी' कहते हैं ऐसे व्यक्ति का नाम या तो आहार्ता द्वारा या किसी पृष्ठांकक (बेचान करने वाला) के द्वारा इसलिये दिया जा सकता है कि यदि विनिमय–पत्र अस्वीकृत या भुगतान न करके अनादरित कर दिया जाये तो ऐसी दशा में ऐसे व्यक्ति की सहायता ली जा सकती है।

(9) **प्रतिष्ठा के लिये स्वीकर्त्ता** – कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छा से विनिमय–पत्र का स्वीकर्त्ता के रूप में एक पक्ष बन सकता है। जब एक विनिमय–पत्र को प्रमाणित करने वाले अधिकारी द्वारा कोई अच्छी जमानत मांगी जाती है और

जमानत देने से इन्कार कर देने पर, मूल आहार्यी द्वारा स्वीकार करने से मना कर दे और ऐसी दशा में तीसरा व्यक्ति आहार्ता या बेचान करने वाले की प्रतिष्ठा के लिये ऐसे विनिमय–पत्र को स्वीकार कर लेता है तो ऐसे व्यक्ति को प्रतिष्ठा के स्वीकर्त्ता कहते हैं।

प्रतिज्ञा–पत्र के पक्षकार (Parties of Promissory Note)

(1) **निर्माता या लेखक –** लेखक वह व्यक्ति होता है जो प्रतिज्ञा–पत्र को लिखता है तथा जिसमे वह किसी दूसरे व्यक्ति को एक निश्चित रकम का भुगतान करने की प्रतिज्ञा करता है।

(2) **आदाता या लेनदार या भुगतान पाने वाला –** वह व्यक्ति जिसे प्रतिज्ञा–पत्र में लिखी रकम का भुगतान पाना होता है।

(3) **धारक –** वह मूल लेनदार होता है अथवा कोई दूसरे व्यक्ति भी हो सकता है जिसे उसने प्रतिज्ञा–पत्र पृष्ठांकित कर दिया हो।

(4) **पृष्ठांकक या बेचानकर्त्ता –** जब प्रतिज्ञा–पत्र का धारक प्रतिज्ञा–पत्र का बेचान दूसरे व्यक्ति के नाम करता है तो उसे बेचानकर्त्ता कहते हैं।

(5) **पृष्ठांकिकी –** वह व्यक्ति होता है जिसके नाम पर प्रतिज्ञा–पत्र बेचान किया जाये।

चैक के पक्षकार (Parties of Cheque)

(1) **आहर्त्ता या लेखक –**वह व्यक्ति जो चैक लिखता है, या आहरित करता है।

(2) **आहार्यी या देनदार –** यह सदैव बैंक होता है जिसे चैक का भुगतान करना होता है या जिस पर चैक आहरित किया जाता है।

(3) **आदाता या लेनदार –** उसी प्रकार जिस प्रकार विनिमय–पत्र या प्रतिज्ञा पत्र में होते हैं।

(4) **धारक –** उसी प्रकार जिस प्रकार विनिमय–पत्र या प्रतिज्ञा पत्र में होते हैं।

(5) **पृष्ठांकक –** उसी प्रकार जिस प्रकार विनिमय–पत्र या प्रतिज्ञा पत्र में होते हैं।

(6) **पृष्ठांकिकी –** उसी प्रकार जिस प्रकार विनिमय–पत्र या प्रतिज्ञा पत्र में होते हैं।

विनिमयसाध्य लेख पत्रों के पक्षकारों का दायित्व (Liabilities of Negotiable Instrument)

(1) **चैक के आहर्त्ता या लेखक का दायित्व –** यदि किसी चैक का आहार्यी या देनदार अर्थात बैंक चैक को अनादरित कर देता है अथवा उस चैक का भुगतान नही करता है तो चैक का लेखक उसके धारक को उसका भुगतान करने के लिये उत्तरदायी है परन्तु इसके लिये यह आवश्यक है कि चैक के अनादरण की सूचना लेखक को दे दी जाये। (धारा 30)

(2) **विनिमय–पत्र के आहर्त्ता या लेखक का दायित्व** – धारा 30 के अनुसार, विनिमय–पत्र का लेखक प्रारम्भिक रूप से धारक के प्रति उत्तरदायी नहीं होता, वह तो इस बात का दायित्व लेता है कि जब विनिमय–पत्र स्वीकृति के लिये उपस्थित किया जायेगा तो आहार्यी उसे स्वीकार करेगा और जब विनिमय–पत्र परिपक्वता पर भुगतान के लिये प्रस्तुत किया जायेगा तो स्वीकर्त्ता उसका भुगतान करेगा। इसलिये यदि आहार्यी विनिमय–पत्र को स्वीकार नहीं करता अथवा स्वीकृति के बाद उसका भुगतान नहीं करता तो विनिमय पत्र का आहार्ता किसी भी वास्तविक

धारक को उसका भुगतान करने के लिये उत्तरदायी होगा। इसके लिये यह आवश्यक है कि अनादरण की सूचना आहर्त्ता को दे दी जाये।

(3) प्रतिज्ञा–पत्र के लेखक का दायित्व – धारा 32, प्रतिज्ञा–पत्र का लेखक प्रतिज्ञा–पत्र के परिपक्व होने पर उसके धारक को प्रतिज्ञा–पत्र की रकम का भुगतान करने के लिये उत्तरदायी होता है। यदि वह भुगतान न करे तो वह प्रभावित पक्षकार को होने वाली क्षति की पूर्ति के लिये भी उत्तरदायी होगा।

(4) चैक के आहार्यी या देनदार का दायित्व – धारा 31, के अनुसार चैक का आहार्यी अर्थात बैंक को चैक का भुगतान उसी समय कर देना चाहिये जब चैक भुगतान के लिये प्रस्तुत किया जाये बशर्ते कि चैक के लिखने वाले के खाते में बैंक के पास पर्याप्त रूपया जमा है तथा चैक अनादरण के योग्य नहीं। यदि बैंक बिना किसी उचित कारण के चैक का भुगतान करने से मना कर देता है तो वह (आहार्यी,बैंक) आहर्त्ता को होने वाली क्षति को पूरा करने के लिये उत्तरदायी होगा।

(5) विनिमय–पत्र के स्वीकर्त्ता का दायित्व – धारा 32, यदि कोई विनिमय–पत्र को स्वीकार कर लेता है तो वह अपनी स्वीकृति के अनुसार परिपक्वता पर उसका भुगतान करने के लिये उत्तरदायी होता है। यदि वह इस प्रकार भुगतान करने में त्रुटि करे तो इस कारण हुई किसी भी क्षति को पूरा करने के लिये धारक के प्रति उत्तरदायी होगा।

(6) पृष्ठांकक या वेचानकर्त्ता का दायित्व – धारा 35, पृष्ठांकन करने वालों का दायित्व भी ठीक उसी प्रकार होता है जैसे कि विनिमय–पत्र के लिखने वाले का, जब कोई लेख पत्र उचित रूप से उपस्थित किया गया हो, और अनादरित हो गया हो तो पृष्ठांकक धारक की क्षतिपूर्ति करने के लिये उत्तरदायी होगा, यदि अनादरण की सूचना पृष्ठांकक को दे दी गई हो या उसे मिल गई हो, पृष्ठांकक पृष्ठांकन करते समय स्पष्ट शब्दों द्वारा अपने दायित्व को समाप्त कर सकता है।

4.7 विनिमय साध्य लेखपत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन (Material Alteration)

ऐसा परिवर्तन जो विनिमय साध्य लेख पत्र के किसी महत्वपूर्ण अंश या पक्षकारों के दायित्व को बदल दे, जिसके परिणाम स्वरूप लेख पत्र की प्रकृति बदल जाती है 'महतवपूर्ण परिवर्तन' कहलाता है।

इस प्रकार महत्वपूर्ण परिवर्तन के द्वारा लेख पत्र का वैधानिक स्वरूप ही बदल जाता है । निम्न परिवर्तन महत्वपूर्ण या मूलभूत परिवर्तन माने जाते हैं:–

1– लेखपत्र की तिथि में परिवर्तन
2– भुगतान के समय में परिवर्तन
3– भुगतान के स्थान में परिवर्तन
4– लेखपत्र की राशि में परिवर्तन
5– ब्याज की दर में परिवर्तन
6– विनिमय की दर में परिवर्तन
7– भुगतान के माध्यम में परिवर्तन
8– पक्षकारों में परिवर्तन

किन्तु निम्न परिवर्तन महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं माने जाते हैं:–

1– लेखपत्र के सुपुर्दगी से पहले किया गया परिवर्तन
2– पक्षकारों की अनुमति से किया गया परिवर्तन

3– यथाविधि धारी द्वारा अपूर्ण लेखपत्र को पूर्ण करने से परिवर्तन
4– साधारण पृष्ठाकान को विशेष पृष्ठाकान मे परिवर्तन
5– चैक को रेखांकित करना

4.8 परिस्थितियां जब बैंक चैक का भुगतान करने से मना कर सकता है (Circumstances When Banker May Refuse the Payment of Cheque)

एक बैंक को यह अधिकार है कि यदि चैक में कुछ शर्ते पूरी नहीं की गई हैं तो बैंक उस चैक के भुगतान को देने से मना कर सकता है। अर्थात चैक तिरस्कृत या अनादृत हो जाता है। अर्थात निम्नलिखित दशाओं में बैंक चैक का भुगतान करने से मना कर सकता है :–

(1) जब चैक लिखने वाला बैंक का ग्राहक ही चैक के भुगतान को रोकने का बैंक को आदेश दे देता है।

(2) जब चैक लिखने वाले की मृत्यु हो जाये और बैंक को सूचना मिल जाये तो सूचना मिलने के बाद ऐसे चैकों का भुगतान नहीं करता। परन्तु मृत्यु की सूचना से पूर्व बैंक द्वारा किये गये भुगतान मान्य होते हैं।

(3) जब ग्राहक दिवालिया हो जाता है, तो दिवालिया व्यक्ति के चैकों का बैंक भुगतान करने से मना कर देता है।

(4) जब ग्राहक पागल हो जाये और बैंक को चैक लिखने वाले ग्राहक के पागल होने की सूचना मिल जाये तो बैंक उसके चैकों का भुगतान नहीं करता।

(5) जब बैंक को न्यायालय की निषेधाज्ञा प्राप्त हो जाये, दूसरे शब्दों में जब न्यायालय बैंक को यह आदेश दे कि किसी विशेष चैकों का भुगतान न किया जाये तो बैंक ऐसे चैकों का भुगतान नहीं करता है।

(6) यदि बैंक को यह पता लग जाये कि चैक का धारी अर्थात चैक प्रस्तुत करने वाले के अधिकार में कुछ त्रुटि है तो उसे ऐसे चैकों का भुगतान नहीं करना चाहिये।

(7) जब बैंक को ग्राहक से यह सूचना मिल जाती है कि हिसाब बन्द कर दिया जाये तो ऐसी सूचना के बाद उस ग्राहक के चैकों का भुगतान बैंक नहीं करेगा।

(8) जब चैक 3 माह से अधिक पुराना हो जाता है।

(9) जब चैक पर लिखी तिथि से पहले ही चैक भुगतान हेतु प्रस्तुत किया जाये तो बैंक चैक का भुगतान नहीं करता है।

(10) जब ग्राहक के खाते में जमा राशि अपर्याप्त हो अर्थात ग्राहक के खाते में चैक की रकम से कम रकम शेष हो।

(11) जब चैक फटा हुआ हो।

(12) जब चैक उचित रूप से प्रस्तुत न किया जाये जैसे बैकिंग कार्य समय के बाद प्रस्तुत हो।

(13) जब चैक पर ग्राहक के हस्ताक्षर नमूने के हस्ताक्षर से भिन्न हो।

(14) जब खाता संयुक्त नाम से हो तथा सभी का चैक पर हस्ताक्षर अपेक्षित हो तो यदि सभी के हस्ताक्षर नहीं हो तो बैंक चैक का भुगतान मना कर देता है।

(15) जब चैक पर महत्वपूर्ण परिर्वतन कर दिया गया हो।

(16) जब चैक पर हस्ताक्षर ही न हों।

(17) यदि चैक पर काट–छांट की गई हो और उस काट–छांट पर लिखने वाले के हस्ताक्षर न हों।

(18) जब कोई चैक खो जाये और ग्राहक उसकी सूचना बैंक को दे दे।

4.9 धारक अथवा धारी (Holder)

धारा 8 के अनुसार, किसी भी विनिमयसाध्य लेखपत्र (प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र अथवा चैक) का धारी वह व्यक्ति है जो अपने नाम से उसे रखने तथा सम्बन्धित पक्षकारों से देय धनराशि प्राप्त करने का अधिकार रखता हो। यदि कोई विनिमयसाध्य लेखपत्र खो जाता है या नष्ट हो जाता है तो ऐसे लेखपत्र का धारी वह व्यक्ति समझा जाता है जो ऐसी हानि या विनाश के समय उसका स्वामी था।

उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट होता है कि विनिमयसाध्य लेखपत्र का धारी या धारक होने के लिये किसी भी व्यक्ति को निम्न दो अधिकार होने आवश्यक हैं :–

(1) उसे उस विनिमयसाध्य लेखपत्र को अपने नाम में (आदाता, पृष्ठाकिती अथवा वाहक के रूप में) रखने का अधिकार होना चाहिये।

(2) उसे अपने नाम में ही रूपया प्राप्त करने या वसूल करने का भी अधिकार होना चाहिये। अतः लेखपत्र के किसी चोर या खोये हुये लेखपत्र को पाने वाला व्यक्ति धारी नहीं हो सकता है क्योंकि वह उस लेखपत्र का रूपया वसूल करने का अधिकार नहीं रखता है, यद्यपि लेखपत्र उसके अधिकार में है।

4.10 यथाविधिधारी (Holder in Due Course)

धारा 9 के अनुसार, यथाविधिधारी से आशय ऐसे व्यक्ति से है जो प्रतिफल के बदले में, लेखपत्र में लिखित धन के देय होने से पूर्व और इस विश्वास के लिये पर्याप्त कारण न रखते हुये कि जिस व्यक्ति से उसने अपना अधिकार प्राप्त किया है उसके अधिकार में कोई दोष विद्यमान था, किसी प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र अथवा चैक का अधिकारी हो जाता है जो वाहक को देय हो अथवा आदेशानुसार देय हो तो उसका प्राप्त कर्त्ता अथवा पृष्ठांकिती यथाविधिधारी हो जाता है।

यथाविधिधारी होने के लिये निम्न बातें सिद्व करनी होती हैं:–

i. **प्रतिफल के बदले में –** विनिमयसाध्य लेखपत्र यदि वाहक को देय है तो उसका अधिकारी अथवा यदि आज्ञा पर देय है तो उसका लेनदार या पृष्ठांकिती बननें के पहले प्रतिफल दे दिया है। दूसरे शब्दों में वह (यथाविधिधारी) प्रतिफल के बदले में उसका धारी हुआ है।

ii. **परिपक्वता की तिथि से पहले** – विनिमयसाध्य लेखपत्र देय (परिपक्वता) होने से पहले प्राप्त किया गया हो।

iii. **हस्तांतरक का अधिकार** – उसे इस बात का कुछ भी सन्देह न था कि उस व्यक्ति के अधिकार में जिससे कि उसने अधिकार प्राप्त किया है कोई दोष था।

iv. **लेख पत्र पर अधिकार** – वह लेखपत्र का धारक है अर्थात लेखपत्र उसके अधिकार में है।

v. **परिपूर्ण दशा में** – विनिमयसाध्य लेखपत्र प्रत्यक्ष दृष्टि से पूर्ण एवं नियमित होना चाहिये। यदि उसके प्रारूप मे कोई महत्वपूर्ण दोष है तो उसका धारक, यथाविधिधारी नहीं हो सकता।

4.11 यथाविधिधारी के विशेष अधिकार (Special Privileges of Holder in Due course)

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि यथाविधिधारी का अधिकार हस्तांतरक के विरूद्व किसी भी अधिकार से स्वतंत्र होता है अर्थात यथाविधिधारी का अधिकार 'सुरक्षित'

अधिकार है। विनिमयसाध्य लेखपत्र अधिनियम के विभिन्न प्रावधानों के अनुसार, यथाविधिधारी को निम्नलिखित विशेष अधिकार प्राप्त हैः–

(1) **अपूर्ण स्टाम्पयुक्त लेख पत्र की दशा में** – यदि किसी यथाविधिधारी को स्टाम्प लगा हस्ताक्षर युक्त अपूर्ण लेखपत्र प्राप्त होता है तो यथाविधिधारी उसे पूर्ण कर लेखपत्र की धनराशी (जितने के लिये लेखपत्र में स्टाम्प पर्याप्त हो) वसूल कर सकता है। लेखपत्र देने वाला व्यक्ति यह नहीं कह सकता है कि लेखपत्र उसके द्वारा दिये गये अधिकारो के अनुसार पूर्ण नहीं किया गया है।

उदाहरण के लिये–A ने एक लेख पत्र पर स्टाम्प लगा कर हस्ताक्षर करके B को दिया परन्तु उस पर रकम नहीं लिखी और B को केवल 1500 रू0 लिखने के लिये कहता है। लेखपत्र पर जो स्टाम्प लगे हैं उसके अनुसार उस पर 2000 रू0 भरे जा सकते हैं। B ने उस पर 2000 रू0 भर कर M को हस्तांतरित कर दिया जो मूल्य के बदले सद्भावना से उसे लेता है। अतः M उस विलेख का यथाविधिधारी हुआ और वह A से 2000 रू0 वसूल कर सकता है।

(2) **पूर्व पक्षकारों का दायित्व** – विनिमयसाध्य लेखपत्र का प्रत्येक पूर्व पक्षकार (लेखक, आहर्त्ता,स्वीकर्त्ता तथा पृष्ठांकक) यथाविधिधारी के प्रति उस समय तक उत्तरदायी रहते हैं जब तक कि लेखपत्र का यथोचित रूप से भुगतान न हो जाये।

(3) **कल्पित नाम में आहरित लेख पत्र की दशा में** – किसी कल्पित नाम से बिल लिखे जाने पर भी यथाविधिधारी को स्वीकर्त्ता से बिल का भुगतान कराने का अधिकार है। स्वीकर्त्ता यथाविधिधारी के विरूद्व यह नहीं कह सकता है कि वह नाम कल्पित था।

(4) **कपट की दशा में सुरक्षा** – यदि पूर्व पक्षकारों के मध्य विनिमयसाध्य लेखपत्र का हस्तांतरण कपट से किया गया हो परन्तु जब यथाविधिधारी उसे प्राप्त करता है या अन्य व्यक्ति को देता है तो लेखपत्र सम्पूर्ण दोषों से मुक्त हो जाता है और कोई भी व्यक्ति जो उसे प्राप्त करता है उस विलेख को दोष रहित प्राप्त करता है अर्थात यथाविधिधारी को पहले के किसी भी कपट का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(5) **अवैधानिक प्रतिफल के बदले लेखपत्र को प्राप्त करना** – किसी विनिमयसाध्य लेखपत्र का उत्तरदायी पक्षकार यथाविधिधारी के विरूद्व यह नहीं कह सकता है कि लेखपत्र अवैध प्रतिफल के बदले प्राप्त किया गया है अर्थात यथाविधिधारी लेखपत्र के आधार पर भुगतान प्राप्त करने का अधिकारी है।

(6) **शर्तयुक्त सुपुर्दगी** – जब कोई लेखपत्र किसी यथाविधिधारी को हस्तांतरित किया गया है तो उससे सम्बद्व दूसरे पक्षकार अपने दायित्व से यह कह कर मुक्त नहीं हो सकते हैं कि लेखपत्र की सुपुर्दगी शर्तयुक्त अथवा किसी विशेष प्रयोजन के लिये की गई थी।

4.12 सारांश

विनिमयसाध्य लेखपत्र से अभिप्राय किसी ऐसे प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र अथवा चैक से है जो किसी आदेशित व्यक्ति या वाहक को देय होता है। विनिमय साध्य लेखपत्र लिखित होना चाहिए। यदि लेखपत्र आदेशानुसार देय हो जो उसका हस्तान्तरण पृष्ठाकन एवम् सुपुर्दगी द्वारा और यदि वाहक हो देय हो तो केवल सुपुर्दगी देने से ही स्वामित्व का हस्तान्तरण हो जाता है। लेखपत्र का धारक अपने नाम से वाद प्रस्तुत कर सकता है। लेखपत्र मुद्रा के अनेक काम करता है। विनिमय

साध्य लेखपत्र में प्रतिफल का होना बिना प्रमाण दिये ही मान लिया जाता है। विनिमयसाध्य लेख पत्र तीन प्रकार के होते है – प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र एवम् चैक। प्रतिज्ञा पत्र एक लिखित प्रपत्र है जिस पर लिखने वाले के हस्ताक्षर होते है और जिसमें लिखने वाला शर्त रहित यह वचन देता है कि वह निश्चित व्यक्ति को अथवा उसके आदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति को अथवा विपत्र के वाहक हो एक निश्चित धनराशि का भुगतान करेगा। विनिमय पत्र एक ऐसा लिखित प्रपत्र है जिस पर लिखने वाले के हस्ताक्षर होते है और जिसमें एक शर्त रहित आज्ञा होती है जिसके द्वारा लिखने वाला किसी निश्चित व्यक्ति को यह आदेश देता है कि वह एक निश्चित रकम किसी निश्चित व्यक्ति को अथवा उसके आदेशित व्यक्ति को अथवा प्रपत्र के वाहक को भुगतान कर दे। चैक एक ऐसा विनिमय पत्र है जो किसी विशिष्ट बैंक के नाम लिखा जाता है और जो स्पष्ट रूप से मांग किये जाने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से देय नहीं होता है।

विनिमयसाध्य लेखपत्र का धारी वह व्यक्ति है जो अपने नाम से उसे रखने तथा सम्बन्धित पक्षकार से देय धनराशि प्राप्त करने का अधिकार रखता हो। यथाविधिधारी से आशय एक ऐसे व्यक्ति से है जो प्रतिफल के बदले में, लेखपत्र में लिखे धन के देय होने से पूर्व और इस विश्वास के लिए पर्याप्त कारण न रखते हुए कि जिस व्यक्ति से उसने प्राप्त किया है उसके अधिकार में कोई दोष विद्यमान था, किसी विनिमयसाध्य लेखपत्र का अधिकारी हो जाता है जो वाहक को देय है अथवा आदेशानुसार देय हो तो उसका प्राप्तकर्ता अथवा प्रष्ठांकिती यथाविधिधारी हो जाता है।

4.13 शब्दावली

विनिमय साध्य लेखपत्रः से अभिप्राय किसी ऐसे प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र अथवा चैक से है जो किसी आदेशित व्यक्ति या वाहक को देय हो।

अनुग्रह विनिमय विपत्रः जब कोई व्यक्ति बिना किसी प्रतिफल के किसी दूसरे व्यक्ति की सहायता करने के उददेश्य से स्वीकर्त्ता के रूप में हस्ताक्षर करता है तो ऐसे विनिमय–विपत्र को 'अनुग्रह विनिमय विपत्र' कहते हैं।

चैकः यह एक ऐसा विनिमय–पत्र होता है जो किसी विशिष्ट बैंक के नाम लिखा जाता है और जो स्पष्ट रूप से मांग किये जाने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से देय नहीं होता।

4.14 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न – 'क'

निम्नलिखित कथनों में से कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत –

1. विनिमयसाध्य लेखपत्र का लिखित होना आवश्यक नहीं है।
2. विनिमय पत्र पर आवश्यक मुद्रांक भी लगा होना चाहिए।
3. विनिमय पत्र में तीन पक्षकारों का होना आवश्यक नहीं है।
4. प्रतिज्ञा पत्र में भुगतान का वचन शर्त रहित होना चाहिए।
5. प्रतिज्ञा पत्र की स्वीकृति आवश्यक होती है।
6. विनिमय पत्र रेखाकिंत नहीं होता है।
7. चैक के अनादरण होने पर उसके नोटिंग कराने की आवश्यकता नहीं होती है।

8. जब चैक तीन माह से अधिक पुराना हो जाता है तो बैंक उसका भुगतान करने से मना कर सकता है।

बोध प्रश्न – 'ख'

रिक्त स्थान को भरिये –

1. विनिमय विपत्र में अनुग्रह के ..... दिन दिये जाते है।
2. चैक में स्टाम्प लगाना आवश्यक .....।
3. विनिमय विपत्र में भुगतान के लिए प्रस्तुत किये जाने से पूर्व उस पर ऋणी की ..... अवश्य होनी चाहिए।
4. विनिमय विपत्र के अनादरण होने पर इसकी सूचना देना ..... होता है।
5. यथाविधिधारी होने के लिए यह आवश्यक है कि उसे विनिमय विपत्र .... के बदले प्राप्त किया हो।

4.15 बोध प्रश्न के उत्तर

(क)

1. गलत	2. सही	3. सही	4. सही
5. गलत	6. सही	7. सही	8. सही

(ख)

1. तीन	2. नही है	3. स्वीकृति	4. आवश्यक	5. प्रतिफल

4.16 स्वपरख प्रश्न

1. विनिमयसाध्य लेखपत्र की परिभाषा दीजिये तथा उसकी विशेषताएं बताइये।
2. विनिमयसाध्य लेखपत्र कितने प्रकार के होते है तथा उनके कौन–कौन पक्षकार होते है?
3. चैक को परिभाषित कीजिये। बैंक कब किसी चैक का भुगतान करने से मना कर सकता है?
4. प्रतिज्ञा–पत्र तथा विनिमय पत्र में अन्तर बताइये। और चैक व विनिमय पत्र में अन्तर कीजिए?
5. यथाविधिधारी कौन होता है? उसे क्या अधिकार प्राप्त होते है?

4.17 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws: Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (p) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law: Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law: K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई 5 चैक का परक्रामण, पृष्ठाकंन एवं रेखांकन

(Negotiation, Endorsement and Crossing of Cheques)

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 परक्रामण का अर्थ
5.3 परक्रामण के तरीके
5.4 पृष्ठाकन का अर्थ
5.5 पृष्ठाकन के प्रकार
5.6 चैक का रेखांकन
5.7 रेखांकन के प्रकार
5.8 विनिमय साध्य लेखपत्र का अनादरण
5.8.1 अनादरण पर नोटिंग तथा प्रोटेस्ट
5.8.2 अनादरण पर क्षतिपूर्ति
5.9 सारांश
5.10 शब्दावली
5.11 बोध प्रश्न
5.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.13 स्वपरख प्रश्न
5.14 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- चैक के परक्रामण एवं पृष्ठाकन को समझ सके।
- पृष्ठाकन कितने प्रकार से हो सकता है, को समझ सके।
- चैक का रेखांकन क्या होता है और कैसे होता है, को समझ सके।
- चैक के रेखांकन के लाभ समझ सके।

5.1 प्रस्तावना

इकाई 14 में आप पढ़ चुके है कि विनिमयसाध्य विलेख का अर्थ, उसकी विशेषताएं व मान्यताएं क्या है? विपत्र का धारी तथा यथाविधिधारी कौन होता है? विनिमयसाध्य विलेख कितने प्रकार के होते है। इस इकाई में चैक का परक्रामण तथा पृष्ठाकन कैसे होता है और साथ ही चैक के रेखांकन का अध्ययन करेगें।

5.2 परक्रामण का अर्थ (Meaning of Negotiation)

विनिमयसाध्य विलेख को भुगतान करने और कारोबारी दायित्वों को पूरा करने के उद्देश्य से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को हस्तांतरित कर सकता है। विनिमयसाध्य विलेख का धारक विलेख को परिपक्व होने तक अपने पास न रखकर, अपने ऋण की अदायगी के रूप में किसी लेनदार को हस्तांतरित कर सकता है, उक्त लेनदार उसे फिर अपने किसी लेनदार को हस्तांतरित कर सकता है और इस प्रक्रिया के अनुसार विनिमय साध्य विलेख का स्वामित्व एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हस्तांतरित होता रहता है। स्वामित्व हस्तान्तरण की यह प्रक्रिया परक्रामण कहलाती है।

परक्रामण की परिभाषा

धारा 14 के अनुसार ''जब कोई प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र अथवा चैक किसी व्यक्ति को इस प्रकार हस्तांतरित किया जाता है कि वह व्यक्ति उसका धारक बन जाता है तो विलेख के ऐसे हस्तांतरण को परक्रामण कहते है।'' इस प्रकार परक्रामण से तात्पर्य विनिमय साध्य लेखपत्र के ऐसे हस्तांतरण से है जिसके फलस्वरूप उसका धारक उस पर देय राशि वसूल करने का अधिकारी हो जाता है तथा उस पत्र के सम्बन्ध में अपने नाम से मुकदमा दायर करने का अधिकारी हो जाता है।

परक्रामण कौन कर सकता है? जब तक कि विनिमयसाध्य विलेख के परक्रामण का अधिकार अधिनियम द्वारा प्रतिबन्धित न कर दिया गया हो तो विलेख का लेखक, आदेशक, आदाता अथवा पृष्ठांकिती विलेख का परक्रामण कर सकते है। जब किसी विलेख के संयुक्त लेखक, आहार्ता, आदाता हो तो उन सभी के द्वारा परक्रामण किया जा सकता है। परन्तु किसी विलेख का परक्रामण किसी के द्वारा उसी दशा में किया जा सकता है जब विपत्र कानूनी रूप से उनके कब्जे में हो अथवा वह विलेख का धारक हो। (धारा 51)

5.3 परक्रामण के तरीके (Types of Negotiation)

विनिमयसाध्य विलेख का परक्रामण निम्नलिखित दो तरीकों से किया जा सकता हैं –

1. **सुपुर्दगी द्वारा परक्रामण** – वाहक को देय विनिमयसाध्य विलेख का परक्रामण केवल उसकी सुपुर्दगी करके किया जा सकता है ऐसी सुपुर्दगी द्वारा परक्रामण के लिये सुपुर्दगी देने वाले पक्षकार को उस पर हस्ताक्षर करने की आवश्यकता नहीं होती है केवल सुपुर्दगी करने मात्र से ही सुपुर्दगी लेने वाला व्यक्ति उसका धारक बन जाता है। सुपुर्दगी का आशय विनिमयसाध्य विलेख के अधिकार का स्वेच्छा पूर्ण हस्तांतरण होता है। (धारा 47)

2. **पृष्ठांकन एवं सुपुर्दगी द्वारा परक्रामण –** जब कोई विनिमयसाध्य विलेख आदेशानुसार देय हो तो उसका परक्रामण पहले पृष्ठांकन तत्पश्चात उसकी सुपुर्दगी द्वारा किया जा सकता है।

5.4 बेचान या पृष्ठाकन (Endorsement)

धारा 15, जब किसी विनिमयसाध्य लेखपत्र का लेखक या धारक, लेखक के रूप में नहीं बल्कि हस्तांतरण के आशय से उसकी पीठ पर या मुख पर या संलग्न कागज की चिट पर अपने हस्ताक्षर करता है अथवा उसी उद्देश्य से किसी स्टाम्प लगे हुये ऐसे कागज पर हस्ताक्षर करता है जो कि बाद में विनिमयसाध्य लेखपत्र के रूप में पूरा किया जाता है, तो वह उसका पृष्ठाकन कहलाता है और उस व्यक्ति को लेखपत्र का पृष्ठाकक कहते हैं।

अतः पृष्ठांकन से तात्पर्य किसी विनिमयसाध्य लेखपत्र के हस्तांतरण के उद्देश्य से उसके धारक द्वारा सामान्यतः लेखपत्र के पीछे किये गये हस्ताक्षर से होता है। यदि विनिमयसाध्य लेखपत्र के पीछे पृष्ठाकन करने के लिये स्थान नहीं बचता है तो लेखपत्र के साथ नत्थी कागज की पर्ची पर पृष्ठांकन किया जाता है। कागज की ऐसी पर्ची 'बेचान पर्ची' (Allonge)कहलाती है, और लेखपत्र का ही एक हिस्सा बन जाती है। जो व्यक्ति लेख पत्र का पृष्ठाकन करता है उसे 'पृष्ठांकनकर्ता' और जिस व्यक्ति के नाम पृष्ठाकन किया जाता उसे 'पृष्ठाकिती' कहते हैं।

वैध पृष्ठांकन के लिये यह आवश्यक है कि वह स्याही से ही किया जाये। पैन्सिल या रबड़ स्टाम्प से किया गया पृष्ठाकन मान्य नहीं होता है। पृष्ठांकनकर्ता को हस्ताक्षर करते समय अपने नाम या हस्ताक्षर वैसे ही करने चाहिये जैसे कि लेखपत्र के मुख पर अथवा पूर्ववर्ती पृष्ठांकन में किये हैं, यदि वह निरक्षर है तो लेख पत्र पर अपने बांये हाथ के अंगूठे की छाप लगा कर उसका पृष्ठांकन कर सकता है, परन्तु ऐसे पृष्ठांकन का किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, जिसने अपना पूरा पता दिया हो, यथाविधि सत्यापित किया जाना आवश्यक है। विनिमयसाध्य लेखपत्र पर किये गये पृष्ठाकन उसी क्रम में किये गये माने जाते हैं जिसमें वे उस पर दिखाई देते हैं जब तक कि इसके विपरीत कोई तथ्य सिद्व न कर दिया जाये।

पृष्ठाकन का प्रभाव

धारा 50, पृष्ठाकन का निम्न प्रभाव होता है –

(1) विनिमयसाध्य लेखपत्र का स्वामित्व पृष्ठाकन करने वाले से उस व्यक्ति को हस्तांतरित हो जाता है जिसके नाम पृष्ठाकन किया गया है।

(2) जिस व्यक्ति के नाम पर पृष्ठाकन किया गया है वह व्यक्ति भविष्य में किसी अन्य व्यक्ति को हस्तांतरण कर सकता है।

(3) जिस व्यक्ति के नाम पृष्ठाकन हुआ है वह व्यक्ति अपने नाम से लेखपत्र के अन्य पक्षकारों के विरूद्व वाद प्रस्तुत कर सकता है।

5.5 पृष्ठाकन के प्रकार (Types of Endorsement)

पृष्ठाकन निम्न प्रकार से किया जा सकता है :–

(1) **कोरा या साधारण पृष्ठाकन** – जब पृष्ठाकक लेखपत्र पर पृष्ठांकिती का नाम नहीं लिखता है केवल अपने हस्ताक्षर कर देता है तो इसे कोरा या साधारण पृष्ठाकन कहते हैं। इस प्रकार के पृष्ठाकन से लेखपत्र वाहक (Bearer) बन जाता है और केवल सुपुर्दगी द्वारा ही हस्तांतरित हो जाता है।

(2) **पूर्ण या विशेष पृष्ठाकन** – जब पृष्ठाकक लेखपत्र पर केवल अपने हस्ताक्षर ही नहीं करता, बल्कि हस्ताक्षर के साथ लेखपत्र में लिखित धनराशि को किसी निर्दिष्ट व्यक्ति को या उसके द्वारा आदेशित व्यक्ति को देने का एक आदेश भी लिख देता है तो ऐसे पृष्ठाकन को पूर्ण या विशेष पृष्ठाकन कहते हैं।

उदाहरण के लिये– यदि किसी विनिमय पत्र का धारक 'राम' उसका मोहन को पूर्ण पृष्ठाकन करना चाहता है तो उसे विनिमय पत्र के पीछे इस प्रकार लिखना चाहिये। "मोहन को अथवा उसके आदेशानुसार भुगतान कर दे," ह0 राम। लेखपत्र में ऐसा पृष्ठाकन करने के उपरान्त पृष्ठाकिती अर्थात मोहन ही एक ऐसा व्यक्ति है जो उस लेखपत्र में उल्लिखित राशि का भुगतान प्राप्त कर सकता है और अपने पृष्ठाकन द्वारा लेखपत्र का हस्तांतरण किसी अन्य व्यक्ति को कर सकता है। कोरा पृष्ठाकन बहुत आसानी से पूर्ण या विशेष पृष्ठाकन में परिवर्तित हो सकता है। किसी ऐसे विनिमयसाध्य लेखपत्र का धारक जिस पर कोरा पृष्ठाकन हुआ है, पृष्ठाकक के हस्ताक्षर के ऊपर किसी अन्य व्यक्ति का नाम लिख दे तो वह विशेष पृष्ठांकन हो जायेगा।

(3) **प्रतिबन्धात्मक पृष्ठांकन** – विनिमयसाध्य लेखपत्र का पृष्ठाकन करते समय उसमें भविष्य के लिये प्रतिबन्ध भी लगाये जा सकते हैं अर्थात पृष्ठाकक स्पष्ट शब्दों द्वारा (अ) आगे के हस्तांतरण पर रोक लगा सकता है (ब) पृष्ठाकिती को लेखपत्र पृष्ठाकन करने के लिये केवल एक एजेन्ट बनाकर अथवा (स) लेखपत्र के धन को पृष्ठाकक अथवा किसी अन्य व्यक्ति के लिये प्राप्त करके ऐसा कर सकता है। इस प्रकार के पृष्ठाकन को प्रतिबन्धित पृष्ठाकन कहते हैं। जैसे पृष्ठाकन में निम्न लिखा जाये :–

(A) Pay to Ram only

(B) Pay Ram for my use

(C) Pay Ram or order for the account of Ram

उपरोक्त पृष्ठाकन Ram के आगामी हस्तांतरण या पृष्ठाकन के अधिकार को छीन लेते हैं।

(4) **शर्त सहित पृष्ठाकन** – धारा 52, यदि किसी विनिमयसाध्य लेखपत्र का पृष्ठाकक, पृष्ठाकन में अपनी देयता को किसी निर्दिष्ट घटना के घटित होने पर आश्रित बना देता है तो ऐसा पृष्ठाकन 'शर्त सहित पृष्ठाकन' कहलाता है। जैसे– "मोहन के विवाह पर मोहन को अथवा उसके आदेशानुसार भुगतान कर दें"।

(5) **आंशिक पृष्ठाकन** – कोई विनिमयसाध्य लेखपत्र उस पर देय रकम के किसी अंश के लिये पृष्ठांकित नहीं किया जा सकता है (धारा 56)। इसलिये ऐसा पृष्ठाकन जो किसी लेखपत्र की आंशिक रकम का ही पृष्ठाकन करता है तो उसे 'आंशिक पृष्ठाकन' कहते हैं और ऐसा पृष्ठाकन वैध नहीं होता है। परन्तु यदि किसी लेखपत्र की रकम का कुछ भाग चुका दिया हो, तो इस तथ्य को भी लेखपत्र में लिख कर शेष रकम के लिये पृष्ठाकन किया जा सकता है।

उदाहरण के लिये– राम 5000 रू0 के विनिमय पत्र का धारक है और वह इस प्रकार पृष्ठाकन करता है :–

(1) Pay M or order Rs 2000

(2) Rs 1000 to N or order

उक्त दशाओं में पृष्ठाकन आंशिक है और वैधानिक नहीं है। यदि इस 5000 रू0 के लेखपत्र में से 3000 रू0 का भुगतान हो चुका है तो "Pay Rs 2000 being the unpaid residue of the bill" तो ऐसा पृष्ठाकन वैध है।

5.6 चैक का रेखांकन (Crossing of Cheque)

चैक दो प्रकार के होते हैं :

1– **खुला चैक** – खुला चैक ऐसा चैक है जिसका भुगतान आदेशित बैंक के काउन्टर पर प्राप्त किया जा सकता है। ऐसे चैक खतरे से खाली नही होते। क्योंकि वह खो सकता है या किसी गलत व्यक्ति के हाथ में पड़ सकता है जो उसे बैंक को दे कर के काउन्टर से भुना सकता है।

2– **रेखांकित चैक** – खुले चैक की हानि को दूर करने के लिये चैक को रेखांकित किया जाता हैं। रेखांकित चैक वह चैक होता है जिसके मुख पर दो तिरछी समान्तर रेखायें खींच दी जाती हैं समान्तर रेखायों के बीच कुछ लिखा भी

जा सकता है और नहीं भी, रेखांकित चैक का भुगतान बैंक के काउन्टर से सीधे प्राप्त नहीं किया जा सकता है। रेखांकित चैक का भुगतान वसूली कर्ता बेंकर (collecting banker) के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है सीधे बैंक के काउन्टर पर नही। अर्थात पहले बैंक उस चैक की राशि को लिखने वाले के खाते से निकाल कर उस व्यक्ति के खाते में जमा करता है जिसके नाम चैक है तत्पश्चात ग्राहक उस पैसे को निकाल सकता है। इससे इस बात का पता आसानी से लगाया जा सकता है कि धन किसके खाते में जमा हुआ है अर्थात रेखांकित चैक का भुगतान किसी अन्य व्यक्ति को नहीं हो सकता है।

जब किसी चैक के ऊपरी बांये कोने में दो तिरछी समान्तर रेखायें खींच दी जाती है तो उसे चैक का रेखांकन कहते हैं और ऐसा चैक रेखित चैक कहलाता है इन दो तिरछी समान्तर रेखाओं के बीच कुछ शब्द लिखे भी जा सकते हैं और नही भी। वास्तव में रेखांकन का उद्देश्य यह होता है कि चैक का भुगतान असली मालिक को ही हो। अतः चैक का रेखन धारक की सुरक्षा व बचाव का साधन है। चैक के रेखन से उसकी परक्राम्यता या विनिमय साध्यता (Negotiability) पर कोई प्रभाव नहीं पडता है।

यदि किसी रेखित चैक के धारक का किसी बैंक में खाता नहीं है और वह उसका भुगतान प्राप्त करना चाहता है तो उसके सामने दो विकल्प है :

1. वह किसी बैंक में अपना खाता खोल कर उस चैक को पहले अपने खाते में जमा कर ले और तत्पश्चात अपने खाते से पैसे निकाल ले।
2. वह चैक का पृष्ठांकन किसी ऐसे व्यक्ति के नाम करके भुगतान प्राप्त कर सकता है जिसका बैंक में खाता हो।

5.7 रेखांकन के ढंग या प्रकार (Types of Crossing)

चैक का रेखांकन निम्न प्रकार से किया जा सकता है –

1 साधारण या सामान्य रेखांकन – धारा 123 के अनुसार, यदि किसी चैक के मुख भाग पर (साधारणतया चैक के ऊपरी बांये कोने पर) दो समान्तर तिरछी रेखायें खींच दी जाती हैं और उसके मध्य (a)या तो कोई शब्द न लिखे जायें या (b)'एण्ड कम्पनी'(and company 0r & Co.)शब्द लिख दिये जाते हैं (c)या/और 'अपर– क्राम्य' (Not Negotiable) शब्द लिख दिये जायें तो ऐसे रेखांकन को साधारण रेखांकन कहते हैं ।

साधारण रेखंकन निम्न किसी भी तरीके से किया जा सकता है

(a)

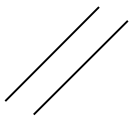

(b)

(c)

(d)

साधारण रेखांकित चैक का भुगतान आदेशित बैंक किसी अन्य को नही करेगा। अतः साधारण रेखांकित चैक का धारक उसकी वसूली किसी बैंक के माध्यम से करा

सकता है। धारक अपनी इच्छानुसार किसी भी बैंक के माध्यम से वसूली करा सकता है।

2 **विशेष रेखांकन –** धारा 124 के अनुसार, यदि किसी चैक के मुख पर दो समांतर रेखाओं के बीच (not Negotiable शव्द हो या न हेा)किसी बैंक का नाम लिख दिया जाये, तो इसे विशेष रेखांकन कहते हैं। (दो समान्तर रेखायें खींचना आवश्यक नहीं है परन्तु व्यवहार में खींची जाती है)। विशेष रेखांकन में चैक का भुगतान केवल उसी बैंक को होता है जिसका नाम रेखाओं के अन्दर लिखा हैं।
विशेष रेखांकन निम्न किसी भी तरीके से किया जा सकता हैः–

(a) (b) (c)

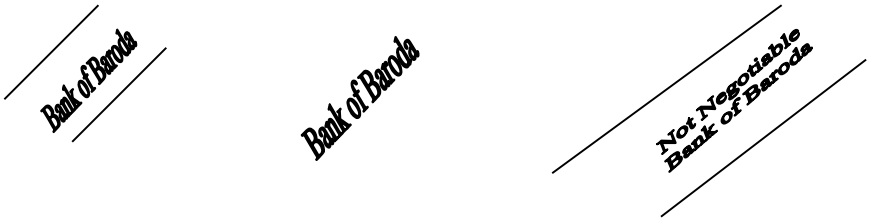

सामान्य रेखांकन की तुलना में विशेष रेखांकन की दशा में चैक अधिक सुरक्षित हो जाता है क्योंकि विशेष रेखांकित चैक के चोरी हो जाने पर चोर को उसका भुगतान लेने के लिये विशेष रेखांकन में उल्लिखित बैंक का ही कोई खाताधारी तलाश करना पड़ेगा जो कि उसके लिये सामान्यतः कठिन होगा।

(3) **प्रतिबन्धक या प्रतिबंधात्मक रेखांकन –** कुछ बैंकों एवं व्यापारियों द्वारा चैक की जोखिम को कम करने के लिये अथवा चैक को अधिक सुरक्षा प्रदान करने के लिये रेखांकन के उपरोक्त दो ढंगों के अतिरिक्त एक तीसरा ढंग भी अपनाया गया है जिसके अन्तर्गत चैक में रेखांकन की दो समानान्तर रेखाओं के बीच कुछ और शब्दों का प्रयोग किया जाता है जैसे–'Account Payee, Only या Account Ramesh Bansal Only प्रतिबन्धक रेखांकन निम्न किसी भी तरीके से किया जा सकता है।

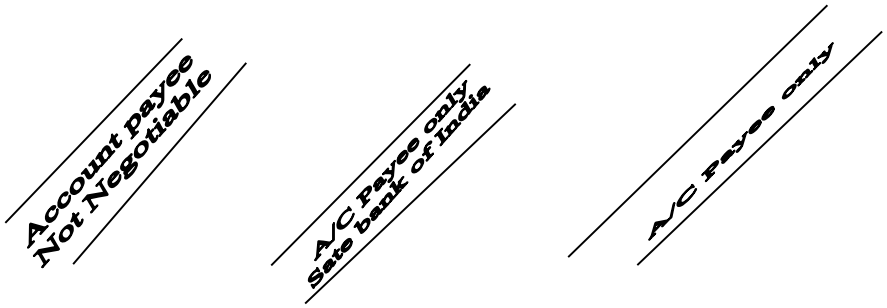

चैक के 'Account Payee' रेखांकन होने पर बैंक से यह आशा की जाती है कि वह चैक की रकम केवल आदाता के खाते में ही जमा करे किसी अन्य के खाते में नहीं। परन्तु ऐसे रेखांकित चैक का भी पृष्ठाकन किसी अन्य व्यक्ति के नाम किया जा सकता है।

चैक का रेखांकन कौन कर सकता है ?– धारा 125 के अनुसार एक चैक का रेखाकन निम्न व्यक्तियों के द्वारा किया जा सकता है :–

1– चैक का लिखने वाला चैक को रेखांकित कर सकता है।

2– यदि चैक रेखांकित नहीं है तो चैक का धारक इसको रेखांकित कर सकता है।

3– यदि चैक पर साधारण रेखांकन है तो धारक उस पर विशेष रेखांकन कर सकता है।

4– यदि चैक पर साधारण या विशेष रेखांकन है तो धारक उसमें Not negotiable शब्द और लिख सकता है।

5– यदि चैक पहले से ही विशेष रेखांकित है तो वह बैंक जिसके नाम यह पहले ही रेखांकित हो चुका है इसका भुगतान संग्रह कराने के लिये दूसरे बैंक के नाम विशेष रूप से रेखांकित कर सकता है।

5.8 विनिमय साध्य लेखपत्र का अनादरण या अप्रतिष्ठा (धारा 91–98) (Dishonour of Negotiable Instrument)

जब किसी विनिमय साध्य विलेख का आहार्यी उसको स्वीकार करने अथवा भुगतान करने से इन्कार कर देता है तो इसे विनिमय साध्य विलेख का अनादरण कहते हैं। दूसरे शब्दों में प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र या चैक का अनादरण भुगतान न करने पर किया जा सकता है परन्तु अस्वीकृति द्वारा केवल विनिमय पत्रों का ही अनादरण किया जा सकता है क्योंकि वे ही स्वीकृति के लिये प्रस्तुत करने आवश्यक होते हैं। इस प्रकार अनादरण दो प्रकार से हो सकता है। (1) अस्वीकृति द्वारा (2) भुगतान न करने पर

(1) अस्वीकृति द्वारा अनादरण – एक विनिमय–पत्र निम्नलिखित दशाओं में अस्वीकृति द्वारा अनादृत हुआ माना जाता है :–

i. जब कोई विनिमय–पत्र स्वीकृति के लिये प्रस्तुत किये जाने पर, उसे स्वीकार करने से मना कर दिया हो अथवा प्रस्तुत करने के बाद 48 घण्टे के अन्दर–अन्दर स्वीकार नहीं करता हो।

ii. जब स्वीकृति के लिये प्रस्तुति आवश्यक न हो और विनिमय–पत्र स्वीकार न किया गया हो।

iii. जब आहार्यी अनुबन्ध करने की क्षमता न रखता हो।

iv. जब विनिमय–पत्र पर सशर्त अर्थात प्रतिबन्धित स्वीकृति दी हो।

v. जब आहार्यी कोई कृत्रिम व्यक्ति हो अथवा उचित खोज के बावजूद न मिल सका हो।

(2) भुगतान न करने पर अनादरण – यदि प्रतिज्ञा पत्र का बचनदाता अथवा विनिमय–पत्र का स्वीकर्त्ता अथवा चैक का आदेशिती (आहार्यी) (Bank) भुगतान की यथाविधि मांग करने पर भुगतान नहीं करता तो वह 'भुगतान न करने पर अनादरण' माना जाता है। और तीनों विलेख, प्रतिज्ञा–पत्र, विनिमय–पत्र तथा चैक भुगतान न किये जाने पर अनादरित हुए कहे जाते हैं।

अनादरण की सूचना – अनादरण की सूचना से अभिप्राय अनादरण के तथ्य की औपचारिक सूचना देने से है। अनादरण की सूचना इस बात की चेतावनी होती है कि वह विपत्र के अधीन देय राशि के लिये दायी ठहराया जा सकता है। अनादरण की सूचना का उद्देश्य सूचना प्राप्त करने वाले व्यक्ति को यह अवसर प्रदान करना भी है कि वह अन्य पूर्विक पक्षकारों के विरूद्व अपने हितों की रक्षा कर सके।

अनादरण की सूचना किस व्यक्ति द्वारा – विनिमय साध्य विलेख के अनादरण की सूचना विलेख के धारक को उन सभी पक्षकारों को जिन्हें वह उत्तरदायी ठहराना चाहता है़ दी जानी चाहिये। अनादरण की सूचना प्राप्त करने वाले पक्षकार का भी यह कर्तव्य है कि वह अनादरण के तथ्य की सूचना उचित समय के भीतर सभी पूर्विक पक्षकार (prior parties) को भेज दे ताकि वह उन्हें दायी बना सके। वह किसी भी ऐसे पूर्विक पक्षकार पर मुकद्मा नहीं चला सकता जिसे उसने अनादरण की सूचना नही भेजी है। अनादरण की सूचना अधिकृत प्रतिनिधि द्वारा भी दी जा सकती है।

अनादरण की सूचना किस व्यक्ति को (धारा 95) – किसी विनिमय साध्य विलेख के धारक का यह कर्तव्य है कि विलेख के अनादरण की सूचना (प्रतिज्ञा पत्र के बचनदाता अथवा विनिमय–पत्र के स्वीकर्त्ता अथवा चैक के आदेशिती को छोड़कर) उन समस्त व्यक्तियों या उनके अधिकृत प्रतिनिधियों को दें जिन्हें वह उत्तरदायी ठहराना चाहता है। यदि किसी विपत्र के एक से अधिक व्यक्ति संयुक्त रूप से उत्तरदायी हो तो उनमें से किसी एक को अनादरण की सूचना देना पर्याप्त होता है। प्रतिज्ञा पत्र के बचनदाता अथवा विनिमय–पत्र के स्वीकर्त्ता अथवा चैक के आदेशिती (बैंक) को अनादरण की सूचना देने की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि उन्हीं के द्वारा विपत्र का अनादरण किया जाता है। यदि विपत्र के सम्बन्ध में उत्तरदायी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो अनादरण की सूचना उसके वैधानिक प्रतिनिधि को और यदि कोई उत्तरदायी पक्ष दिवालिया घोषित हो जाता है तो अनादरण की सूचना उसके सरकारी प्रापक को दी जानी चाहिये।

अनादरण की सूचना देने का तरीका (धारा 94) – विनिमय साध्य–लेख पत्र के अनादरण की सूचना मौखिक या लिखित रूप में दी जा सकती है। लिखित होने की दशा में वह डाक द्वारा भेजी जा सकती है। सूचना का प्रारूप चाहे कुछ भी हो परन्तु उसमें प्रयुक्त भाषा से यह स्पष्ट होना चाहिये कि विपत्र का अनादरण हो गया है और सूचना प्राप्त करने वाला व्यक्ति इसके लिये उत्तरदायी होगा। अनादरण की सूचना अनादरण के बाद उचित समय के अन्दर, कारोबार के स्थान पर अथवा यदि उसका कारोबार नहीं है तो उसके निवास स्थान पर दी जानी चाहिये।

अनादरण की सूचना कब अनावश्यक होती है ?

धारा 98 के अनुसार विनिमय साध्य–लेख पत्र के अनादरण होने पर निम्नलिखित दशाओं में अनादरण की सूचना देने की आवश्यकता नहीं होती अर्थात विपत्र के पक्षकार अनादरण की सूचना प्राप्त किये बिना भी उत्तरदायी होते हैं :–

(1) जब लेख पत्र का पक्षकार अनादरण की सूचना प्राप्त करने के अपने अधिकार का परित्याग कर दे।

(2) जब चैक के आदेशक ने बैंक को चैक का भुगतान न करने का आदेश दे दिया हो तो आहर्त्ता (चैक लिखने वाला) को अनादरण की सूचना देने की आवश्यकता नहीं होती (क्योंकि वह स्वयं ही भुगतान न करने का आदेश दे रहा है।)

(3) जब उत्तरदायी पक्षकार को अनादरण की सूचना न देने पर कोई हानि नहीं पहुंचती है तो ऐसी दशा में अनादरण की सूचना देना आवश्यक नहीं है। उदाहरणार्थ – जब चैक के आदेशक ने बैंक में अपना खाता बन्द कर दिया हो

जिस कारण चैक अनादरित हुआ हो अथवा चैक लिखते समय उसके खाते में धन न हो।

(4) जब विनिमय साध्य–लेख पत्र के अनादरण की सूचना प्राप्त करने का अधिकारी पक्षकार उचित ढूंढ खोज करने के बाद भी नहीं मिलता अथवा जब सूचना देने के लिये बाध्य पक्षकार, किसी अन्य न्यायोचित कारण से (जैसे मृत्यु, दुर्घटना आदि) उक्त सूचना देने में असमर्थ रहे।

(5) जब किसी विनिमय साध्य–लेख पत्र का आदेशक एवं स्वीकर्त्ता एक ही व्यक्ति हो जैसे – जब कोई फर्म अपनी किसी शाखा पर अथवा जब कोई साझेदार, साझेदारी फर्म पर कोई विनिमय पत्र लिखे।

(6) जब कोई प्रतिज्ञा पत्र विनिमय–साध्य न हो, ऐसा प्रतिज्ञा पत्र पृष्ठांकित नहीं किया जा सकता। यदि वह पृष्ठांकित कर दिया जाता है तो उसका पृष्ठांकिती को उसके लेखक तथा पृष्ठाकनकर्त्ता के विरूद्व दावा करने का अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता है इसलिये ऐसे प्रतिज्ञा पत्र के अनादरण होने पर उसकी सूचना देना आवश्यक नहीं है क्योंकि सूचना न दिये जाने से किसी को भी कोई हानि नहीं होती।

(7) जब विनिमय साध्य–लेख पत्र के अनादरण की सूचना पाने का अधिकारी पक्षकार, तथ्यों को जानते हुये भी लेख पत्र पर देय रकम शर्त रहित भुगतान करने का बचन दे देता है।

5.8.1 नोटिंग तथा प्रोटेस्ट (धारा 99–104) (Noting and Protest)

नोटिंग या अवलोकन –नोटिंग किसी विनिमय साध्य–लेख पत्र के अनादरण का प्रामाणिक (Authentic) तथा आधिकारिक (official) सबूत (Proof) होता है। विनिमय साध्य–लेख पत्र अधिनियम के अनुसार, नोटिंग अनादरण के तथ्य को प्रमाणित कराने का सुविधाजनक ढंग है। किसी चैक के अनादरण के तथ्य के नोटिंग का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि जब बैंक चैक का भुगतान करने से मना करता है तो वह चैक के अनादरण करने के कारणों को लिखित रूप से चैक के साथ नत्थी करके चैक को वापस कर देता है ऐसी स्थिति में खुद चैक अपने अनादरण का प्रामाणिक साक्ष्य बन जाता है।

जब कोई प्रतिज्ञा पत्र अथवा विनिमय पत्र अस्वीकृति द्वारा अथवा भुगतान न होने के कारण अनादरित हो जाये, तो उसका धारक नोटरी पब्लिक (नोटरी पब्लिक एक ऐसा अधिकारी होता है जिसकी नियुक्ति विनिमय साध्य अधिनियम में वर्णित 'नोटिंग एवं साक्ष्य' के प्रयोजनार्थ सरकार द्वारा की जाती है।) से अनादरण के तथ्य का नोटिंग सम्बन्धित लेख पत्र पर अथवा उसके साथ नत्थी पर्ची पर अथवा आंशिक रूप से लेख पत्र और पर्ची दोनों पर करा सकता है। इसके लिये लेख पत्र का धारक विनिमय पत्र अथवा प्रतिज्ञा पत्र को नोटरी पब्लिक के पास ले जाता है नोटरी पब्लिक लेख पत्र को यथास्थिति सम्बन्धित पक्षकार के समक्ष स्वीकार करने या भुगतान करने की मांग हेतु प्रस्तुत करता है और यदि पक्षकार ऐसा करने से मना कर देता है तो नोटरी पब्लिक उसके इन्कार करने के तथ्य का नोटिंग सम्बन्धित लेख पत्र पर कर देता है। इस प्रकार अनादरण के तथ्य का अनादृत लेख पत्र पर अथवा नत्थी पर्ची पर अभिलेखन नोटिंग कहलाता है। नोटिंग लेख पत्र के अनादरण के पश्चात उचित समय के अन्दर की जानी चाहिये। नोटिंग में निम्न बातें होनी चाहिये–

I. अनादरण की तिथि।
II. अनादरण किये जाने का कारण।
III. यदि लेख पत्र का अनादरण स्पष्ट रूप से नहीं हुआ है तो लेख पत्र का धारक उसको किस कारण अनादरित मानता है।
IV. नोटरी पब्लिक का पारिश्रमिक तथा व्यय का उल्लेख किया जाना चाहिये।

प्रोटेस्ट, या प्रसाक्ष्य या प्रमाणन (धारा 100) –

प्रोटेस्ट अनादरण के तथ्य का नोटिंग के पश्चात एक औपचारिक प्रमाण पत्र होता है जिसे नोटरी पब्लिक विनिमय पत्र अथवा प्रतिज्ञा पत्र के धारक को, उसकी मांग पर प्रदान करता है। प्राप्त किये हुये ऐसे प्रमाण पत्र को 'प्रोटेस्ट' कहते हैं। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि प्रोटेस्ट एक प्रमाण पत्र है जो कि अनादरण के तथ्य को प्रमाणित करता है और यह अनादरण के सम्बन्ध में किये गये नोटिंग के आधार पर तैयार किया जाता है।

अच्छी जमानत के लिये प्रोटेस्ट (धारा 100) (Protest for better Security)

जब किसी विनिमय–पत्र का स्वीकर्त्ता उसके परिपक्व होने से पूर्व दिवालिया हो गया हो अथवा उसकी साख जनता में गिर गई हो तो धारक नोटरी पब्लिक के द्वारा उचित समय के भीतर स्वीकर्त्ता से अच्छी जमानत मांग सकता है और उसके इन्कार करने पर उचित समय के अन्दर इस तथ्य को नोट तथा प्रमाणित करा सकता है ऐसे प्रमाण पत्र को ही 'अच्छी जमानत के लिये प्रोटेस्ट' कहते हैं।

प्रोटेस्ट या प्रमाणन की विषय सामग्री या आवश्यक बातें (धारा 101) –

प्रमाणन में निम्नलिखित विवरण सम्मिलित होना चाहिये –

1) विपत्र मूल रूप में अथवा उसकी प्रतिलिपि,
2) उस व्यक्ति का नाम जिसके लिये तथा जिसके विरूद्व लेख पत्र का प्रोटेस्ट किया गया हो।
3) इस तथ्य का विवरण कि नोटरी पब्लिक द्वारा सम्बन्धित व्यक्ति भुगतान, स्वीकृति या अच्छी जमानत की मांग की थी और उस व्यक्ति ने उसकी मांग ठुकरा दी थी, अथवा उसने कोई उत्तर नहीं दिया अथवा वह व्यक्ति ही नहीं मिल सका था।
4) अनादरण का स्थान एवं समय और यदि अच्छी जमानत से इन्कार किया गया हो उसका स्थान व समय।
5) नोटरी पब्लिक का लेख एवं हस्ताक्षर।
6) यदि प्रतिष्ठा हेतु स्वीकृति या प्रतिष्ठा हेतु भुगतान हुआ हो तो किसने और किसकी प्रतिष्ठा के लिये और किस विधि से स्वीकृति और भुगतान का प्रस्ताव किया गया लिखना चाहिये।

5.8.2 क्षतिपूर्ति (धारा 117) (Compensation)

जब कोई विनिमय–पत्र, प्रतिज्ञा पत्र अथवा चैक अनादरित हो जाता है तो उसके धारक अथवा बेचानकर्त्ता को देय क्षतिपूर्ति निम्नलिखित नियमों के आधार पर निर्धारित होती है :–

(1) विनिमय साध्य लेख पत्र के धारक को लेख पत्र की रकम उसे प्रस्तुत करने, नोटिंग तथा प्रोटेस्ट कराने में उचित रूप से किये गये व्ययों को प्राप्त करने का अधिकार होता है। यदि उत्तरदायी पक्षकार किसी दूसरे देश में रहता है तो धारक दोनों देशों के बीच चालू विनिमय दर के अनुसार क्षतिपूर्ति की उक्त रकम पाने का अधिकारी है।

(2) जब बेचान कर्त्ता या पृष्ठांकक ने लेख पत्र पर देय रकम का भुगतान कर दिया हो, तो वह चुकाई गई रकम, भुगतान करने की तिथि से लेकर उसको प्राप्त करने की तिथि तक का 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज, तथा अनादरण व भुगतान सम्बन्धी सभी व्ययों को प्राप्त करने का अधिकारी होता है। जब उत्तरदायी पक्षकार दूसरे देश का हो तो पृष्ठांकक दोनों देशों के बीच प्रचलित विनिमय दर के अनुसार उक्त रकम (लेख पत्र की रकम + ब्याज +व्यय) पाने का अधिकारी होता है।

(3) क्षतिपूर्ति पाने का अधिकारी पक्षकार लेख पत्र की रकम तथा उस पर किये उचित व्ययों के लिये 'मांग पर देय' लिख सकता है ऐसे विनिमय पत्र को पुर्नलेख (Re-draft) कहते हैं। पुर्नलेख के साथ अनादरित विलेख तथा उसका प्रमाण पत्र (प्रोटेस्ट) संलग्न होना आवश्यक है। यदि पुर्नलेख भी अनादरित कर दिया जाये तो अनादरण करने वाला पक्षकार इसके लिये क्षतिपूर्ति करने का दायी होगा।

5.9 सारांश

जब विनिमय साध्य विलेख इस प्रकार हस्तातरित किया जाता है कि वह व्यक्ति उस विलेख का धारक बन जाता है तो ऐसे हस्तातरण को परक्रामण कहते है। वाहक को देय विलेख का परक्रामण केवल विलेख की सुपुर्दगी द्वारा हो जाता है परन्तु यदि विलेख आदेशानुसार देय हो तो ऐसे विलेख का परक्रामण विलेख के पृष्ठांकन तथा उसकी सुपुर्दगी के द्वारा होता है।

जब विनिमय साध्य विलेख का धारक हस्तातरण के आशय से विलेख की पीठ पर या मुख पर या संलग्न कागज की चिट पर अपने हस्ताक्षर करता है तो इसे विलेख का पृष्ठांकन कहते है। जो व्यक्ति पृष्ठाकंन करता है उसे पृष्ठांकक या पृष्ठांकन कर्ता और जिस व्यक्ति के नाम पृष्ठांकन किया जाता है उसे पृष्ठाकिती कहते है। पृष्ठांकन स्याही से ही किया जाना चाहिए। पृष्ठांकन – साधारण, विशेष, प्रतिबंधात्मक तथा शर्त सहित हो सकता है।

रेखांकित चैक वह चैक जिसके मुख पर दो तिरक्षी समान्तर रेखायें खींच दी जाती है समान्तर रेखाओं के बीच कुछ लिखा भी जा सकता है और नहीं भी। रेखांकित चैक का भुगतान बैंक के काउन्टर से सीधे प्राप्त नहीं किया जा सकता है अर्थात पहले रेखांकित चैक का पैसा खाते में जमा होता है और फिर खाते से पैसे निकाले जा सकते है। चैक का रेखांकन अनेक प्रकार से किया जा सकता है जैसे सामान्य रेखाकंन, विशेष रेखांकन तथा प्रतिबन्धात्मक रेखांकन। चैक का रेखांकन लिखने वाला तथा उसका धारक भी कर सकता है। चैक के साधारण रेखांकन का उसका धारक विशेष रेखांकन कर सकता है।

5.10 शब्दावली

परक्रामणः जब कोई प्रतिज्ञा पत्र, विनिमय पत्र अथवा चैक किसी व्यक्ति को इस प्रकार हस्तांतरित किया जाता है कि वह व्यक्ति उसका धारक बन जाता है तो विलेख के ऐसे हस्तांतरण को परक्रामण कहते है।''

पृष्ठांकनः इससे तात्पर्य किसी विनिमयसाध्य लेखपत्र के हस्तांतरण के उद्देश्य से उसके धारक द्वारा सामान्यतः लेखपत्र के पीछे किये गये हस्ताक्षर से होता है।

खुला चैकः ऐसा चैक है जिसका भुगतान आदेशित बैंक के काउन्टर पर प्राप्त किया जा सकता है।

विलेख का अनादरणः जब किसी विनिमय साध्य विलेख का आहार्यी उसको स्वीकार करने अथवा भुगतान करने से इन्कार कर देता है तो इसे विनिमय साध्य विलेख का अनादरण कहते हैं।

5.11 बोध प्रश्न और उनके उत्तर

बोध प्रश्न 'क'

निम्न कथनों में कौन सा सत्य है और कौन सा अस्तय बताइयें –

1. एक विनिमय साध्य विलेख का उसके मूल्य के कुछ भाग के लिये पृष्ठांकन किया जा सकता है।
2. जब पृष्ठांकन कर्ता विनिमय साध्य विलेख पर केवल अपना हस्ताक्षर कर देता है और पृष्ठांकिती का नाम नहीं लिखता तो यह वैध पृष्ठांकन नहीं माना जाता है।
3. वाहक को देय चैक का केवल सुपुर्दगी कर देना परक्रामण माना जाता है।
4. दिवालिया व्यक्ति द्वारा जारी चैक के भुगमात को बैंक मना कर सकता है।
5. जब चैक तीन माह से अधिक पुराना हो जाता है तो ऐसे चैक का भुगतान करने से बैंक मना नहीं कर सकता है।

बोध प्रश्न 'ख' – रिक्त स्थानों को भरिये –

1. भावी तिथि के चैक ..... विनिमय साध्य विलेख नहीं होते है।
2. एक आदेशित विनिमय साध्य विलेख का हस्तांतरण ..... द्वारा हो सकता है।
3. विनिमय साध्य विलेख का आंशिक पृष्ठांकन ..... जा सकता है।
4. एक चैक पर महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिया गया हो तो बैंक ऐसे चैक का भुगतान ..... सकता है।
5. एक चैक ..... माह तक वैध रहता है।

5.12 बोध प्रश्न के उत्तर

क)

1. असत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य

ख)

1. वैध 2. पृष्ठांकन एवं सुपुर्दगी 3. नहीं किया 4. नहीं कर 5. तीन

5.13 स्वपरख प्रश्न

1. विनिमय साध्य विलेख के परक्रामण से आप क्या समझते है ? ये कितने प्रकार के होते है?
2. चैक के रेखांकन से आप क्या समझते है? रेखांकन के विभिन्न प्रकार कौन–कौन से है?
3. विनिमय साध्य विलेख के पृष्ठांकन का अर्थ समझाइये। पृष्ठांकन कितने प्रकार से किया जा सकता है?
4. विनिमय साध्य लेखपत्र के अनादरण से क्या अभिप्राय है ? अनादरण पर नोटिंग व प्रोटेस्ट के सम्बन्ध में क्या नियम हैं ?

5.14 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws: Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (p) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law: Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law: K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई –6 भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 (Indian Partnership Act, 1932)

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 साझेदारी की परिभाषा
6.3 साझेदारी संलेख
6.4 साझेदारों के प्रकार
6.5 साझेदारी तथा सहस्वामित्व में अन्तर
6.6 साझेदारी तथा सयुक्त हिन्दु परिवार में अन्तर
6.7 साझेदारी तथा कम्पनी में अन्तर
6.8 लाभ में हिस्सा पाना किसी व्यक्ति को साझेदार नहीं बना देता
6.9 अवयस्क साझेदार की स्थिति
6.10 साझेदारों के अधिकार
6.11 साझेदारों के कर्तव्य
6.12 सारांश
6.13 शब्दावली
6.14 बोध प्रश्न
6.15 बोध प्रश्नों के उत्तर
6.16 स्वपरख प्रश्न
6.17 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- साझेदारी का अर्थ और उसकी विशेषताओं को समझ सके।
- साझेदारी, सहस्वामित्व, सयुक्त हिन्दु परिवार तथा कम्पनी में अन्तर समझ सके।
- साझेदारी संलेख क्या होता है, को समझ सके।
- एक अवयस्क साझेदार की साझदारी फर्म में क्या स्थिति होती है, को समझ सके।
- सझेदारों के आपसी सम्बन्धों को अर्थात उनके अधिकारों व कर्त्तव्यों को समझ सके।

6.1 प्रस्तावना

अन्य प्रकार के अनुबन्धों की भॉति साझेदारी भी एक विशेष प्रकार का व्यापारिक अनुबन्ध है इस अनुबन्ध से सम्बन्धित व्यवस्थायें भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 में सन्निहित है। 1932 से पूर्व साझेदारी अनुबन्ध से सम्बन्धित नियम, भारतीय अनुबन्ध अधिनियम 1872 के ग्यारवें अध्याय की धारायें 139 से 166 के अर्न्तगत दिये गये थे। सन् 1932 में नवीन अधिनियम में महत्वपूर्ण संशोधन किए गए तथा यह 1 अक्तूबर 1932 से लागू हुआ। यह भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 कहलाया, जो जम्मू तथा कश्मीर राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में लागू है। साझेदारी फर्मो पर भारतीय अनुबन्ध अधिनियम के उपबन्ध भी उस सीमा तक लागू होते है जिस तक वे साझेदारी अधिनियम के अभिव्यक्त उपबन्धों

से असंगत नहीं होते। इस इकाई में आप साझेदारी का अर्थ तथा उसकी विशेषताओं के साथ साथ साझेदारों के अधिकारों व कर्तव्यों का अध्ययन करेंगे।

6.2 साझेदारी की परिभाषा (Definition of Partnership)

धारा 4 के अनुसार "साझेदारी उन व्यक्तियों के बीच का सम्बन्ध है जिन्होने किसी ऐसे कारोबार से उपार्जित लाभ को बांटने का ठहराव किया है जिसे वे सब अथवा उन सबकी ओर से एक संचालित करता है"। ऐसे व्यक्तियों को व्यक्तिगत रूप से साझेदार और सामुहिक रूप से फर्म कहते हैं।

प्रो0 हैने के अनुसार, "साझेदारी विभिन्न व्यक्तियों में जो अनुबन्ध करने के योग्य है, परस्पर ठहराव करते हैं जिसके अनुसार वह अपने लाभ के लिये कोई न कोई व्यवसाय करते हैं"।

किम्बोल के अनुसार,"साझेदारी दो या दो से अधिक ऐसे व्यक्तियों का समूह है जिन्होने किसी व्यावसायिक उद्देश्य से परस्पर पूंजी लगाई है"।

उपरोक्त परिभाषाओं के अनुसार साझेदारी के लिये निम्नलिखित लक्षण आवश्यक हैं :–

साझेदारी के लक्षण या विशेषतायें (Characteristics of Partnership)

(1) **दो या दो से अधिक व्यक्तियों का होना –** साझेदारी होने के लिये कम से कम दो व्यक्तियों (साझेदार) का होना आवश्यक है क्योंकि साझेदारी पारस्परिक ठहराव द्वारा अस्तित्व में आती है। एक व्यक्ति स्वयं से ठहराव या साझेदारी नहीं कर सकता। साझेदारों की अधिकतम संख्या कम्पनी अधिनियम द्वारा निर्धारित की गई है साझेदारी अधिनियम द्वारा नहीं। जो साझेदारी फर्म बैंकिंग के व्यवसाय में संलग्न होगी उसमें अधिकतम 10 साझेदार हो सकते है। और अन्य कारोबार में संलग्न हो तो अधिकतम 20 साझेदार हो सकते हैं। अधिकतम संख्या से अधिक साझेदार होने पर साझेदारी अवैध समझी जायेगी और न्यूनतम 2 से कम होने पर साझेदारी फर्म समाप्त हो जायेगी।

(2) **ठहराव का होना –** साझेदारी की स्थापना साझेदारों के बीच स्पष्ट अथवा गर्मित ठहराव द्वारा होती है। व्यक्तियों की स्थिति से साझेदारी की स्थापना नहीं होती। ठहराव लिखित या मौखिक हो सकता है। साझेदारी अनुबन्ध में भी वे सभी गुण या विशेषतायें होनी चाहिये जो कि एक वैध अनुबन्ध में होते हैं। इसी विशेषता के कारण ही संयुक्त हिन्दू परिवारों के सदस्यों को साझेदार नहीं कहा जाता क्योंकि उनके बीच कोई ठहराव नहीं होता। अतः 'साझेदारों के मध्य अनुबन्ध' साझेदारी का मूलाधार होता है।

(3) **कारोबार का होना –** साझेदारी होने के लिये यह भी आवश्यक है कि साझेदारों के मध्य जो ठहराव हो वह किसी कारोबार या व्यवसाय को चलाने के लिये होना चाहिये। कारोबार के अर्न्तगत व्यापार, व्यवसाय तथा पेशे सम्मिलित हैं। यदि ठहराव पुण्यार्थ कार्य के लिये हो या माल व सम्पत्ति खरीद कर आपस में बांटने के लिये हो तो उसे साझेदारी नहीं कहेंगे।

(4) **कारोबार का उद्देश्य लाभ कमाना तथा बांटना होना चाहिये –** साझेदारी के लिये यह भी आवश्यक है कि साझेदारों के बीच हुए ठहराव में कारोबार का उद्देश्य लाभ कमाना होना चाहिये तथा लाभ को आपस में बांटना होना चाहिये। इसलिये कोई भी ठहराव जिसका उद्देश्य परोपकारी कार्य करना है तो उसे

साझेदारी नहीं कहेंगे। लाभ कमाने के साथ–साथ उसे परस्पर बांटना भी साझेदारी के लिये आवश्यक है।

यदि किसी कारोबार के पूरे लाभ को केवल एक साझेदार लेने का अधिकारी होता है तो उसे साझेदारी नहीं कहा जा सकता। हॉ, साझेदार अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी अनुपात में आपस में लाभ का बटवारा करने का अनुबन्ध कर सकते है।

हानि का बटवारा आवश्यक नहीं है – साझेदारी के लिए साझेदारों का हानि को परस्पर बाटने के लिए सहमत होना आवश्यक नहीं है कोई एक या एक से अधिक साझेदार कारोबार की सम्पूर्ण हानि को परस्पर बाटने के लिए सहमत हो सकते है। इस प्रकार साझेदारी अधिनियम साझेदारों द्वारा हानि को परस्पर बाटने के लिए अनुबन्ध करने को साझेदारी के अस्तित्व की कसौटी नहीं मानता। अर्थात साझेदार आपस में ऐसा अनुबन्ध कर सकते है कि कुछ निश्चित साझेदार ही हानि के लिए उत्तरदायी होगें शेष नहीं तो ऐसी स्थिति में हानि का बटवारा सभी साझेदारों में नहीं होगा। साझेदारी अधिनियम के अनुसार यदि साझेदारों ने अन्यथा अनुबन्ध न किया हो तो फर्म के साझेदार कारोबार के लाभ को बराबर बराबर बाटने के अधिकारी होगें और कारोबार की हानियां भी बराबर बराबर सहन करेंगे।

(5) साझेदारी के कारोबार को सब साझेदार अथवा उनमें से कोई एक भी चला सकता है – साझेदारी के लिये यह आवश्यक नहीं है कि कारोबार के संचालन में सभी साझेदार सक्रिय रूप से भाग लें। इसके लिये इतना आवश्यक है कि कारोबार का संचालन सभी साझेदारों की ओर से एक साझेदार कर सकता है और उस एक साझेदार के कार्यों से सभी साझेदार बाध्य होंगे। क्योंकि साझेदारी का मूल सिद्वान्त यह है कि प्रत्येक साझेदार अपनी फर्म का एजेन्ट है और वह अपने सभी अधिकृत कार्यों से फर्म को बाध्य कर सकता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक साझेदार एजेन्ट के साथ–साथ नियोक्ता भी होता है। इस प्रकार साझेदारों के कार्यो से अन्य सब साझेदार भी बाध्य होते हैं अर्थात एक साझेदार का कार्य फर्म का कार्य माना जाता है।

6.3 साझेदारी विलेख या संलेख (Partnership Deed)

साझेदारी की स्थापना ठहराव द्वारा होती है। ठहराव लिखित या मौखिक हो सकता है। ठहराव के लिखित होने से साझेदारों तथा फर्म दोनों को लाभ होता है लिखित ठहराव होने पर कर्तव्य, अधिकार व दायित्वों का निर्धारण सरल हो जाता है इसी लिखित ठहराव को साझेदारी संलेख या विलेख कहते हैं। इसे बहुत सावधानी से तैयार किया जाना चाहिये, इसमें सभी साझेदारों के हस्ताक्षर होने चाहिये। भारतीय स्टाम्प अधिनियम के अनुसार इस पर उचित स्टाम्प लगाये जाने चाहिये। प्रत्येक साझेदार के पास इस विलेख की प्रति होनी चाहिये। जब फर्म का रजिस्ट्रेशन होता है तो साझेदारी विलेख की एक प्रति रजिस्ट्रार के कार्यालय में भी जमा करायी जानी चाहिये। क्योंकि फर्म का पंजीकरण न कराये जाने पर कोई साझेदार उक्त विलेख मे वर्णित शर्तों का पालन कराने के लिये अन्य साझेदारों के विरूद्व न्यायालय में वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है। फर्म का पंजीकरण हो जाने पर साझेदारी विलेख की शर्तो को साझेदार न्यायालय द्वारा लागू करा सकते हैं। साझेदारी संलेख से भविष्य में होने वाले मन मुटाव को या अन्य समस्याओं का समाधान करने में सहायता मिलती है। साझेदारी संलेख में

निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित विवरण होना चाहिये अर्थात साझेदारी विलेख की विषय सामग्री निम्न प्रकार है :–

1) साझेदारी फर्म का नाम तथा साझेदारों के नाम व पते।
2) फर्म के कारोबार की प्रकृति तथा क्षेत्र, (वे स्थान जहाँ फर्म द्वारा कारोबार किया जाता है)।
3) साझेदारी प्रारम्भ करने की तिथि।
4) साझेदारी की अवधि (यदि साझेदारी निश्चित अवधि के लिये है)।
5) फर्म के प्रत्येक साझेदार द्वारा लगाई गई पूँजी की मात्रा।
6) फर्म को भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर पूँजी एकत्र करने के तरीके।
7) साझेदारों द्वारा लगाई गई पूँजी पर ब्याज की दर।
8) साझेदारों द्वारा पूँजी के अतिरिक्त दिये गये ऋण पर ब्याज दर।
9) साझेदारों के मध्य लाभ–हानि के बटवारे का अनुपात।
10) फर्म का हिसाब किताब रखने का तरीका।
11) साझेदारों को देय वेतन, कमीशन, बोनस आदि।
12) साझेदारों के कर्तव्य, तथा अधिकारों का विभाजन तथा साझेदारों के दायित्वों का विवरण।
13) साझेदारों के मध्य कार्यों का विभाजन।
14) फर्म में नये साझेदार के प्रवेश सम्बन्धी नियम।
15) साझेदारों के रिटायर होने के नियम।
16) साझेदारी फर्म की ख्याति के मूल्यांकन की विधि।
17) फर्म के किसी साझेदार की मृत्यु होने पर क्या व्यवस्था होगी।
18) कर्तव्य भंग अथवा कपट करने वाले साझेदार के निष्कासन सम्बन्धी नियम।
19) साझेदारी के विघटन सम्बन्धी परिस्थितियाँ।
20) साझेदारों के आपसी विवादों को पंच–निर्णय के अनुसार निपटाने की व्यवस्था।

उपरोक्त विवरणों के अतिरिक्त साझेदार अन्य बातों का भी समावेश कर सकते हैं जिन्हें वे उचित समझे। परन्तु कोई भी बात साझेदारी अधिनियम के विपरीत न हो। साझेदारी संलेख में लिखी गई शर्तों को सभी साझेदार सहमति से परिवर्तित कर सकते हैं। साझेदारी संलेख मे स्टैम्प अधिनियम के अनुसार स्टैम्प लगाये जाते हैं।

6.4 साझेदारों के प्रकार (Types of Partner)

किसी साझेदारी फर्म में निम्नलिखित प्रकार के साझेदार हो सकते हैं :–

(1) सक्रिय साझेदार या वास्तविक साझेदार –

ऐसे साझेदार जो ठहराव द्वारा साझेदार बनते हैं तथा जो साझेदारी कारोबार के संचालन में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं, वास्तविक या सक्रिय साझेदार कहलाते हैं। सक्रिय साझेदार के कार्यो से सक्रिय साझेदार स्वयं तथा अन्य सभी साझेदार तृतीय पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होते हैं। सक्रिय साझेदार के लिये यह आवश्यक होता है कि वह रिटायर होने पर इसकी सार्वजनिक सूचना दे। यदि रिटायरमेन्ट की सार्वजनिक सूचना नहीं देता है तो वह रिटायर होने के बाद भी अन्य साझेदारों

के कार्यो के प्रति उत्तरदायी होगा। सक्रिय साझेदार के स्थायी अयोग्य होना विघटन का आधार बन जाता है।

(2) निष्क्रिय अथवा सुप्त साझेदार –

ऐसे साझेदार जो साझेदारी फर्म के कारोबार के संचालन में सक्रिय रूप से भाग न लेकर, केवल अपनी पूँजी लगाकर लाभ हानि में भागी होता है निष्क्रिय साझेदार कहलाता है। ऐसा साझेदार फर्म के प्रबन्ध में परामर्श देते हैं परन्तु सर्वसाधारण को उनके फर्म में साझेदार होने के तथ्य को प्रकट नहीं किया जाता। ऐसा साझेदार किसी अप्रकट नियोक्ता की भांति फर्म के सभी कार्यो के लिये तीसरे पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होता है। ऐसे साझेदार को रिटायर होते समय सार्वजनिक सूचना देने की आवश्यकता नहीं होती ऐसे साझेदार के दायित्व रिटायर होने पर समाप्त हो जाते हैं। निष्क्रिय साझेदार के स्थायी अयोग्य होना विघटन का आधार नहीं बनता है।

(3) नाममात्र का साझेदार –

एक ऐसा व्यक्ति जिसका नाम फर्म में एक वास्तविक साझेदार की तरह होता है, जब कि वास्तव में वह साझेदार नहीं है, नाममात्र का साझेदार कहलाता है। ऐसा व्यक्ति अपना नाम साझेदार के रूप में रखने को सहमत होता है इससे फर्म को यह लाभ होता है कि उसकी ख्याति के कारण फर्म को ऋण मिलने में आसानी होती है। वह न तो फर्म में कोई पूँजी लगाता है और न ही फर्म के लाभ–हानि में हिस्सा लेता है। परन्तु ऐसा साझेदार फर्म के कार्यो के लिये तीसरे पक्षकारों के प्रति उसी प्रकार उत्तरदायी होता है जैसे कि वह वास्तविक साझेदार हो। ऐसा साझेदार फर्म के कारोबार के संचालन में भी भागीदारी नहीं करता है। व्यवहार में ऐसा साझेदार वही व्यक्ति बनते हैं जो कि वास्तविक साझेदारों के मित्र या सम्बन्धी होते हैं।

(4) केवल लाभ के लिये साझेदार –

ऐसा साझेदार जो फर्म के लाभ में निश्चित भाग पाने का अधिकारी होता है परन्तु हानि के लिये उत्तरदायी नहीं होता 'केवल लाभ के लिये साझेदार' कहलाता है। ऐसा साझेदार फर्म के प्रबन्ध एवं संचालन में भाग नहीं लेता है परन्तु ऐसे साझेदार तीसरे पक्षकारों के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

(5) प्रदर्शन द्वारा साझेदार –

यदि कोई व्यक्ति अपने मौखिक या लिखित शब्दों से या अपने आचरण से अन्य व्यक्तियों के सम्मुख यह प्रकट करता है कि वह अमुक साझेदारी फर्म में साझेदार है, (जब कि वास्तव में वह साझेदार नहीं है) तो वह ऐसे व्यक्ति के प्रति साझेदार के रूप में दायी होगा जिसने उसके प्रर्दशन पर विश्वास करके फर्म के साथ व्यवहार किया या ऋण दिया हो। ऐसा व्यक्ति प्रर्दशन द्वारा साझेदार कहलाता है। ऐसा साझेदार अन्य साझेदारों के साथ न ठहराव करता है, न लाभ–हानि में हिस्सा बांटता है, न फर्म के संचालन में भाग लेता है, फर्म के कार्यो के प्रति सामान्यतः उत्तरदायी भी नहीं होता है। वह केवल ऐसे व्यक्तियों के प्रति उत्तरदायी होता है जिन्होने उसके प्रर्दशन पर विश्वास करके फर्म के साथ व्यवहार किया हो।

साझेदारी की विद्यमानता का निर्णय –

प्रायः इस बात पर एक समस्या उत्पन्न हो जाती है कि दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच साझेदारी विद्यमान है या नहीं। इसके लिये हमें साझेदारी की

परिभाषा, उसके विभिन्न लक्षणों तथा साझेदारी अधिनियम की धारा 5 व 6 से सहायता मिलती है। दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच साझेदारी है या नहीं इसकी विद्यमानता के लिये सभी सम्बन्धित बातों पर ध्यान देना होगा। जैसे– साझेदारों के बीच ठहराव, साझेदारों का ठहराव कारोबार हेतु, लाभ का बटवारा, कारोबार का संचालन आदि बातों पर ध्यान देना होता है।

6.5 साझेदारी एवं सह–स्वामित्व में अन्तर (Difference between Partnership and Co-ownership)

जब किसी सम्पत्ति के दो या अधिक व्यक्ति संयुक्त रूप से स्वामी होते हैं तो उन्हें सह–स्वामित्व कहते हैं, यदि ये व्यक्ति इस प्रकार की सम्पत्ति को बेच कर धनराशि आपस में बांट लेते हैं तो इन्हें भी साझेदार नहीं कहेंगे। क्योंकि साझेदारी होने के लिये साझेदारों द्वारा कारोबार के लाभ को आपस में बांटना होना चाहिये। यदि दो या अधिक व्यक्ति किसी ठहराव के अर्न्तगत सम्पत्ति को खरीदने या बेचने का कार्य करते हैं और लाभ आपस में बाटते हैं तो इसे साझेदारी कहेंगे। इस प्रकार साझेदारी व सह–स्वामित्व में निम्न अन्तर हैं –

i. सह–स्वामित्व के लिये परस्पर अनुबन्ध का होना आवश्यक नहीं है जब कि साझेदारी के लिये अनुबन्ध का होना आवश्यक है।
ii. सह–स्वामित्व में परस्पर लाभ–हानि बांटना आवश्यक नहीं है जब कि साझेदारी के लिये आवश्यक है।
iii. एक सह–स्वामी अन्य सह–स्वामियों की सहमति के बिना अपना हित किसी अन्य को हस्तांतरित कर सकता है जब कि साझेदारी में एक साझेदार अपना हित इस प्रकार हस्तांतरित नहीं कर सकता।
iv. एक सह–स्वामी अन्य सह–स्वामी का एजेन्ट नहीं होता जब कि साझेदारी में प्रत्येक साझेदार दूसरे साझेदार का एजेन्ट होता है।
v. एक सह–स्वामी को संयुक्त सम्पत्ति की लागत एवं अन्य कार्यो को पाने के लिये संयुक्त सम्पत्ति को अपने कब्जे में रखने का अधिकार नहीं होता जब कि साझेदार को इस प्रकार का अधिकार प्राप्त होता है।
vi. सह–स्वामित्व में लाभ अर्जित करने का उद्देश्य आवश्यक नहीं होता जब कि साझेदारी में एक मात्र उद्उेश्य लाभ कमाना होता है।
vii. सह–स्वामित्व में सहस्वामियों की अधिकतम संख्या की कोई सीमा नहीं होती जब कि साझेदारी में अधिकतम संख्या (बैंकिंग कारोबार में 10, अन्य कारोबार में 20) निर्धारित है।
viii. सह–स्वामित्व के लिये किसी कारोबार का किया जाना आवश्यक नहीं होता जब कि साझेदारी के लिये कारोबार का होना आवश्यक है।

6.6 साझेदारी एवं संयुक्त हिन्दू परिवार में अन्तर (Difference between Partnership and Hindu Undivided Family)

इन दोनों का अन्तर जानने से पूर्व संयुक्त हिन्दू परिवार का अर्थ समझना आवश्यक है । एक संयुक्त हिन्दू परिवार के सदस्य जो परिवार का कारोबार कर रहे हैं साझेदार नहीं कहलाते इन्हें सह–भागी कहते हैं। जब कि साझेदारी फर्म के सदस्यों को साझेदार कहा जाता है। संयुक्त हिन्दू परिवार पूर्वजों से विरासत में मिले कारोबार को चलाते हैं इसके सदस्य परिवार में जन्म लेने के कारण सह–भागी बनते हैं किसी ठहराव द्वारा नहीं। संयुक्त हिन्दू परिवार की विशेषतायें निम्न हैं :–

i. प्रत्येक व्यक्ति परिवार में जन्म लेते ही संयुक्त हिन्दू परिवार के व्यवसाय में सह–भागी बन जाता है।

ii. संयुक्त हिन्दू परिवार के व्यवसाय का संचालन सबसे बड़े व्यक्ति के द्वारा होता है जिसे कर्त्ता कहते हैं।

iii. संयुक्त हिन्दू परिवार में कर्त्ता का दायित्व असीमित होता है अन्य सदस्यों का दायित्व सीमित होता है।

अन्तर :– साझेदारी तथा संयुक्त हिन्दू परिवार में निम्न अन्तर हैं –

i. साझेदारी फर्म में भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 लागू होता है जब कि संयुक्त हिन्दू परिवार पर हिन्दू लॉ के सिद्वान्त लागू होते हैं।

ii. साझेदारी फर्म की उत्पत्ति अनुबन्ध के परिणाम स्वरूप होती है जब कि संयुक्त हिन्दू परिवार की उत्पत्ति कानून के लागू होने से होती है।

iii. साझेदारी फर्म में नये साझेदार का प्रवेश तब तक नहीं हो सकता जब तक कि सभी साझेदारों की सहमति न हो। संयुक्त हिन्दू परिवार में जन्म लेते ही सदस्य बन जाता है।

iv. साझेदारी फर्म में महिलायें भी साझेदार बन सकती है जब कि संयुक्त हिन्दू परिवार में महिलायें सह–भागी नहीं हो सकती है।

v. साझेदारी फर्म में साझेदारों की अधिकतम संख्या बैंकिंग कारोबार में संलग्न फर्म के लिये 10 तथा अन्य में अधिकतम 20 हो सकती हैं जब कि संयुक्त हिन्दू परिवार में अधिकतम संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

vi. साझेदारी फर्म में साझेदार एजेन्ट भी होते हैं इसलिये एक साझेदार के कार्य से अन्य सभी साझेदार बाध्य होते हैं। संयुक्त हिन्दू परिवार में सभी अधिकार कर्त्ता के पास होते हैं वह परिवार का प्रतिनिधि होता है वह अपने कार्यो से दूसरों को बाध्य कर सकता है परन्तु अन्य सह–भागी अपने कार्यो से दूसरों को बाध्य नहीं कर सकते हैं।

vii. साझेदारी में प्रत्येक साझेदार का दायित्व संयुक्त एवं पृथक तथा असीमित होता है जब कि संयुक्त हिन्दू परिवार में केवल कर्त्ता का दायित्व असीमित होता है।

viii. साझेदारी में प्रत्येक साझेदार को फर्म के लाभ में हिस्सा मांगने का अधिकार होता है, जब कि संयुक्त हिन्दू परिवार में परिवार के सदस्यों को लाभ मांगने का अधिकार नहीं होता वे परिवार की सम्पत्तियों में अपने हिस्से के लिये विभाजन की मांग कर सकते हैं।

ix. साझेदारी में विपरीत अनुबन्ध के अभाव में किसी साझेदार की मृत्यु होने पर साझेदारी फर्म विघटित हो जाती है, परन्तु संयुक्त हिन्दू परिवार की दशा में सह–भागी की मृत्यु का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

x. साझेदारों तथा बाहरी व्यक्तियों के विरूद्व वाद प्रस्तुत करने के लिये साझेदारी फर्म का पंजीयन आवश्यक है, परन्तु संयुक्त हिन्दू परिवार की दशा में पंजीयन आवश्यक नहीं है।

xi. साझेदारी में अवयस्क साझेदार नही बन सकता है वह केवल लाभ में सम्मिलित हो सकता है, जब कि संयुक्त हिन्दू परिवार में अवयस्क भी सह–भागी बन सकता है।

xii. साझेदारों को यह अधिकार है कि साझेदारी से अलग होते समय वह अन्य साझेदारों से पिछला हिसाब ले सकता है। संयुक्त हिन्दू परिवार की दशा में ऐसा अधिकार नहीं होता है।

6.7 साझेदारी तथा कम्पनी में अन्तर (Difference between Partnership and Company)

अन्तर का आधार	कम्पनी **(Company)**	साझेदारी **(Partnership)**
1. पृथक अस्तित्व होना	कम्पनी का अस्तित्व अपने सदस्यों से पृथक होता है।	साझेदारी का अस्तित्व अपने सदस्यों से पृथक नहीं माना जाता है।
2. अधिनियम	भारतीय कम्पनियों का कार्य कम्पनी अधिनियम 1956 तथा 2013 के अनुसार चलाया जाता हैं।	साझेदारी संस्था भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 के अनुसार चलायी जाती है।
3. पंजीयन	प्रत्येक कम्पनी का पंजीयन अनिवार्य होता है।	साझेदारी का पंजीयन अनिवार्य नहीं है।
4. पार्षद सीमानियम व अन्तर्नियम	कम्पनी अधिनियम के अतिरिक्त पार्षद सीमानियम तथा अन्तर्नियमों द्वारा कम्पनियां बाध्य होती है।	साझेदारी अधिनियम के अतिरिक्त साझेदारी संलेख द्वारा साझेदारी संस्थाएं बाध्य रहती है।
5. सदस्यों की संख्या	सदस्यों की न्यूनतम संख्या निजी कम्पनी में दो तथा सार्वजनिक कम्पनी में सात निधार्रित है (कम्पनी अधिनियम 2013 में एक व्यक्ति वाली कम्पनी का प्रावधान भी है,) सदस्यों की अधिकतम संख्या निजी कम्पनी में 200 तथा सार्वजनिक कम्पनी के लिए अधिकतम संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।	साझेदारी में सदस्यों की न्यूनतम संख्या 2 तथा अधिकतम संख्या बैंकिग व्यवसाय के लिए 10 तथा अन्य प्रकार के व्यवसाय में संलग्न साझेदारी के लिए 20 है।
6. दायित्व	कम्पनियों में अंशधारियों का दायित्व सीमित होता है।	साझेदारी में प्रत्येक साझेदार का दायित्व असीमित होता है।
7. प्रतिनिधि व्यवस्था	कम्पनी में प्रत्येक अंशधारी कम्पनी का प्रतिनिधि नहीं होता है।	प्रत्येक साझेदार फर्म का प्रतिनिधि होता है।
8. व्यवसाय के प्रबन्ध में भाग लेना	प्रत्येक अंशधारी कम्पनी के प्रबन्ध में भाग नहीं ले सकता है। उनके द्वारा चुने हुए संचालक ही प्रबन्ध में भाग ले सकते है।	प्रत्येक साझेदार फर्म के व्यवसाय के प्रबन्ध में भाग ले सकता है।
9. बाध्य करना	एक अंशधारी अपने कार्य से अन्य अंशधारियों को बाध्य नहीं कर सकता।	एक साझेदार फर्म को तथा फर्म के साझेदारों को अपने कार्य से बाध्य कर सकता है।
10. अंकेक्षण	कम्पनी अधिनियम के अनुसार सीमित दायित्व कम्पनी को लेखाकर्म का अंकेक्षण करना अनिवार्य है।	अंकेक्षण कराना अनिवार्य नहीं है।
11. हस्तांतरण	सार्वजनिक कम्पनी में अंशों के हस्तांतरण पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है जबकि निजी कम्पनी	साझेदारी में बिना सभी साझेदारों के सहमति के कोई साझेदार अपना हिस्सा

	के अंशों के हस्तांतरण नहीं किए जा सकते।	हस्तांतरण नहीं कर सकता है।
12. स्थायी अस्तित्व	अंशधारियों की मृत्यु या दिवालिया होने पर कम्पनी का अंत नहीं होता क्योंकि कम्पनी का अस्तित्व स्थायी होता है।	किसी साझेदार की मृत्यु या दिवालिया होने पर (विपरीत अनुबन्ध के अभाव में) साझेदारी समाप्त हो जाती है अर्थात फर्म का अस्तित्व स्थायी नहीं होता।
13. सम्पत्ति पर अधिकार	कम्पनी की सम्पत्ति कम्पनी के नाम होती है इस पर सदस्यों का अधिकार नहीं होता।	साझेदारी फर्म की सम्पत्ति सब साझेदारों की सयुक्त रूप से सम्पत्ति होती है।

6.8 लाभ में हिस्सा पाना किसी व्यक्ति को साझेदार नहीं बना देता है (Sharing of profit is not a decisive test of Partner)

किसी व्यक्ति द्वारा लाभ में हिस्सा पाना या ऐसा भुगतान पाना जो लाभ में निर्भर हो उसे साझेदार नहीं बना देता। किसी कारोबार के लाभ (शुद्व लाभ) में भाग लेने से प्रत्यक्षतः तो ऐसा लगता है कि साझेदारी होगी, किन्तु केवल लाभ में भाग लेना ही साझेदारी का निश्चयात्मक प्रमाण नहीं है। ऐसे अनेक उदाहरण या व्यक्ति हैं जो लाभ में हिस्सा पाते हैं परन्तु वे फर्म के साझेदार नहीं होते जैसे –

i. जब कोई व्यक्ति किसी साझेदारी फर्म को ऋण इन शर्तो पर देता है कि वह ब्याज के अतिरिक्त फर्म के लाभ में भी निश्चित प्रतिशत लाभ लेगा ऐसा व्यक्ति केवल ऋणदाता है फर्म का साझेदार नहीं माना जायेगा।

ii. जब फर्म का कोई एजेन्ट या कर्मचारी पारिश्रमिक के अतिरिक्त लाभ में भी हिस्सा पाते हैं तो वे फर्म के साझेदार नहीं माने जायेंगे।

iii. जब किसी मृत साझेदार की विधवा या उसके बच्चों को लाभ का हिस्सा दिया जाये तो विधवा या बच्चे फर्म के साझेदार नहीं माने जायेंगे।

iv. वर्तमान फर्म ने जिस व्यक्ति से कारोबार खरीदा है उस भूतपूर्व मालिक को यदि लाभ में हिस्सा दिया जाये तो वह फर्म का साझेदार नहीं माना जायेगा।

6.9 अवयस्क साझेदार की स्थिति (Position of a Minor Partner)

भारतीय साझेदारी अधिनियम के अनुसार अवयस्क व्यक्ति साझेदार नहीं बन सकता, क्योंकि अवयस्क में अनुबन्ध करने की क्षमता नहीं होती (साझेदारी अनुबन्ध द्वारा स्थापित होती है, अनुबन्ध के लिये पक्षकारों में अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिये)। तथापि सभी वर्तमान साझेदारों की स्पष्ट अनुमति या सहमति से अवयस्क व्यक्ति को साझेदारी के लाभों में हिस्सा पाने के लिये सम्मिलित किया जा सकता है। अवयस्क के संरक्षक द्वारा साझेदारों के साथ अनुबन्ध किया जा सकता है। साझेदारी अधिनियम की धारा 30 के अनुसार अवयस्क साझेदार के सम्बन्ध में निम्न नियम हैं –

i. अवयस्क व्यक्ति को फर्म के लाभों में हिस्सा प्राप्त करने के लिये अन्य सभी साझेदारों की सहमति से सम्मिलित किया जा सकता है।

ii. अवयस्क को फर्म की सम्पतियों एवं लाभों में ऐसा हिस्सा पाने का अधिकार है जो पहले ही निश्चित किया गया हो।

iii. अवयस्क साझेदार को फर्म के खातों तक पहुंचने, उनका निरीक्षण करने तथा उनकी प्रतिलिपि लेने का अधिकार है। खातों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों तक पहुचने तथा उनकी प्रतिलिपि लेने का अधिकार नहीं है क्योंकि उनमें ऐसी भी गुप्त सूचनायें होती है जो केवल साझेदारों तक ही सीमित रहनी चाहिये।

iv. अवयस्क अपने हिस्से के लाभ तथा सम्पत्ति के भाग प्राप्त करने के लिये अन्य साझेदारों के विरूद्व वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है। हाँ, फर्म से सम्बन्ध विच्छेद करने के उपरान्त वह वाद प्रस्तुत कर सकता है।

v. फर्म के कार्यो, दायित्वों एवं हानि के लिये अवयस्क का फर्म के लाभों में भाग तथा सम्पत्ति में भाग ही उत्तरदायी होगा, अवयस्क व्यक्तिगत रूप से दायी नहीं होगा।

vi. अवयस्क को वयस्कता प्राप्त होने पर फर्म में साझेदार बने रहने अथवा साझेदारी स्वीकार न करने का विकल्प प्राप्त होता है।

vii. अवयस्क को, वयस्क होने की तिथि से अथवा इस बात की जानकारी होने की तिथि से कि वह साझेदारी के लाभों में सम्मिलित किया जा चुका है, जो भी तिथि बाद की हो, उससे 6 माह के भीतर ही इस बात की सार्वजनिक सूचना देनी पड़ती है कि वह उस फर्म में साझेदार बनना चाहता है अथवा उससे अपना सम्बन्ध विच्छेद करना चाहता है। यदि अवयस्क ऐसी सार्वजनिक सूचना नहीं देता है तो 6 माह के पश्चात वह फर्म में साझेदार माना जायेगा।

viii. जब अवयस्क साझेदार फर्म में साझेदार बन जाता है तो –

(अ) साझेदार बनने के बाद उसका दायित्व अन्य साझेदारों की भांति असीमित हो जाता है ओर वह फर्म के कार्यो के लिये व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

(ब) ऐसे साझेदार का फर्म के लाभों व सम्पत्ति में हिस्सा वही रहेगा जो कि अवयस्क के रूप मे उसे प्राप्त थे।

ix. जब अवयस्क, फर्म में साझेदार बनना स्वीकार न करें तो –

(अ) सार्वजनिक सूचना देने की तिथि तक उसके अधिकार व दायित्व वही रहेंगे जो अवयस्क के रूप में थे।

(ब) सार्वजनिक सूचना देने के बाद फर्म के किसी भी कार्य के लिये उसका भाग भी दायी नही होगा।

(स) वह फर्म में अपने हिस्से (लाभ व सम्पत्ति में) के लिये साझेदारों पर वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(द) जब कोई अवयस्क साझेदार, वयस्कता प्राप्त करने पर यह प्रदर्शित करे कि वह अभी भी साझेदार है तो वह तीसरे पक्षकारों के प्रति साझेदारों की भांति उत्तरदायी होगा, भले ही उसने साझेदार न होने की सूचना दे दी हो।

6.10 साझेदारों के अधिकार (Rights of Partners)

साझेदारों के बीच किसी विपरीत अनुबन्ध के अभाव में, साझेदारी अधिनियम फर्म के साझेदारों को निम्नलिखित अधिकार प्रदान करता है :–

(1) फर्म के संचालन में भाग लेने का अधिकार – फर्म के प्रत्येक साझेदार को, चाहे उसने कितनी भी पूँजी लगाई हो, फर्म के कारोबार के संचालन एवं प्रबन्ध में भाग लेने का अधिकार होता है।

(2) परामर्श देने का अधिकार – फर्म के प्रत्येक साझेदार का यह अधिकार है कि किसी भी मामले के तय किये जाने से पूर्व उससे परामर्श लिया जाये और उसकी बात भी सुनी जाये। फर्म के कारोबार से सम्बन्धित सामान्य मामलों में मतभेद होने पर बहुमत से निर्णय लिया जाता है परन्तु साझेदारी की प्रकृति या गठन में कोई

परिवर्तन (जैसे नये साझेदार का प्रवेश, किसी साझेदार द्वारा अपने हिस्से का हस्तांतरण, लाभ में अवयस्क को शामिल करना आदि) हो तो सभी साझेदारों की सहमति अर्थात सर्व सम्मति के बिना निर्णय नहीं ले सकते हैं ऐसे मामलों में सभी साझेदारों को राय देने का अधिकार होता है।

(3) फर्म की पुस्तकों तक पहुँच रखने का अधिकार – प्रत्येक साझेदार को फर्म की पुस्तकों तक पहुँच रखने, उनका निरीक्षण करने तथा उनकी नकल लेने का अधिकार होता है। ऐसे अधिकार का प्रयोग साझेदार स्वयं अथवा अपने एजेन्ट द्वारा कर सकता है। धारा 12 (d)

(4) लाभ में हिस्सा पाने का अधिकार – फर्म के प्रत्येक साझेदार को फर्म द्वारा अर्जित लाभ में बराबर हिस्सा पाने का अधिकार होता है, चाहे उसने फर्म के कारोबार में कितनी भी पूँजी लगाई हो या उसके पास कितनी भी योग्यता व निपुणता हो। धारा 13 (b)

(5) पूँजी पर ब्याज पाने का अधिकार – यदि साझेदारी संलेख में साझेदारों को पूँजी पर ब्याज पाना हो तो साझेदार पूँजी में ब्याज केवल फर्म के लाभ में से ही पा सकते हैं हानि की दशा में पूँजी पर ब्याज पाने का अधिकार नहीं होता है। धारा 13(c)

(6) फर्म को दिये ऋण पर ब्याज पाने का अधिकार – फर्म का कोई साझेदार पूँजी के अतिरिक्त फर्म को ऋण भी देता है तो उसे फर्म से 6 प्रतिशत वार्षिक की दर से दिये गये ऋण पर ब्याज पाने का अधिकारी होता है। धारा 13 (a)

(7) क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार – फर्म के प्रत्येक साझेदार को निम्न दशाओं में किये गये भुगतानों तथा स्वीकार किये गये दायित्वों के लिये फर्म से क्षतिपूर्ति की मांग करने कर अधिकार होता है :–

(अ) फर्म के कारोबार के सामान्य एवं उचित संचालन के दौरान।

(ब) संकट काल में फर्म को हानि से बचाने के लिये कोई ऐसा कार्य करते हुए, जिसे सामान्य बुद्वि का मनुष्य अपने स्वयं के मामले में करता। धारा 13 (e)

(8) साझेदारी सम्पत्तियों के प्रयोग का अधिकार – साझेदारों को अधिकार है कि फर्म की सम्पत्ति को फर्म के कार्यो के लिये प्रयोग कर सकते हैं। फर्म की सम्पत्ति सभी साझेदारों की होती है अतएव उसका प्रयोग सद्भावना से सबके हित के लिये होना चाहिये। धारा (15)

6.11 साझेदारों के कर्तव्य

विपरीत अनुबन्ध न होने पर साझेदारों के निम्नलिखित कर्तव्य होते हैं :–

(1) कारोबार को सर्वाधिक सामान्य लाभ के लिये चलाने का कर्तव्य – फर्म के प्रत्येक साझेदार का यह कर्तव्य है कि वह अपने ज्ञान एवं कौशल का प्रयोग फर्म के लाभ के लिये करे, अपने व्यक्तिगत लाभ के लिये नहीं। दूसरे शब्दों में प्रत्येक साझेदार को सामान्य हित के लिये सद्भावना पूर्ण तरीके से कार्य करना चाहिये। (धारा 9)

(2) आपस में निष्कपट और सत्यनिष्ट रहने का कर्तव्य – फर्म के सभी साझेदारों को आपस में विश्वास, निष्कपट, सहायता और सद्भावपूर्ण व्यवहार करना चाहिये। प्रत्येक साझेदार को दूसरे साझेदार के प्रति निष्कपट, सत्यनिष्ट होना चाहिये, तथा आपस में पूर्ण विश्वास के साथ कार्य करना चाहिये। (धारा 9)

(3) सही हिसाब देने का कर्तव्य – प्रत्येक साझेदार का यह कर्तव्य है कि वह फर्म के अन्य साझेदारों को साझेदारी सम्बन्धी व्यवहारों का सही और उचित हिसाब दे। दूसरे साझेदारों द्वारा पूछे जाने पर उन्हें भली भांति हिसाब समझायें। हिसाब सम्बन्धी उचित रसीदें या वाउचर प्रस्तुत करें। (धारा 9)

(4) पूर्ण सूचना देने का कर्तव्य – फर्म के प्रत्येक साझेदार का यह भी कर्तव्य है कि वह अपने अन्य साझेदारों को ऐसी प्रत्येक बात की पूर्ण सूचना दे जिससे फर्म के हित प्रभावित होते हों अथवा फर्म से सम्बन्धित हो। साझेदारी फर्म से सम्बन्धित कोई भी सूचना अन्य साझेदारों से नहीं छुपानी चाहिये। (धारा 9)

(5) कपट से होने वाली हानियों की पूर्ति करने का कर्तव्य – यदि किसी साझेदार के कपट से फर्म को हानि होती है तो साझेदार का ऐसी हानि की पूर्ति करने का कर्तव्य होता है। साझेदार के इस दायित्व को किसी भी दशा में कम नहीं किया जा सकता और न ही ऐसी हानि को अन्य साझेदारों में बाँटा जा सकता है। (धारा 10)

(6) जानबूझ कर की गयी लापरवाही के कारण होने वाली हानि की पूर्ति करने का कर्तव्य – प्रत्येक साझेदार का यह कर्तव्य है कि फर्म के कारोबार के संचालन में उनके द्वारा जानबूझ कर की गई लापरवाही के कारण फर्म को हुई हानि की पूर्ति करे। ऐसी हानि की पूर्ति से कोई भी साझेदार मुक्त हो सकता है यदि सभी साझेदार सहमत हो जायें।(धारा 13)

(7) फर्म की हानियों में हिस्सा बांटने का कर्तव्य – फर्म का प्रत्येक साझेदार फर्म की हानियों को बराबर–बराबर वहन करने के लिये बाध्य है चाहे उसने फर्म में कितनी ही पूँजी लगाई हो।

(8) बिना पारिश्रमिक के कार्य करना – फर्म के प्रत्येक साझेदार का कर्तव्य है कि वह फर्म का कार्य बिना पारिश्रमिक लिये करे। (धारा 13 a)

(9) अपने कर्तव्यों का पूर्णलगन एवं परिश्रम से पालन करना – फर्म के प्रत्येक साझेदार का कर्तव्य है कि वह अपने कार्यो को पूरी लगन एवं परिश्रम से करे। उसे उतनी लगन व मेहनत से कार्य करना चाहिये जितना कि एक सामान्य बुद्वि का मनुष्य अपने निजी कार्य में करता है। (धारा 12 b)

(10) फर्म की सम्पत्ति का प्रयोग केवल फर्म के कार्यो के लिये ही करना – प्रत्येक साझेदार का यह कर्तव्य है कि वह फर्म की सम्पत्ति का प्रयोग केवल फर्म के संचालन के लिये ही करे, फर्म की सम्पत्ति का प्रयोग अपने निजी लाभ के लिये न करे। (धारा 15)

(11) व्यक्तिगत या गुप्त लाभों का हिसाब देना – यदि किसी साझेदार ने फर्म के कारोबार से या फर्म के नाम से या फर्म की सम्पत्ति से कोई व्यक्तिगत या गुप्त लाभ कमाया है, तो उसे ऐसे लाभ का हिसाब देना चाहिये और ऐसे लाभ से प्राप्त रकम का फर्म को भुगतान करना चाहिये। (धारा 16 a)

(12) फर्म से प्रतिस्पर्द्वा करने वाला कारोबार न करना – प्रत्येक साझेदार का यह कर्तव्य है कि वह कोई भी ऐसा व्यवसाय न करे जिसकी फर्म के साथ प्रतिस्पर्द्वा हो अर्थात फर्म के कारोबार जैसा कारोबार न करे। यदि कोई साझेदार ऐसा कारोबार करता है तो ऐसे कारोबार के लाभ को उसे फर्म को देना होगा। (धारा 16 b)

(13) अपना हित हस्तांतरित न करना (धारा 29) – कोई भी साझेदार अन्य सभी साझेदारों की सहमति के बीना फर्म में अपना हिस्सा किसी तृतीय पक्षकार को हस्तांतरित नही कर सकता है।

6.12 सारांश

साझेदारी कम से कम दो और अधिकतम 20 व्यक्तियों (बैंकिग व्यवसाय करने वाली फर्म में 10) के बीच के ठहराव है जो ऐसे कारोबार के लाभ को आपस में बाटते है जिसे वे सभी या उनमें से एक संचालित करता है। समस्त साझेदारों में अनुबन्ध करने की क्षमता होनी चाहिये। यदि कोई अवयस्क साझेदारी में सम्मिलित होना चाहता है तो सभी साझेदार सहमत होने पर उसे लाभ में हिस्से के लिए साझेदारी में सम्मिलित कर सकते है। सभी साझेदारों को फर्म के संचालन में भाग लेने, परामर्श देने, फर्म की पुस्तकों तक पहुँच रखने, लाभ में हिस्सा पाने, फर्म को दिये ऋण पर ब्याज पाने, साझेदारी सम्पत्तियों का प्रयोग करने तथा क्षतिपूर्ति कराने का अधिकार होता है।

सभी साझेदारो का कर्तव्य होता है कि वे फर्म के कारोबार को सामान्य लाभ के लिये चलाये, आपस मे सत्यनिष्ठ रहे, सही हिसाब व सूचना दे, कपट व लापरवाही के कारण होने वाली हानि की पूर्ति करे, बिना पारिश्रमिक के कार्य करें, फर्म का कार्य पूर्ण लगन, परिश्रम व ईमानदारी से करे। फर्म की सम्पत्ति क प्रयोग फर्म के कार्यों के लिए ही करें तथा फर्म से प्रतिस्पर्धा करने वाला कारोबार न करें।

6.13 शब्दावली

साझेदारी: यह उन व्यक्तियों के बीच का सम्बन्ध है जिन्होने किसी ऐसे कारोबार से उपार्जित लाभ को बांटने का ठहराव किया है जिसे वे सब अथवा उन सबकी ओर से एक संचालित करता है"।

निष्क्रिय साझेदार: ऐसे साझेदार जो साझेदारी फर्म के कारोबार के संचालन में सक्रिय रूप से भाग न लेकर, केवल अपनी पूँजी लगाकर लाभ हानि में भागी होता है निष्क्रिय साझेदार कहलाता है।

6.14 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न 'क'

निम्नलिखित कथनों में से कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत –

1. साझेदारी के लिए 'साझेदारी संलेख बनाना आवश्यक होता है।
2. भारतीय साझेदारी अधिनियम 1 अक्टूबर 1932 से प्रभाव में आया।
3. एक साझेदारी फर्म में (बैंकिग व्यवसाय के अतिरिक्त) अधिकतम साझेदार 20 हो सकते है।
4. जब तक ठहराव न हो, कोई भी साझेदार फर्म के कार्य के लिए पारिश्रमिक की मांग नहीं कर सकता।
5. एक साझेदारी फर्म एक विशेष कार्य के लिए नहीं बनाई जा सकती है।

बोध प्रश्न 'ख'

रिक्त स्थानों को भरिए –

1. यदि साझेदारों को पूँजी पर ब्याज देय है तो ऐसे ब्याज केवल ..... में से ही दिया जा सकता है।

2. बैंकिग व्यवसाय करने वाली साझेदारी फर्म में साझेदारों की अधिकतम संख्या ..... हो सकती है।
3. साझेदारी संलेख में सभी साझेदारों के हस्ताक्षर होने ..... है।
4. यदि किसी साझेदार ने फर्म को ऋण दिया है तो वह ..... प्रतिशत वार्षिक ब्याज पाने का अधिकारी है।
5. पृथक ठहराव के अभाव में प्रत्येक साझेदार फर्म द्वारा अर्जित लाभ में .... हिस्सा पाने का अधिकारी होता है।

6.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

(क)	1. गलत	2. सही	3. सही	4. सही	5. गलत
(ख)	1. लाभ	2. 10	3. आवश्यक	4. 6	5. बराबर

6.16 स्वपरख प्रश्न

1. साझेदारी की परिभाषा दीजिये तथा उसकी विशेषताएं बताइये?
2. अन्तर बताइये –
   अ – सहस्वामित्व एवं साझेदारी
   ब – संयुक्त हिन्दू परिवार एवं साझेदारी
   स – कम्पनी एवं साझेदारी
3. साझेदारों के अधिकारों एवं कर्तव्यों का वर्णन कीजिये?
4. क्या अवयस्क साझेदार बन सकता है? साझेदारी फर्म में अवयस्क की स्थिति स्पष्ट कीजिये?

6.17 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws: Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (p) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law: Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law: K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई 7 फर्म का रजिस्ट्रेशन तथा विघटन
(Registration and Dissolution of a Firm)

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 फर्म का रजिस्ट्रेशन या पंजीयन
7.2.1 रजिस्ट्रेशन की प्रक्रिया
7.2.2 परिवर्तन का रजिस्ट्रेशन
7.2.3 रजिस्ट्रेशन न कराने का प्रभाव
7.3 फर्म का विघटन
7.4 फर्म की विघटन की विधियां
7.5 फर्म के विघटन के परिणाम
7.6 फर्म के विघटन के पश्चात हिसाब का निपटारा
7.7 सारांश
7.8 शब्दावली
7.9 बोध प्रश्न
7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
7.11 स्वपरख प्रश्न
7.12 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- फर्म के रजिस्ट्रेशन की प्रक्रिया को समझ सकें।
- फर्म का रजिस्ट्रेशन न होने का प्रभाव समझ सकें।
- फर्म के विघटन तथा साझेदारी के विघटन का अन्तर समझ सकें।
- फर्म का विघटन किस प्रकार होता है, को समझ सकें।
- न्यायालय किन परिस्थतियों में किसी फर्म के विघटन का आदेश दे सकती है, को समझ सकें।

7.1 प्रस्तावना

इकाई 16 में साझेदारी का अर्थ उसकी विशेषताएं तथा साझेदारों के अधिकार व कर्तव्यों के बारे में पढ़ चुके है। इस इकाई में साझेदारी फर्म का रजिस्ट्रेशन कैसे होता है रजिस्ट्रेशन न होने का क्या प्रभाव पड़ता है तथा एक साझेदारी फर्म का विघटन किस प्रकार हो सकता हैं। इस सबका अध्ययन करेंगे।

7.2 साझेदारी फर्म का पंजीकरण या रजिस्ट्रेशन (धारा 56–59) Registration of Partnership Firm)

भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 से पूर्व साझेदारी फर्मो के रजिस्ट्रेशन की कोई वैधानिक व्यवस्था नहीं थी जिसके परिणामस्वरूप तीसरे पक्षकारों द्वारा साझेदारों के विरूद्व देयता के लिये दावा करना कठिन हो जाता था। परन्तु साझेदारी अधिनियम 1932 पारित हो जाने से साझेदारी फर्मो को पंजीयन की सुविधा उपलब्ध हो गयी। साझेदारी फर्मो का पंजीयन कराना अनिवार्य नहीं है अथार्त पंजीयन कराना स्वैच्छिक है। जो फर्मे पंजीयन नहीं कराती है उन्हें अनेकों कठिनाईयों व हानियों का सामना करना पड़ता है। इसलिये व्यवहारिक रूप में

सभी फर्मे पंजीयन करा लेती हैं। साझेदारी अधिनियम के अनुसार राज्य सरकारों को अधिकार दिया गया है कि वे अपने–अपने राज्यों में फर्मो की रजिस्ट्री करने के लिये रजिस्ट्रार की नियुक्ति कर सकती है और रजिस्ट्रारों के क्षेत्र भी उल्लिखित कर सकती है अर्थात एक रजिस्ट्रार पूरे राज्य के लिये अथवा भिन्न–भिन्न क्षेत्र के लिये एक से अधिक रजिस्ट्रार की नियुक्ति कर सकती है।

फर्मो के रजिस्ट्रार के कार्यालय में फर्म का नाम तथा आवश्यक सूचनाओं को 'फर्म के रजिस्टर' में अंकित करना पंजीयन कहलाता है। पंजीयन से फर्म की विद्यमानता को सरकारी मान्यता मिलती है। फर्म के निर्माण के समय अथवा फर्म अपने जीवन काल में कभी भी पंजीयन करा सकती है।

7.2.1 पंजीयन की प्रक्रिया (Procedure of Registration)

फर्म के पंजीयन की प्रक्रिया अत्यन्त सरल है। पंजीयन कराने के लिये निर्धारित प्रारूप में निर्धारित शुल्क सहित एक विवरण सम्बन्धित क्षेत्र के रजिस्ट्रार के कार्यालय में प्रस्तुत करना होता है इसे डाक द्वारा या स्वयं सुपुर्द किया जा सकता है। इस प्रारूप में निम्नलिखित सूचनायें होनी चाहिये :–

1) फर्म का नाम (ऐसा नाम न हो जिसके लिये प्रान्तीय सरकार से लिखित आज्ञा लेनी होती हो) यदि ऐसा नाम है तो पहले अनुमति लेनी होगी।
2) फर्म के कारोबार का स्थान या मुख्य स्थान का नाम व पता।
3) फर्म के कारोबार करने के अन्य स्थानों के नाम व पते (यदि फर्म मुख्य स्थान के अलावा अन्य स्थानों पर भी व्यापार संचालित करती हो)।
4) प्रत्येक साझेदार के फर्म में सम्मिलित होने की तिथि।
5) सभी साझेदारों के नाम तथा स्थायी पते।
6) फर्म का कार्यकाल (यदि फर्म की स्थापना निश्चित अवधि के लिये हो)।

पंजीयन आवेदन पत्र अर्थात उपरोक्त प्रारूप में सभी साझेदारों अथवा उनके अधिकृत प्रतिनिधि के हस्ताक्षर होने चाहिये। (प्रतिनिधि को विशेष रूप से इसी कार्य के लिये अधिकृत किया हो)। इसके अतिरिक्त विवरण में हस्ताक्षर करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को नियत ढंग से प्रमाणित करना होता है। (धारा 58)

धारा 59 के अनुसार, जब रजिस्ट्रार इस बारे में पूर्णरूप से सन्तुष्ट हो जाता है कि उपर्युक्त सभी व्यवस्थाओं का यथाविधि पालन कर लिया गया है, तो वह उक्त विवरणों की प्रविष्टि 'फर्मो के रजिस्टर' में कर लेता है और आवेदन पत्र को फाइल में लगा देगा। इस प्रकार फर्म की रजिस्ट्री हो जाती है। रजिस्ट्रार इसके पश्चात फर्म को पंजीयन का प्रमाण पत्र निर्गत कर देता है।

7.2.2 परिवर्तनों की रजिस्ट्री कराना (Registration of Alteration)

फर्म के पंजीयन होने के पश्चात उक्त विवरणों या सूचनाओं में कोई परिवर्तन होता है, तो उसकी सूचना नियत शुल्क के साथ रजिस्ट्रार के पास भेजनी चाहिये ताकि रजिस्ट्रार इन परिवर्तनों को रजिस्टर में अंकित कर दे। रजिस्ट्रार को निम्नलिखित परिवर्तनों की सूचना देनी आवश्यक होती है :–

i. जब फर्म का नाम बदल जाये।
ii. जब फर्म का मुख्य व्यापार का स्थान परिवर्तित हो जाये।
iii. जब फर्म किसी स्थान पर अपना कारोबार बन्द कर दे।
iv. जब फर्म किसी नये स्थान पर अपना कारोबार प्रारम्भ करे।
v. जब फर्म का कोई साझेदार अपना नाम अथवा स्थायी पता परिवर्तित कर दे।

vi. जब फर्म की बनावट में परिवर्तन हो, जैसे कोई नया साझेदार प्रवेश कर ले, कोई साझेदार पृथक हो जाये, जब साझेदार दिवालियेपन या मृत्यु के कारण साझेदार नहीं रहता।

vii. लाभों में हिस्से वाला अवयस्क साझेदार जब वयस्क हो जाता है तो उसके फर्म में साझेदार रहने या न रहने की सूचना।

viii. न्यायालय किसी भी रजिस्टर्ड फर्म के सम्बन्ध में फैसला देते समय रजिस्ट्रार को 'फर्मो के रजिस्टर' में निर्णय के अनुसार संशोधन करने का निर्देश दे सकता है और रजिस्ट्रार को न्यायालय के आदेशानुसार परिर्वतन कर सुधार करना।

यदि कोई व्यक्ति रजिस्ट्रार को मिथ्या या अपूर्ण या गलत विवरण भेजने का दोषी पाया जायेगा तो उसे धारा 70 के अनुसार तीन माह तक के कारावास या जुर्माना या दोनों से दंडित किया जा सकेगा।

7.2.3 रजिस्ट्री या पंजीयन न कराने का प्रभाव (Effects of Non-Registration)

जब कोई साझेदारी फर्म पंजीयन नहीं कराती है तो उसे कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है अर्थात फर्म व साझेदारों को निम्नलिखित असुविधायें होंगी –

(1) कोई भी साझेदार फर्म के विरूद्व तथा दूसरे साझेदारों के विरूद्व दीवानी न्यायालय में वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता – यदि किसी अपंजीकृत फर्म के साझेदारों में आपस में या किसी साझेदार तथा फर्म के मध्य अथवा किसी साझेदार व भूतपूर्व साझेदार के मध्य साझेदारी संलेख के अर्न्तगत या साझेदारी अधिनियम के अनुसार विवाद उत्पन्न हो जाता है तो ऐसा साझेदार दिवानी न्यायालय में वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता है। परन्तु एक साझेदार दूसरे साझेदार के विरूद्व फौजदारी न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(2) फर्म तीसरे पक्षकारों के विरूद्व दीवानी न्यायालय में वाद प्रस्तुत नहीं कर सकती – एक अपंजीकृतफर्म किसी अनुबन्ध के अर्न्तगत उत्पन्न होने वाले अधिकारों का प्रर्वतन दीवानी न्यायालय द्वारा नहीं करा सकती है अर्थात फर्म किसी तीसरे पक्ष के विरूद्व दीवानी न्यायालय में दावा प्रस्तुत नहीं कर सकती है। परन्तु ऐसे तृतीय पक्षकारों को अधिकार होता है कि वे फर्म के विरूद्व तथा साझेदारों के विरूद्व वाद प्रस्तुत कर सकते हैं।

(3) देय धन में से प्राप्य धन काटने का अधिकार न होना – एक अपंजीकृत फर्म ने 'राम' को 40000 रू0 देने हैं तथा उधार माल बिक्री के 10000 रू0 लेने हैं राम 40 हजार वसूल करने के लिये दीवानी न्यायालय में मुकदमा दायर करता है यहाँ पर फर्म 40 हजार रू0 में से अपने 10 हजार रू0 नहीं घटा सकती है अर्थात उसे 40 हजार रू0 देने के लिये बाध्य किया जा सकता है।

(4) कोई भी अन्य कार्यवाही करने का अधिकार नहीं – एक अपंजीकृत फर्म को अनुबन्ध के अधीन किसी भी प्रकार के अधिकार को प्राप्त करने के लिये कोई कार्यवाही करने का अधिकार नहीं होता है।

अपवाद – बिना पंजीकृत फर्म के निम्न अधिकारों पर प्रभाव नहीं –

1. तीसरे पक्षकार का फर्म या साझेदारो के विरूद्व मुकदमा चलाने का अधिकार ।
2. साझेदारों का फर्म के विघटन, विघटित फर्म के हिसाब मांगने के लिये वाद प्रस्तुत करने का अधिकार।

3. किसी सरकारी प्रापक के दिवालिया साझेदार की सम्पत्ति को बेचने का अधिकार ।
4. किसी ऐसी फर्म या उसके साझेदारों के अधिकार जिनके कारोबार का स्थान भारतवर्ष में नहीं है।
5. ऐसे दावे जिनकी राशि 100 रू0 से अधिक न हो।

7.3 फर्म की समाप्ति या विघटन (Winding up or Dissolution of Firm)

अधिनियम के अनुसार 'फर्म की समाप्ति' और 'साझेदारी की समाप्ति' में अन्तर है।

फर्म की समाप्ति – धारा 39 के अनुसार, "फर्म की समाप्ति उस समय होती है जब सभी साझेदारों का सम्बन्ध एक दूसरे से टूट जाता है"।

साझेदारी की समाप्ति – साझेदारी की समाप्ति उस समय होती है जब कोई एक या अधिक साझेदार फर्म से पृथ्क हो जाता है । ऐसी दशा में उसका सम्बन्ध दूसरे साझेदार से टूट जाता है लेकिन शेष साझेदार पुराने फर्म के नाम से ही फर्म को पुनः निर्मित करके व्यापार करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि फर्म का विघटन होने पर साझेदारी भी अनिवार्यतः समाप्त हो जाती है परन्तु साझेदारी का विघटन होने पर फर्म का विघटन होना आवश्यक नहीं है।

उदाहरण के लिये, 'अ' 'ब' 'स' तथा 'द' किसी फर्म के साझेदार हैं। 'अ' (मृत्यु, दिवालिया, रिटायर होने के कारण) फर्म का साझेदार नहीं रहता है तो विपरीत अनुबन्ध न होने पर साझेदारी तथा साझेदारी फर्म दोनों ही समाप्त हो जायेंगे। परन्तु साझेदारों ने यह अनुबन्ध कर रखा हो कि किसी साझेदार के न रहने पर शेष साझेदार व्यापार चालू रख सकते हैं तो ऐसी स्थिति में 'अ' के न रहने पर 'साझेदारी' तो समाप्त हो जायेगी परन्तु 'साझेदारी फर्म' समाप्त नहीं होगी क्योंकि शेष साझेदार फर्म के नाम से ही कारोबार चालू रख सकते हैं।

7.4 फर्म के विघटन की विधियाँ (Modes of Dissolution of Firm)

फर्म की समाप्ति निम्नलिखित किसी भी एक तरीके या परिस्थिति में हो सकती है :–

(1) ठहराव द्वारा समाप्ति – धारा (40) जिस प्रकार साझेदारी की स्थापना साझेदारों के आपसी ठहराव द्वारा होती है उसी प्रकार जब सभी साझेदार साझेदारी फर्म को समाप्त करने के लिये सहमत हो जाते हैं अर्थात साझेदारी फर्म की समाप्ति का ठहराव कर लेते हैं तभी साझेदारी फर्म समाप्त हो जाती है।

(2) अनिवार्य समाप्ति – धारा (41) के अनुसार, निम्न दशाओं में साझेदारी फर्म अनिवार्य रूप से समाप्त हो जाती है :–

(अ) यदि किसी फर्म के सभी साझेदार या एक को छोड़कर अन्य सभी साझेदार दिवालिया घोषित कर दिये जाये तो ऐसी फर्म का अनिवार्य रूप से विघटन हो जाता है।

(ब) जब कोई ऐसी घटना घटित हो गयी हो जिसके कारण साझेदारी फर्म के कारोबार का संचालन या कारोबार का चालू रखना अवैधानिक हो जाये तो ऐसी स्थिति में साझेदारी फर्म का अनिवार्य रूप से विघटन हो जाता है।

उदाहरण के लिये, फर्म जिस वस्तु का व्यवसाय कर रही हो उसके करने पर निषेध हो जाये तो ऐसी दशा में फर्म की अनिवार्य समाप्ति हो जाती है।

(3) कुछ आकस्मिकताओं के घटित होने पर –

धारा 42 के

i. यदि साझेदारी फर्म की स्थापना निश्चित अवधि के लिये की गई है तथा वह निश्चित अवधि बीत जाने पर।
ii. यदि साझेदारी फर्म की स्थापना किसी विशिष्ट कार्य के लिये की गई हो और वह विशिष्ट कार्य पूर्ण हो जाये।
iii. किसी साझेदार की मृत्यु हो जाने पर।
iv. किसी साझेदार के दिवालिया घोषित हो जाने पर।

(4) ऐच्छिक साझेदारी की दशा में सूचना द्वारा समाप्ति – जब साझेदारी ऐच्छिक होती है तो कोई भी साझेदार अन्य सभी दूसरे साझेदारों को फर्म समाप्त करने की अपनी इच्छा की लिखित सूचना दे कर फर्म को समाप्त कर सकता है। सूचना में दी गई तिथि से फर्म समाप्त मानी जायेगी। यदि सूचना में तिथि नहीं दी गई हो तो सूचना के संवहन के तिथि से फर्म समाप्त हुई मानी जायेगी।

(5) न्यायालय द्वारा समाप्ति – किसी साझेदारी फर्म का न्यायालय द्वारा विघटन कराने की आवश्यकता तब पड़ती है जब फर्म के विघटन के सम्बन्ध में सभी साझेदारों में सहमति न बने अथवा साझेदारों के मध्य मतभेद हो जायें। ऐसी स्थिति में कोई भी साझेदार न्यायालय में फर्म की समाप्ति हेतु वाद प्रस्तुत कर सकता है। न्यायालय प्रत्येक मामले की सभी परिस्थितियों को ध्यान में रख कर फर्म का विघटन किये जाने या न किये जाने का आदेश दे सकता है।

धारा 44 के अनुसार, किसी साझेदार द्वारा मुकदमा दायर करने पर न्यायालय निम्नलिखित आधारों में से किसी भी आधार पर फर्म की समाप्ति का आदेश दे सकता है :–

(i) किसी साझेदार के पागल हो जाने पर – यदि किसी फर्म में कोई साझेदार पागल हो जाता है तो फर्म का कोई भी साझेदार अथवा पागल साझेदार का निकट सम्बन्धी या मित्र भी फर्म के विघटन के लिये वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(ii) किसी साझेदार के स्थायी रूप से अयोग्य हो जाने पर – जब फर्म का कोई साझेदार अपने कर्तव्यों को पूरा करने में स्थायी रूप से अक्षम या अयोग्य हो जाता है तो कोई अन्य साझेदार फर्म की समाप्ति के लिये न्यायालय में मुकदमा दायर कर सकता है। अयोग्यता शारीरिक हो सकती है जैसे– किसी साझेदार का अन्धा हो जाना या किसी साझेदार को आजीवन कारावास की सजा हो जाना।

(iii) किसी साझेदार के दुराचरण के आधार पर – जब फर्म का कोई साझेदार दुराचरण का दोषी होता है जिससे फर्म के व्यवसाय के संचालन पर विपरीत प्रभाव पड़ने की आशंका हो अथवा साझेदार के दुराचरण के कारण साझेदारों को कारोबार करना उचित रूप से असम्भव लग रहा हो और फर्म के व्यापार में हानि की आशंका हो तो किसी अन्य साझेदार द्वारा न्यायालय में वाद प्रस्तुत करने पर न्यायालय फर्म के समाप्ति का आदेश दे सकता है।

(iv) किसी साझेदार द्वारा लगातार साझेदारी ठहराव भंग करने के आधार पर – जब कोई साझेदार जानबूझ कर या लगातार साझेदारी अनुबन्ध का खण्डन करता है अथवा ऐसा आचरण करता है जिससे दूसरे साझेदारों को साझेदारी के कारोबार को चलाना असम्भव लगने लगता है तो कोई भी अन्य साझेदार न्यायालय में

मुकदमा दायर कर सकता है और न्यायालय फर्म के विघटन का आदेश दे सकता है।

(v) किसी साझेदार द्वारा अपना हिस्सा हस्तांतरण करने पर – यदि कोई भी साझेदार फर्म में अपने हिस्से को किसी अन्य व्यक्ति को हस्तांतरण कर देता है तो कोई भी अन्य साझेदार न्यायालय में फर्म को समाप्त करने हेतु वाद दायर कर सकता है।

(vi) किसी साझेदार की कुरकी होने पर – यदि फर्म के किसी साझेदार पर बकाया राशि की वसूली के लिये कुरकी का आदेश हुआ हो और ऐसा साझेदार कुरकी के लिये फर्म में अपने हिस्से को बेचने की अनुमति दे देता है तो ऐसी स्थिति में कोई भी साझेदार फर्म के विघटन के लिये न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर सकता है।

(vii) फर्म को लगातार हानि होने पर – यदि किसी फर्म की स्थिति ऐसी हो जाये कि उसे लगातार हानि ही हो रही है, और लाभ होने की आशंका न हो तो कोई भी साझेदार फर्म को समाप्त करने के लिये न्यायालय में मुकदमा दायर कर सकता है।

(viii) अन्य न्यायोचित आधार पर – यदि कोई साझेदार फर्म के विघटन के लिये वाद प्रस्तुत करता है तो न्यायालय उपरोक्त आधारों के अलावा ऐसे आधार पर भी फर्म के समापन का आदेश दे सकता है जो न्यायालय को न्यायोचित या न्यायपूर्ण लगे।

7.5 फर्म के विघटन के परिणाम (Consequences of Dissolution of Firm)

1. फर्म के विघटन के बाद साझेदारों के पूर्ववत् दायित्व (धारा 45)

फर्म का विघटन हो जाने के बाद, उसके साझेदार फर्म के कार्यो के लिये तब तक उत्तरदायी होंगे जब तक कि विघटन की सार्वजनिक सूचना न दी जाये। विघटन की सार्वजनिक सूचना फर्म द्वारा या किसी साझेदार द्वारा दी जा सकती है। रजिस्टर्ड फर्म की दशा में यह सार्वजनिक सूचना फर्मों के रजिस्ट्रार को , सरकारी राजपत्र में और उस जिले में जहाँ फर्म के कारोबार का मुख्य स्थान हो कम से कम एक स्थानीय भाषा वाले समाचार पत्र में भी दी जानी चाहिये।

2. समापन के प्रयोजनार्थ साझेदारो का पूर्ववत प्राधिकार (धारा 47)

निम्नलिखित दो कार्यो के लिये जिन्हें समापन के बाद करना आवश्यक होता है, साझेदारों का फर्म को बाध्य करने तथा साझेदारों के पारस्परिक अधिकार व कर्तव्य पूर्ववत रहते है–

अ – फर्म के कारोबार को बन्द करना, जिसके लिये सम्पत्ति का निपटारा, देनदारों से रकम की वसूली और लेनदारो को भुगतान आदि करना।

ब – उन व्यवहारों या अनुबन्धों को पूरा करना जो विघटन के समय अधूरे हो जैसे – विघटन से पूर्व प्राप्त आदेशानुसार माल की सुपुर्दगी लेने और उसके मूल्य का भुगतान करना।

3. साझेदारों का समापन को लागू कराने का अधिकार (धारा 46)

फर्म का समापन हो जाने पर प्रत्येक साझेदार या उसके प्रतिनिधि को यह अधिकार है कि वह फर्म की सम्पत्तियों को बेच कर सर्वप्रथम फर्म के ऋणों तथा

दायित्वों का भुगतान करे तथा अवशेष बची हुई राशि को साझेदारों और उनके प्रतिनिधियों में उनके अधिकारों के अनुपात में वितरित करायें।

4. व्यक्तिगत लाभों को बाटने का दायित्व (धारा 50)

फर्म के विघटन के पश्चात कारोबार के समापन की प्रक्रिया चालू रहती है इस अवधि में प्रत्येक साझेदार का यह कर्तव्य होता है कि वह फर्म से सम्बन्धित व्यवहारों से कोई व्यक्तिगत लाभ न उठाये। यदि किसी साझेदार ने व्यक्तिगत लाभ कमाया है तो उसे ऐसे लाभ का फर्म को हिसाब देना तथा अन्य साझेदारो के साथ लाभ का बटवारा करना होगा।

5. प्रीमियम वापस मागने का अधिकार (धारा 51)

यदि किसी साझेदार ने निश्चित अवधि के लिये फर्म में सम्मिलित होते समय कोई प्रीमियम दिया है और फर्म उक्त अवधि के समाप्त होने से पूर्व ही विघटित हो जाती है तो ऐसे में साझेदार को प्रीमियम की आनुपातिक रकम वापस पाने का अधिकार है निम्न परिस्थितियों मे प्रीमियम वापस पाने का अधिकार नहीं होगा –

अ – जब फर्म निश्चित अवधि के लिये न बनी हो।

ब – जब फर्म का विघटन किसी साझेदार की मृत्यु के कारण हुआ हो।

स – जब फर्म का विघटन ऐसे साझेदार के दुराचरण के कारण हुआ हो।

द – जब फर्म का विघटन सभी साझेदारों के बीच अनुबन्ध द्वारा हुआ हो जिसमे प्रीमियम वापसी की व्यवस्था न की गई हो।

6. कपट आदि के आधार पर साझेदारी अनुबन्ध को खंडित किये जाने पर साझेदारों के अधिकार (धारा 52)

एक सामान्य अनुबन्ध की भॉति साझेदारी अनुबन्ध में भी किसी साझेदार के साथ कपट या मिथ्यावर्णन किया जा सकता है, जिस साझेदार के साथ कपट आदि किया गया है उसे क्षतिपूर्ति के लिये दावा करने का अधिकार के अलावा निम्न अधिकार भी प्राप्त होते है–

अ – ऐसे साझेदार को फर्म के ऋणों को चुकाने के बाद शेष सम्पत्ति पर ग्रहणाधिकार (Lien) प्राप्त होता है।

ब – यदि उसने फर्म के ऋणों का भुगतान किया है तो वह ऐसे भुगतानों के लिये फर्म के लेनदार की स्थिति में आने का अधिकारी है।

स – उसने फर्म के जितने ऋणों का भुगतान किया है, उन सबके लिये दोषी साझेदार से क्षतिपूर्ति प्राप्त करने का अधिकार होता है।

7. विघटन के दौरान प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार (धारा 53)

यदि साझेदारों के बीच कोई विपरीत अनुबन्ध न हुआ हो तो प्रत्येक साझेदार या उसका प्रतिनिधि को अन्य साझेदारों पर यह प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार होता है कि वे तब तक फर्म के नाम से न तो कोई व्यवसाय करे और न ही फर्म की सम्पत्ति का प्रयोग स्वयं के लाभ के लिये करें, जब तक कि फर्म के कारोबार का पूर्ण रूप से समापन न हो जायें। ऐसा प्रतिबन्ध उस साझेदार के विरूद्व नही लगाया जा सकता है जिसने फर्म की ख्याति खरीदी हो।

8. भविष्य के लिये प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार (धारा 54)

साझेदार विघटन की दशा में ऐसा ठहराव कर प्रतिबन्ध लगा सकते है कि कोई भी साझेदार भविष्य में निश्चित अवधि या निश्चित सीमा में फर्म के समान व्यापार नही करेगे।

7.6 विघटन के पश्चात हिसाब किताब के निपटारे की विधि (Modes of Settlement of Account after Dissolution)

फर्म के विघटन के पश्चात साझेदारों के बीच हिसाब किताब का निपटारा 'साझेदारी संलेख' में दी गई व्यवस्थाओं के अनुसार किया जाता है। परन्तु साझेदारी संलेख में कोई व्यवस्था नहीं दी गई है अर्थात इस स्थिति में निपटारे के सम्बन्ध में साझेदारों ने आपस में कोई अनुबन्ध नहीं किया हो तो साझेदारी अधिनियम की धारा 48 के अनुसार हिसाब किताब के निपटारे के सम्बन्ध में निम्न नियम लागू होंगे –

(1) फर्म की हानियों की पूर्ति सर्वप्रथम लाभों में से की जायेगी, लाभ अप्रर्याप्त होने पर साझेदारों की पूँजी में से की जायेगी और फिर भी हानियाँ शेष रह जाये तो साझेदारों द्वारा व्यक्तिगत रूप से उसी अनुपात में पूरा किया जायेगा जिस अनुपात में लाभों का बटवारे करने के अधिकारी थे।

(2) फर्म की सम्पत्ति को बेचकर जो धनराशि उपलब्ध होगी उसका उपयोग निम्न रीति या क्रम से किया जायेगा।

(अ) तीसरे पक्षकारों द्वारा फर्म को दिये गये ऋणों या अन्य का भुगतान करने में।

(ब) फर्म के प्रत्येक साझेदार द्वारा पूँजी के अतिरिक्त फर्म को जो ऋण दिया है तथा जो अभी भी बकाया है उसका आनुपातिक रूप से भुगतान करने में।

(स) फर्म के प्रत्येक साझेदार को उसकी शेष पूँजी का आनुपातिक रूप से भुगतान करने में।

(द) उपरोक्त भुगतानों के बाद भी यदि फर्म के पास धन शेष रहता है तो उसे लाभ–विभाजन के अनुपात में साझेदारों को बांट देना।

फर्म के एवं साझेदारों के ऋणों का भुगतान –

यदि फर्म द्वारा लिये गये ऋण तथा साझेदारों द्वारा अपनी व्यक्तिगत उपयोग हेतु लिये गये ऋण संयुक्त रूप से लिये गये हो और बकाया हो तो उनके भुगतान के सम्बन्ध में धारा 49 के नियम निम्न प्रकार लागू होंगेः–

(1) फर्म की सम्पत्ति बेचने से मिली राशि का प्रयोग सर्वप्रथम फर्म के ऋण चुकाने में किया जायेगा तथा शेष बची राशि साझेदारों के हिस्से के अनुपात में उनके व्यक्तिगत ऋणो को चुकाने में किया जायेगा। जिस साझेदार ने व्यक्तिगत ऋण नहीं लिया है उसे धनराशि का भुगतान कर दिया जायेगा।

(2) यदि साझेदार की व्यक्तिगत सम्पत्ति का प्रयोग ऋण चुकाने के लिये करना हो तो पहले साझेदार के व्यक्तिगत ऋण चुकाने में तथा बाद में फर्म के ऋणों के लिये धनराशि का प्रयोग किया जाता है।

7.7 सारांश

साझेदारी फर्म का रजिस्ट्रेशन कराना अनिवार्य नहीं है अर्थात रजिस्ट्रेशन स्वैच्छिक है। साझेदारी फर्म अपने जीवन काल में कभी भी रजिस्ट्रेशन करवा सकती है। रजिस्ट्रेशन के लिए निर्धारित प्रारूप में निर्धारित शुल्क सहित एक

विवरण रजिस्ट्रार के कार्यालय में जमा करना होता है जिसमें सभी साझेदारों या उनके अधिकृत प्रतिनिधि के हस्ताक्षर होते है। जब रजिस्ट्रार पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो जाता है कि सभी व्यवस्थाओं की पूर्ति हो गयी है तो वह फर्म का रजिस्ट्रेशन कर प्रमाण पत्र निर्गत कर देता है। रजिस्ट्रेशन के पश्चात यदि फर्म के नाम, स्थान, बनावट आदि में परिवर्तन होते है तो उन परिवर्तनों का भी रजिस्ट्रेशन कराना होता है। यदि फर्म का रजिस्ट्रेशन न हो तो कोई भी साझेदार फर्म के विरूद्व, साझेदारों के विरूद्व तथा तृतीय पक्षकार के विरूद्व न्यायालय में वाद प्रस्तुत नहीं कर सकता।

जब सभी साझेदारों का सम्बन्ध एक दूसरे से टूट जाता है तो उसे फर्म का विघटन कहते है और यदि एक या अधिक साझेदार पृथक हो जाते है तो उसे साझेदारी का विघटन कहते है। साझेदारी के विघटन में शेष साझेदार फर्म के व्यवसाय को चलाते रहते है। फर्म का विघटन अनेक तरीकों से हो सकता है जैसे – सभी साझेदार आपस में ठहराव कर फर्म का समापन कर सकते है, यदि एक को छोडकर सभी दिवालिया हो जाए तो फर्म का अनिवार्य समापन हो जाता है, यदि फर्म निश्चित अवधि या निश्चित कार्य के लिए बनी हो तो निश्चित अवधि के समाप्त होने पर या निश्चित कार्य के पूर्ण होने पर फर्म का विघटन हो सकता है। एच्छिक साझेदारी में विघटन की सूचना देने पर फर्म विघटित हो जाती है। फर्म की किसी साझेदार द्वारा न्यायालय में फर्म को विघटित करने के लिए मुकदमा दायर किया जाए तो न्यायालय उचित कारण होने पर फर्म के विघटन का आदेश दे सकती है।

7.8 शब्दावली

फर्म की समाप्ति – फर्म की समाप्ति उस समय होती है जब सभी साझेदारों का सम्बन्ध एक दूसरे से टूट जाता है।

साझेदारी की समाप्ति – साझेदारी की समाप्ति उस समय होती है जब कोई एक या अधिक साझेदार फर्म से पृथ्क हो जाता है ।

7.9 बोध प्रश्न

बोध प्रश्न 'क'

निम्नलिखित कथन सत्य है अथवा असत्य –

1. साझेदारी अधिनियम के अन्तर्गत साझेदारी फर्म का रजिस्ट्रेशन अनिवार्य है।
2. फर्म के लेनदार द्वारा आवेदन करने पर न्यायालय फर्म का विघटन के आदेश दे सकती है।
3. साझेदारी फर्म का रजिस्ट्रेशन केवल फर्म के निर्माण के समय हो सकता है।
4. फर्म के रजिस्ट्रेशन आवेदन पत्र पर सभी साझेदारों के ही हस्ताक्षर होने आवश्यक है।
5. फर्म का रजिस्ट्रेशन न होने पर भी तीसरा पक्षकार फर्म या साझेदारों के विरूद्व मुकदमा चला सकता है।
6. निश्चित समय के लिए स्थापित फर्म का अनिवार्य विधटन हो जाता है यदि निश्चित समय समाप्त हो जाए।

7. एच्छिक साझेदारी का विघटन केवल विघटन की सूचना देकर किया जा सकता है।

बोध प्रश्न 'ख'

रिक्त स्थानों के भरिए –

1. साझेदारी फर्म का रजिस्ट्रेशन कराना ..... है।
2. एक साझेदार को छोड़कर अन्य सभी साझेदारों के दिवालिया धोषित होने पर फर्म का ..... रूप से विघटन हो जाता है।
3. किसी ..... द्वारा न्यायालय में फर्म के विघटन हेतु वाद प्रस्तुत किया जा सकता है।
4. साझेदारी फर्म का रजिस्ट्रेशन फर्म के स्थापना के बाद भी ..... जा सकता है।
5. फर्म जिसका रजिस्ट्रेशन नहीं हुआ है, उसका साझेदार दूसरे साझेदार के विरूद्व वाद प्रस्तुत ..... कर सकता है।

7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

'क'

1. असत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. असत्य 5. सत्य 6. असत्य 7. सत्य

'ख'

1. स्वैच्छिक 2. अनिवार्य 3. साझेदार 4. कराया 5. नहीं

7.11 स्वपरख प्रश्न

1. साझेदारी फर्म के रजिस्ट्रेशन की प्रक्रिया समझाइयें।
2. क्या फर्म का रजिस्ट्रेशन कराना आवश्यक है? किसी फर्म का रजिस्ट्रेशन न कराने के क्या प्रभाव होते है?
3. फर्म के विघटन और साझेदारी के विघटन में क्या अन्तर है? उन परिस्थितियों का वर्णन कीजिए जिसके अन्तर्गत न्यायालय साझेदारी फर्म का विघटन कर सकता है?
4. साझेदारी फर्म के विघटन के विभिन्न तरीकों का वर्णन कीजिए।
5. साझेदारी फर्म के विघटन के बाद हिसाब किताब के निपटारें के नियमों का वर्णन कीजिए।

7.12 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws: Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (p) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law: Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law: K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई 8 सीमित दायित्व साझेदारी अधिनियम (Limited Liability Partnership Act)

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 सीमित दायित्व साझेदारी का स्वभाव
8.3 सीमित दायित्व साझेदारी का समामेलन
8.4 साझेदारों के आपसी सम्बन्ध (अधिकार, कर्तव्य)
8.5 सीमित दायित्व साझेदारी तथा साझेदारों के दायित्व
8.6 अंशदान
8.7 वित्तीय प्रकटीकरण
8.8 सीमित दायित्व साझेदारी के कामकाज की जांच
8.9 फर्म का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन
8.10 प्राइवेट कम्पनी का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन
8.11 असूचीबद्ध सार्वजनीक कम्पनी का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन
8.12 सीमित दायित्व साझेदारी का समापन
8.13 सारांश
8.14 शब्दावली
8.15 बोध प्रश्न
8.16 बोध प्रश्नों के उत्तर
8.17 स्वपरख प्रश्न
8.18 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- सीमित दायित्व तथा असीमित दायित्व का अर्थ समझ सके।
- सीमित दायित्व साझेदारी क्या होती है, इसे समझ सकें।
- सीमित दायित्व साझेदारी का स्वभाव समझ सकें।
- सीमित दायित्व साझेदारी के साझेदारों के अधिकार व कर्तव्य समझ सकें।

8.1 प्रस्तावना

भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 के अनुसार साझेदारी में प्रत्येक साझेदार का दायित्व असीमित होता है और प्रत्येक साझेदार साझेदारी फर्म के सभी ऋणों के भुगतान के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है। प्रत्येक साझेदार, फर्म में साझेदार बने रहने के समय तक के फर्म के कार्यो के सम्बन्ध में तीसरे पक्षकारों के प्रति अन्य सभी साझेदारों के साथ सयुक्त रूप से और व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है। साझेदारों की देयता असीमित होने के कारण ही फर्म का लेनदार अपनी कर्ज की पूरी रकम की वसूली के लिए सभी साझेदारों पर एक साथ अथवा प्रत्येक साझेदार पर अलग अलग कानूनी कार्यवाही कर सकता है। दूसरे शब्दों में फर्म का लेनदार अपने कर्ज की सम्पूर्ण रकम एक साझेदार से भी वसूल कर सकता हैं। इस प्रकार उत्तरदायी साझेदार अन्य साझेदारों से उनके हिस्से की रकम कि मांग कर सकता है इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 सीमित दायित्व साझेदारी को मान्यता नहीं

देता परन्तु 2008 में सीमित दायित्व साझेदारी अधिनियम के बनने से सीमित दायित्व साझेदारी को मान्यता मिली है, इससे पेशेवरों जैसे – चार्टड एकाउन्टेण्ट, कम्पनी सचिवों तथा व्यवसायियों को ऐसी साझेदारी बनाने का अवसर मिल गया है जिसमें साझेदारों की संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है तथा साझेदार का दायित्व भी सीमित है। इस इकाई में आप सीमित दायित्व साझेदारी के सम्बन्ध में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

8.2 सीमित दायित्व साझेदारी का स्वभाव (Nature of Limited Liability Partnership)

सीमित दायित्व साझेदारी एक निगमित निकाय है जो कि सीमित दायित्व साझेदारी अधिनियम 2008 के अन्तर्गत निर्मित एवं समामेलित होती है जिसका पृथक वैधानिक अस्तित्व होता है अर्थात सीमित दायित्व साझेदारी का अपने साझेदारों से पृथक वैधानिक अस्तित्व होता है इसलिए सीमित दायित्व साझेदारी अपने साझेदारों से किसी भी प्रकार का अनुबन्ध कर सकती है और अपने साझेदारों के प्रति वाद प्रस्तुत कर सकती है। पृथक अस्तित्व के कारण ही सीमित दायित्व साझेदारी तथा इसके साझेदारों की सम्पत्ति पृथक पृथक मानी जाती है। सीमित दायित्व साझेदारी अपने नाम में सम्पत्ति क्रय कर सकती है, रख सकती है, बेच सकती है और साझेदार भी सीमित दायित्व साझेदारी पर वाद प्रस्तुत कर सकते है।

सीमित दायित्व साझेदारी का स्थायी अस्तित्व होता है जिससे सीमित दायित्व साझेदारी में किसी भी परिवर्तन का इस साझेदारी के अस्तित्व, अधिकार व दायित्व पर प्रभाव नहीं पड़ता है । दूसरें शब्दों में सीमित दायित्व साझेदारी का कोई साझेदार साझेदारी छोड़ता है, अथवा मर जाता है अथवा दिवालिया या पागल हो जाता है तो भी सीमित दायित्व साझेदारी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। सीमित दायित्व साझेदारी में साझेदारी अधिनियम 1932 के प्रावधान लागू नहीं होते है। सीमित दायित्व साझेदारी में कोई भी व्यक्ति अथवा निगमित निकाय साझेदार बन सकता है, परन्तु कोई ऐसा व्यक्ति इसका साझेदार बनने के योग्य नहीं होगा–

अ – यदि उसे न्यायालय अस्ववस्थ मस्तिष्क का मानता है।

ब – यदि वह दिवालिया घोषित हो।

स – यदि उसने दिवालिया घोषित करने हेतु आवेदन किया हो और आवेदन अभी विचाराधीन हो ।

प्रत्येक सीमित दायित्व साझेदारी में कम से कम दो साझेदार होने आवश्यक है। यदि सीमित दायित्व साझेदारी में किसी समय साझेदारों की संख्या दो से कम अर्थात केवल एक ही साझेदार रह जाए और ऐसा एकल साझेदार जानकारी रखते हुए भी साझेदारी के व्यवसाय को छः माह से अधिक चालू रखता है तो ऐसे समय में सीमित दायित्व साझेदारी से सम्बन्धि सभी दायित्वों के लिए वह एक एकल साझेदार व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होगा।

सीमित दायित्व साझेदारी में कम से कम दो व्यक्ति नामित साझेदार होंगे जिनमें से एक भारत का निवासी होगा। भारत में निवासी का आशय एक ऐसे व्यक्ति से है जो पूर्व के एक वर्ष में कम से कम 182 दिन भारत में रहा हो। यदि सीमित दायित्व साझेदारी में सभी साझेदार निगमित निकाय के रूप में हो या एक या अधिक साझेदार व्यक्ति के रूप में और अन्य निगमित निकाय के रूप में साझेदार हो तो ऐसी दशा में कोई दो व्यक्तिगत साझेदार अथवा निगमित निकाय

का नामाकिंत प्रतिनिधि सीमित दायित्व साझेदारी के नामित साझेदार बन सकते है।

यदि समामेलन के दस्तावेज में यह उल्लेखित हो कि नामित साझेदार कौन होगा तो तद्नुसार ही ऐसा व्यक्ति समामेलन पर नामित साझेदार बनेगा अर्थात सीमित दायित्व साझेदारी के ठहराव के अनुसार नामित साझेदार बनेंगे तथा हटाये जायेंगे। एक व्यक्ति जिसने सीमित दायित्व साझेदारी में नामित साझेदार बनने के लिए अपनी सहमति निर्धारित प्रारूप में नहीं दी हो तो ऐसा व्यक्ति नामित साझेदार नहीं बन सकता। प्रत्येक सीमित दायित्व साझेदारी को ऐसे प्रत्येक व्यक्ति का विवरण रजिस्ट्रार के पास निर्धारित प्रारूप में निर्धारित तरीकें से भेजना होता है जिसने नामित साझेदार बनने की सहमति दी हो। ऐसा विवरण उसकी नियुक्ति के 30 दिन के अन्दर भेजना होता है।

प्रत्येक नामित साझेदार केन्द्रीय सरकार से एक नामित साझेदार परिचय नम्बर प्राप्त करेगा। नामित साझेदार का दायित्व है कि वह सीमित दायित्व साझेदारी द्वारा अधिनियम के प्रावधानों की पूर्ति हेतु जो कार्य करने होते है उन्हे करे जैसे – दस्तावेज प्रस्तुत करना, अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत विवरण प्रस्तुत करना तथा अन्य विशिष्ट कार्य जो सीमित दायित्व साझेदारी ठहराव में दिये है। सीमित दायित्व साझेदारी पर प्रावधानों के विपरीत कार्य करने पर लगाये गये दण्ड के लिए नामित साझेदारी उत्तरदायी होगें।

यदि नामित साझेदार का स्थान रिक्त हो तो सीमित दायित्व साझेदारी को ऐसे रिक्त होने की तिथि से 30 दिनों के अन्दर नया नामित साझेदार नियुक्त करना होता है। अधिनियम के प्रावधान के अनुसार यदि नामित साझेदार की नियुक्ति नहीं होती है या किसी समय केवल एक ही नामित साझेदार रह गया हो तो ऐसी दशा में सभी साझेदार नामित साझेदार माने जायेगें। यदि सीमित दायित्व साझेदारी नामित साझेदार के सम्बन्ध में प्रावधान का उल्लधन करती है तो सीमित दायित्व साझेदारी तथा उसके प्रत्येक साझेदार पर कम से कम दस हजार रू तथा अधिकतम पांच लाख रू तक का अर्थदण्ड लगाया जा सकता है।

8.3 सीमित दायित्व साझेदारी का समामेलन (Incorporation of Limited Liability Partnership)

धारा 11 (1) अनुसार, एक सीमित दायित्व साझेदारी के समामेलन हेतु –

(अ) दो या अधिक व्यक्ति मिलकर लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से वैधानिक व्यापार प्रारम्भ करने के लिए समामेलन दस्तावेज में अपना नाम सदस्य के रूप में देते है।

(ब) समामेलन दस्तावेज को निर्धारित तरीके से निर्धारित शुल्क के साथ उस राज्य के रजिस्ट्रार के पास फाइल करते है जहां सीमित दायित्व साझेदारी का रजिस्टर्ड कार्यालय है।

(स) समामेलन दस्तावेज के साथ, एक कथन इस आशय का कि अधिनियम तथा नियमों के अन्तर्गत उन सभी औपचारिकताओं कि पूर्ति कर दी गयी है जो समामेलन तथा उससे सम्बन्धित है, भेजना होता है। यह कथन निर्धारित प्रारूप में दाखिल करना पड़ता है जिसे सीमित दायित्व साझेदारी में संलिप्त एक एडवोकेट या एक कम्पनी सचिव या एक चार्टड एकाउन्टेण्ट या लागत लेखाकार तथा एक

सदस्य जिसका नाम समामेलन दस्तावेज में है द्वारा बनाया जाता है तथा हस्ताक्षरित होता है।

समामेलन दस्तावेज –

अ – एक निर्धारित प्रारूप में होता है।

ब – उसमें सीमित दायित्व साझेदारी का नाम होगा

स– उसमें सीमित दायित्व साझेदारी के प्रस्तावित व्यवसाय का उल्लेख होगा।

द – उसमें सीमित दायित्व साझेदारी के रजिस्र्टड कार्यालय का पता होगा।

य – उसमें उन सभी साझेदारों के नाम व पतें होगें जो सीमित दायित्व साझेदारी के समामेलन के समय साझेदार बनते है।

र – उन व्यक्तियों के नाम व पतें जो समामेलन पर सीमित दायित्व साझेदारी के नामित साझेदार बने हों।

ल – प्रस्तावित सीमित दायित्व साझेदारी से सम्बन्धित अन्य निर्धारित सूचनाएं।

एक व्यक्ति जिसने धारा 11 (1) के वाक्य 'स' में जो कथन दिया है उसे वह –

अ – असत्य समझता हो या

व – उसे सत्य समझने का विश्वास भी न करता हो तो ऐसे व्यक्ति को दो साल की अवधि तक का कारावास और दस हजार रू से पांच लाख रू तक का अर्थदण्ड से दण्डित किया जा सकता है।

धारा 12 (1) के अनुसार, जब धारा 11 (1) के वाक्याशं 'ब' तथा 'स' के सभी औपचारिकतों की पूर्ति हो जाती है, वाक्याशं 'अ' की पूर्ति होनी मान ली जाती है क्योंकि समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति का वचन दिया रहता है, तो रजिस्ट्रार समामेलन दस्तावेजों को अपने पास रख लेता है और चौदह दिनों के अन्दर – (अ) – समामेलन दस्तावेजों को रजिस्टर में दर्ज कर तथा (ब) – सीमित दायित्व साझेदारी के दिये गये नाम से एक प्रमाण निर्गत कर देता है। निर्गत प्रमाण–पत्र में रजिस्ट्रार के हस्ताक्षर होते है तथा कार्यालय की मुहर लगायी जाती है। यह प्रमाण–पत्र इस बात का प्रमाण होता है कि सीमित दायित्व साझेदारी का दिये गये नाम से रजिस्ट्रेशन द्वारा समामेलन हो गया है।

धारा 13 के अनुसार, प्रत्येक सीमित दायित्व साझेदारी का एक रजिस्र्टड कार्यालय होगा जहां प्रत्राचार किये जायेगें तथा उन्हें प्राप्त किया जायेगा। सीमित दायित्व साझेदारी अपने रजिस्र्टड कार्यालय का स्थान परिवर्तित कर सकती है ऐसा परिवर्तन रजिस्ट्रार को सूचना देने पर ही प्रभावशील होगा यदि सीमित दायित्व साझेदारी इन प्रावधानों का उल्लधन करती है तो उसे तथा उसके प्रत्येक साझेदार को कम से कम दो हजार रू और अधिकतम पच्चीस हजार रू के अर्थदण्ड से दण्डित किया जा सकता है।

रजिस्ट्रेशन का प्रभाव – धारा 14 के अनुसार, सीमित दायित्व साझेदारी रजिस्ट्रेशन के पश्चात अपने नाम से वाद प्रस्तुत कर सकती है तथा उस पर वाद प्रस्तुत किया जा सकता है। सीमित दायित्व साझेदारी अपने नाम से चल व अचल, वास्तविक तथा अवास्तविक सम्पत्ति रख सकती है उसके पास अपनी सार्व मुद्रा होगी वह अन्य ऐसे सभी वैधानिक कार्य कर सकती है जो कि एक निगमित निकाय कर सकती है।

धारा 15 के अनुसार, प्रत्येक सीमित दायित्व साझेदारी को अपने नाम के अंत में ' सीमित दायित्व साझेदारी ' अथवा 'LLP' लिखना होगा।

एक सीमित दायित्व साझेदारी ऐसे नाम से रजिर्स्टड नहीं हो सकती है जो केन्द्रीय सरकार की राय में आपत्तिजनक हो, जो नाम दूसरी साझेदारी फर्म या अन्य निगमित निकायों या सीमित दायित्व साझेदारी के समान हो अथवा उससे मिलता जुलता हो।

यदि कोई सीमित दायित्व साझेदारी प्रस्तावित नाम या परिवर्तित नाम को सुरक्षित रखवाना चाहता है तो उसे निर्धारित प्रारूप में निर्धारित शुल्क के साथ रजिस्ट्रार के पास आवेदन करना होता है। रजिस्ट्रार ऐसे आवेदन को प्राप्त करने के पश्चात यदि वह संतुष्ट होता है कि नाम केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाये गये नियमों के अनुरूप है तो वह नाम सुरक्षित रखने की सूचना दे देता है । यह नाम सूचना देने की तिथि से तीन माह तक सुरक्षित रहता है।

यदि केन्द्रीय सरकार इस बात से संतुष्ट होती है कि सीमित दायित्व साझेदारी का नाम आपत्तिजनक है या दूसरी सीमित दायित्व साझेदारी या अन्य से मिलता जुलता है तो केन्द्रीय सरकार ऐसी सीमित दायित्व साझेदारी को नाम बदलने का निर्देश दे सकती है। ऐसा निर्देश देने के तीन माह के अन्दर या केन्द्रीय सरकार द्वारा बढ़ाये गये समय के अन्दर सीमित दायित्व साझेदारी को निर्देशों का पालन करना होगा। सीमित दायित्व साझेदारी निर्देश का पालन करने में असफल रहती है तो उस पर कम से कम दस हजार रू दण्ड लगाया जा सकता है जिसे पांच लाख रू तक बढ़ाया जा सकता है। और सीमित दायित्व साझेदारी के नामित साझेदार पर भी कम से कम दस हजार रू जिसे एक लाख रू तक बढ़ाया जा सकता है अर्थदण्ड लगाया जा सकता है।

एक सीमित दायित्व साझेदारी के समामेलन के पश्चात कोई दूसरी साझेदारी का रजिस्ट्रेशन उससे मिलते जुलते नाम से हो जाए तो पहली साझेदारी रजिस्ट्रार को नाम बदलने का निर्देश देने के लिए आवेदन कर सकती है। ऐसा आवेदन दूसरी साझेदारी के रजिस्ट्रेशन के चौबीस माह के अन्दर दिया जाना चाहिए। कोई भी सीमित दायित्व साझेदारी जिस नाम से रजिर्स्टड है उसे बदलने के लिए निर्धारित प्रारूप में निर्धारित शुल्क के साथ रजिस्ट्रार को सूचना दे सकती है।

यदि कोई व्यक्ति सीमित दायित्व साझेदारी के रूप में बिना रजिर्स्टड हुए अपना ऐसे नाम से व्यवसाय चला रहा है जिसके अंत में 'सीमित दायित्व साझेदारी' या 'LLP' लिखा हो तो ऐसे व्यक्ति पर न्यूनतम पचास हजार रू अर्थदण्ड लगाया जा सकता है जिसे पांच लाख रू तक बढ़ाया जा सकता है।

प्रत्येक सीमित दायित्व साझेदारी को अपने बिलों, कार्यालय पत्राचारों और अन्य प्रकाशनों में साझेदारी का नाम, रजिस्टर्ड कार्यालय का पता तथा रजिस्ट्रेशन नम्बर लिखना होगा तथा सीमित दायित्व के रूप में रजिस्टर्ड है यह कथन भी लिखना होगा। कोई भी सीमित दायित्व साझेदारी इसका उल्लधन करती है तो उस पर कम से कम दो हजार रू जिसे बीस हजार रू तक बढ़ाया जा सकता है, अर्थदण्ड का जुर्माना लगाया जा सकता है।

8.4 साझेदारों के आपसी सम्बन्ध (अधिकार, कर्तव्य) (Mutual Relation of Partners (Rights and Duties)

सीमित दायित्व साझेदारी अधिनियम 2008 की धारा 23 के अनुसार साझेदारों के आपसी अधिकार व कर्तव्य तथा सीमित दायित्व साझेदारी एवं उसके

साझेदारों के मध्य अधिकार एवं कर्तव्यों का निर्धारण ' सीमित दायित्व साझेदारी ठहराव' द्वारा निर्धारित होते है। सीमित दायित्व साझेदारी के समामेलन से पूर्व उक्त ठहराव लिखित रूप में उन सभी व्यक्तियों द्वारा बनाया जाता है जिनके नाम समामेलन के प्रपत्र में होते है। ऐसा ठहराव तथा इसमें हुआ परिवर्तन को रजिस्ट्रार के पास दाखिल करना होता है।

धारा 23 (4) के अनुसार उक्त ठहराव के न होने की दशा में साझेदारों के आपसी अधिकार कर्तव्य तथा साझेदारी व उसके साझेदारों के बीच अधिकार व कर्तव्य का निर्धारण अधिनियम की प्रथम अनुसूची के अनुसार निर्धारित होते है। अधिनियम की प्रथम अनुसूची में साझेदारों के आपसी सम्बन्धों को निम्न प्रकार निर्धारित किया गया है –

1. सीमित दायित्व साझेदारी की पूंजी, लाभ तथा हानि में सभी साझेदार बराबर के हिस्सेदार होगें।
2. सीमित दायित्व साझेदारी को प्रत्येक साझेदार द्वारा किए गये भुगतान तथा उनके द्वारा लिये गये व्यक्तिगत उत्तरदायित्वों की क्षतिपूर्ति करनी होगी जो

अ– सीमित दायित्व साझेदारी के व्यापार को सामान्य तथा उचित प्रकार से चलाने पर किये हो अथवा

ब– सीमित दायित्व साझेदारी के व्यवसाय अथवा सम्पत्ति की सुरक्षा हेतु किए हो।

3. सीमित दायित्व साझेदारी के व्यवसाय के संचालन में साझेदार द्वारा किए गये कपट के कारण होने वाली हानि की क्षतिपूर्ति साझेदार को करनी होगी।
4. प्रत्येक साझेदार को अधिकार है कि वह सीमित दायित्व साझेदारी के प्रबन्ध में हिस्सा ले सकता है।
5. किसी भी साझेदार को सीमित दायित्व साझेदारी के प्रबन्ध एवं व्यवसाय में कार्य करने के लिए पारिश्रमिक प्राप्त करने का अधिकार नहीं होगा।
6. किसी भी साझेदार को अन्य सभी साझेदारों की सहमति के बिना किसी को साझेदारी में सम्मिलित करने का अधिकार नहीं होगा।
7. सीमित दायित्व साझेदारी में किसी भी मामले या विवाद का निपटारा बहुमत द्वारा प्रस्ताव पारित कर किया जाएगा, प्रत्येक साझेदार का एक वोट होगा। परन्तु सीमित दायित्व साझेदारी के व्यवसाय के स्वभाव में परिवर्तन बिना सभी साझेदारों की सहमति के नहीं किया जा सकता है।
8. सीमित दायित्व साझेदारी के लिए यह आवश्यक है कि उसके द्वारा लिए गये निर्णयों को निर्णय की तिथि से तीस दिनों के अन्दर उसके सूक्ष्म (Minutes) को सूक्ष्म पुस्तिका में लिखा जाना चाहिए। तथा निर्णयों को कार्यालय के रजिस्टर में संभाल कर रखना चाहिए।
9. सभी साझेदारों का यह कर्तव्य है कि वे इस प्रकार की सभी सूचनाएं तथा लेखा प्रस्तुत करें जो कि सीमित दायित्व साझेदारी अथवा किसी भी साझेदार या उसके कानूनी प्रतिनिधि को प्रभावित करते हो।
10. यदि किसी साझेदार ने सीमित दायित्व साझेदारी की बिना सहमति के कोई ऐसा व्यापार किया हो जो कि सीमित दायित्व साझेदारी से प्रतिस्पर्द्धी करता हो तो ऐसे साझेदार को ऐसे प्रतिस्पद्वी व्यापार के लाभ का हिसाब देना होगा।

11. यदि किसी साझेदार ने सीमित दायित्व साझेदारी की बिना सहमति के साझेदारी से सम्बन्धित किसी व्यवहार से अथवा साझेदारी की सम्पत्ति के प्रयोग से अथवा साझेदारी के नाम या साझेदारी के व्यवसाय से संबन्ध रखने वाले से कोई लाभ कमाया हो तो उसे ऐसे लाभ का हिसाब देना होगा।

12. किसी भी साझेदार को बहुमत वाले साझेदार नहीं निकाल सकते है। यदि साझेदारों ने स्पष्ट ठहराव द्वारा किसी या किन्ही साझेदारों को ऐसा अधिकार दिया है तो ऐसा साझेदार या साझेदारों द्वारा किसी भी साझेदार को निकाला जा सकता है।

13. साझेदारों के मध्य उत्पन्न विवाद जो सीमित दायित्व साझेदारी ठहराव द्वारा सुलझाये नहीं जा सके हो उन्हें 'पंचनिर्णय एवं संराधन अधिनियम 1996' के अन्तर्गत पंचनिर्णय हेतु प्रेषित किया जाएगा। अर्थात कोई भी साझेदार सीधे विवाद को न्यायालय में नहीं ले जा सकता है।

14. प्रत्येक साझेदार जो अपने नाम या पते में परिवर्तन करता है उसे ऐसे परिवर्तन के पन्द्रह दिनों के अन्दर इसकी सूचना सीमित दायित्व साझेदारी को देनी होती है।

साझेदार द्वारा साझेदारी से पृथक होना

धारा 24 के अनुसार, कोई भी साझेदार अन्य साझेदारों के साथ हुए ठहराव के अनुसार सीमित दायित्व साझेदारी से पृथक हो सकता है। ठहराव के अभाव में कोई भी साझेदार अन्य सभी साझेदारों को इस आशय की एक लिखित सूचना कि वह साझेदारी से सेवा निवृत हो रहा है देगा। यह सूचना कम से कम तीस दिन पूर्व देनी होगी। इस प्रकार वह सीमित दायित्व साझेदारी से पृथक या सेवा निवृत हो जाएगा। निम्न दशाओं में एक व्यक्ति की साझेदारी समाप्त हो जाती है यदि –

अ– उसकी मृत्यु हो जाए या सीमित दायित्व साझेदारी समाप्त हो जाए।

ब– किसी सक्षम न्यायालय द्वारा उसे अस्वस्थ मस्तिष्क का धोषित कर दिया जाए।

स– उसने दिवालिया धोषित करने हेतु आवेदन किया हो अथवा व दिवालिया धोषित हो गया हो।

उपरोक्त दशाओं में जब तक ऐसे साझेदार को नोटिस न दिया गया हो या उसके साझेदार न रह जाने की सूचना रजिस्ट्रार को न भेज दी जाए तब तक वह साझेदार रहेगा। कोई भी व्यक्ति जो साझेदार की मृत्यु या दिवालिया होने पर उसके भाग का अधिकारी होता है उसे सीमित दायित्व साझेदारी के प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होता है।

सीमित दायित्व साझेदारी को नया साझेदार बनने या पुराने साझेदार की साझेदारी समाप्त होने अथवा साझेदारों के नाम व पते में परिवर्तन होने पर इसकी सूचना तीस दिनों के अन्दर रजिस्ट्रार को देनी होती है। इस सूचना के साथ निर्धारित शुल्क जमा करना होता है, इस पर नामित साझेदार के हस्ताक्षर होते है। इस व्यवस्था का उल्लंघन करने पर प्रत्येक नामित साझेदार तथा सीमित दायित्व साझेदारी पर न्यूनतम 2000 रू तथा अधिकतम 25000 रू तक अर्थदण्ड लगाया जा सकता है।

8.5 सीमित दायित्व साझेदारी तथा साझेदारों के दायित्व (Liabilities of Limited Liability Partnership and Partners)

धारा 26 के अनुसार, सीमित दायित्व साझेदारी के सभी साझेदार साझेदारी व्यवसाय के लिए उसके एजेन्ट होते है, परन्तु एक साझेदार दूसरे साझेदार का एजेन्ट नहीं होता है। इसका आशय यह है कि यदि कोई साझेदार अधिकार के अन्दर साझेदारी व्यवसाय से सम्बन्धित कोई व्यवहार तृतीय पक्षकार के साथ करता है तो इस व्यवहार के लिए सीमित दायित्व साझेदारी उत्तरदायी होगी। दूसरी ओर एक साझेदार द्वारा किये गये साझेदारी व्यवसाय के कार्य से उत्पन्न दायित्व के लिए अन्य साझेदार उत्तरदायी नहीं होगें क्योकि एक साझेदार दूसरे का एजेन्ट नहीं होता है।

यदि एक साझेदार सीमित दायित्व साझेदारी का ऐसा कार्य करता है जिसे करने का उसे अधिकार नहीं है तथा ऐसा व्यवहार जिस व्यक्ति से उसने किया है उसे उसके अधिकार होने या न होने की जानकारी नहीं है तो ऐसे कार्य से उत्पन्न दायित्वों के लिए सीमित दायित्व साझेदारी बाध्य नहीं होगी परन्तु यदि कोई साझेदार अपने अधिकार की सीमा के अन्दर सीमित दायित्व साझेदारी के व्यवसाय के दौरान कोई कार्य करता है और उसके दोष पूर्ण कार्य अथवा भूल के फलस्वरूप वह तृतीय पक्ष के प्रति उत्तरदायी हो जाता है तो इसके दायित्व के लिए सीमित दायित्व साझेदारी बाध्य होगी। साझेदार तृतीय पक्ष के प्रति व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं होगा। एक साझेदार के दोषपूर्ण कार्य के लिए दूसरे साझेदार उत्तरदायी नहीं होते है। (धारा 27 व 28)

यदि कोई व्यक्ति स्वयं को, मौखिक या लिखित या व्यवहार द्वारा, किसी सीमित दायित्व साझेदारी का प्रतिनिधि बताता है और दूसरा व्यक्ति उस पर विश्वास कर सीमित दायित्व साझेदारी से व्यवहार कर लेता है तो सीमित दायित्व साझेदारी ने इस प्रकार के व्यवहार से जितना लाभ कमाया है उस सीमा तक उत्तरदायी होगी। जब किसी साझेदार की मृत्यु के बाद भी सीमित दायित्व साझेदारी उसी नाम से तथा मृत साझेदार का नाम भी सम्मिलित करते हुए व्यवसाय को चालू रखते है तो मृत साझेदार का कानूनी प्रतिनिधि या उसकी सम्पत्ति ऐसे कार्यो के लिए उत्तरदायी नहीं होगी। (धारा 29)

यदि सीमित दायित्व साझेदारी या उसके साझेदार द्वारा अपने लेनदारों या अन्य व्यक्ति के साथ कपट किया हो या कपट पूर्ण प्रयोजन के आशय से कोई कार्य किया हो तो ऐसी दशा में सीमित दायित्व साझेदारी तथा कपट करने वाले साझेदार का दायित्व ऐसे लेनदारों के प्रति असीमित हो जाएगा। जहां कपट मय कार्य किसी साझेदार द्वारा किया जाए और सीमित दायित्व साझेदारी यह सिद्व कर दे कि ऐसा कार्य सीमित दायित्व साझेदारी की जानकारी या अनुमति से नहीं हुआ था तो इस दशा में सीमित दायित्व साझेदारी उत्तरदायी नहीं होगी केवल साझेदार का दायित्व असीमित होगा।

कपटमय कार्य करने वाले साझेदार तथा अन्य पक्षकार जिन्हें इसकी जानकारी थी वे दो वर्ष के कारावास तथा न्यूनतम पचास हजार रू और अधिकतम पांच लाख रू तक के अर्थदण्ड के भागीदार होगें। जहां किसी सीमित दायित्व साझेदारी या उसके किसी साझेदार या नामित साझेदार या किसी कर्मचारी ने कपटपूर्ण कार्य किया है तो ऐसे में इसके लिए आपराधिक दायित्व के अतिरिक्त ये

सभी ऐसे व्यक्ति को क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी होगें जिसे ऐसे कार्य के कारण हानि हुई है। सीमित दायित्व साझेदारी इस दायित्व से बच सकती है जब वह सिद्व कर दे कि ऐसा कार्य उसकी जानकारी के बिना हुआ है। (धारा 30)

न्यायालय या न्यायाधिकरण किसी सीमित दायित्व साझेदारी के किसी साझेदार या कर्मचारी पर लगाए गए अर्थदण्ड को कम कर सकता है या अर्थदण्ड से मुक्त कर सकता है यदि वह संतुष्ट हो जाए कि – (क)– ऐसे साझेदार या कर्मचारी ने सीमित दायित्व साझेदारी के जांच के दौरान उपयोगी जानकारी उपलब्ध करायी है, (ख) – जब किसी साझेदार या कर्मचारी द्वारा दी गई जानकारी से सीमित दायित्व साझेदारी, साझेदार या कर्मचारी को सीमित दायित्व साझेदारी अधिनियम या अन्य अधिनियम के अन्तर्गत दोषी सिद्व करती हो।

किसी साझेदार या कर्मचारी जिसनें सूचना उपलब्ध करायी हो उसे न कार्य से निकाला जा सकता है ना उसका पदावनत किया जा सकता है ना निलंबन तथा ना उसे धमकाया या उसका शोषण किया जा सकता है, उसके साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जा सकता है।

8.6 अंशदान (Contributions)

किसी साझेदार के अंशदान के अन्तर्गत उसके द्वारा अपने भाग के लिए सीमित दायित्व साझेदारी के संचालन हेतु दिया गया धन, सम्पत्ति या अन्य चीजें सम्मिलित होती है। धारा 32 के अनुसार, अंशदान में वास्तविक या मूर्त, चल या अचल या अमूर्त सम्पत्ति या सीमित दायित्व साझेदारी से सम्बन्धित कुछ अन्य लाभ हो सकते है जिसमें मुद्रा, प्रतीज्ञा पत्र, मुद्रा या सम्पत्ति के अंशदान करने के अन्य ठहराव तथा निष्पादित किये गये या निष्पादित किये जाने वाले अनुबन्ध सम्मिलित है।

प्रत्येक साझेदार के अंशदान के मौद्रिक मूल्य की गणना इस प्रकार से की जायेगी तथा सीमित दायित्व साझेदारी में इस तरीके से दिखाया जाएगा जैसा की निर्धारित किया गया है। किसी साझेदार द्वारा धन, सम्पत्ति, सेवा या अन्य प्रकार के अंशदान उसी प्रकार से किया जाएगा जैसा कि सीमित दायित्व साझेदारी समझौते में उल्लेखित है।

8.7 वित्तीय प्रकटीकरण (Financial Disclosures)

धारा 34 के अनुसार, सीमित दायित्व साझेदारी को अपने कामकाज से सम्बधित ऐसी लेखा पुस्तकें रखनी पड़ती है जैसा कि निर्धारित किया गया है, ये लेखे प्रत्येक वर्ष नकद या अर्जन के आधार पर तथा दोहरा लेखा विधि के अनुसार होने चाहिए। उन्हें सीमित दायित्व साझेदारी के रजिस्टर्ड कार्यालय में ऐसी अवधि हेतु रखना होगा जैसा कि निर्धारित किया जाए। प्रत्येक सीमित दायित्व साझेदारी को प्रत्येक वित्तीय वर्ष के अंत से छः माह के अन्दर निर्धारित प्रारूप में खातों का विवरण तथा शोधनक्षमता का विवरण तैयार करना होता है, इन विवरणों पर सीमित दायित्व साझेदारी के नामित साझेदार के हस्ताक्षर होते है। प्रत्येक सीमित दायित्व साझेदारी को प्रत्येक वर्ष निर्धारित समय के अन्दर, निर्धारित तरीके एवं प्रारूप में तथा निर्धारित फीस के साथ खातों का विवरण तथा शोधनक्षमता का विवरण रजिस्ट्रार के पास दाखिल करना पड़ता है।

निर्धारित नियमों के अनुसार सीमित दायित्व साझेदारी को अपने लेखों का अंकेक्षण कराना होता है। केन्द्रीय सरकार सरकारी गजट में अधिसूचना जारी करके कुछ वर्ग के सीमित दायित्व साझेदारी को अंकेक्षण से छूट दे सकती है। ऐसी सीमित दायित्व साझेदारी जो धारा 34 का पालन करने में असफल रहती है उस पर अर्थदण्ड लगाया जा सकता है जो पच्चीस हजार रू से प्रारम्भ होकर बढ़कर पांच लाख रू तक हो सकता है। प्रत्येक नामित साझेदार पर भी जुर्माना लगाया जा सकता है जो दस हजार रू से प्रारम्भ होकर बढ़कर एक लाख रू तक हो सकता है।

धारा 35 के अनुसार, प्रत्येक सीमित दायित्व साझेदारी को अपने वित्तीय वर्ष समाप्त होने से साठ दिनों के अन्दर रजिस्ट्रार के पास निर्धारित तरीके तथा प्रारूप में प्रमाणित वार्षिक विवरण निर्धारित शुल्क के साथ दाखिल करना पड़ता है। यदि सीमित दायित्व साझेदारी वार्षिक विवरण दाखिल करने में असफल रहती है तो उस पर अर्थदण्ड लगाया जा सकता है जो पच्चीस हजार रू से प्रारम्भ होकर पांच लाख रू तक हो सकता है। वार्षिक विवरण दाखिल करने के प्रावधान का उल्लधन करने पर नामित साझेदार पर भी जुर्माना लगाया जा सकता है जो दस हजार रू से प्रारम्भ होकर एक लाख रू तक हो सकता है।

धारा 36 के अनुसार, प्रत्येक सीमित दायित्व साझेदारी द्वारा रजिस्ट्रार के पास दाखिल किया गया समामेलन दस्तावेज, साझेदारों के नाम एवं उनमें परिवर्तन यदि हुआ है, लेखे एवं शोधनक्षमता का विवरण और वार्षिक विवरण का कोई भी व्यक्ति निर्धारित तरीके से शुल्क देकर निरीक्षण कर सकता है।

धारा 37 के अनुसार, इस अधिनियम के अन्तर्गत वांच्छित विवरणों या दस्तावेजों में कोई व्यक्ति जानते हुए भी असत्य विवरण दे अथवा जानते हुए भी महत्वपूर्ण तथ्यों को छोड़ देता है तो ऐसे व्यक्ति को दो वर्ष तक का कारावास तथा जुर्माना जो न्यूनतम एक लाख रू तथा अधिकतम पांच लाख रू तक हो सकता है, से दण्डित किया जा सकता है।

धारा 38 के अनुसार, यदि रजिस्ट्रार अधिनियम के पालन के लिए आवश्यक समझे तो वह सीमित दायित्व साझेदारी के वर्तमान या पूर्व के साझेदार, नामित साझेदार या कर्मचारी से जानकारी मांग सकता है या अपने पास बुलाकर जानकारी ले सकता है तथा समन भी जारी कर सकता है। यदि कोई इसका पालन नहीं करता तो उस पर अर्थदण्ड जो दो हजार रू से प्रारम्भ होकर पच्चीस हजार रू तक हो सकता है, लगाया जा सकता है। यदि कोई सीमित दायित्व साझेदारी रजिस्ट्रार के पास लेखे, विवरण या दस्तावेज दाखिल करने में चूक करती है अथवा दस्तावेजों में सुधार कर पुनः जमा करने में चूक करती है तो रजिस्ट्रार द्वारा न्यायाधिकरण में प्राथर्ना पत्र देने के आधार पर न्यायाधिकरण सीमित दायित्व साझेदारी को निश्चित समय के अन्दर चूक को सही करने का निर्देश दे सकती है तथा इस सम्बन्ध में सभी व्यय सीमित दायित्व साझेदारी को वहन करने होगें।

साझेदार द्वारा अपना हित हस्तांतरण करना

धारा 42 के अनुसार, सीमित दायित्व साझेदारी का साझेदार अपना लाभ हानि में हिस्सा सम्पूर्ण या अंशतः किसी अन्य को हस्तातरित कर सकता है। साझेदार द्वारा अपने अधिकार का हस्तांतरण सीमित दायित्व साझेदारी के विघटन

या समाप्ति का कारण नहीं होता है। जिस व्यक्ति को साझेदार ने अपना हिस्सा हस्तांतरित किया है वह स्वतः ही सीमित दायित्व साझेदारी के प्रबन्ध में भाग लेने या साझेदारी की अन्य गतिविधियों की जानकारी लेने का अधिकारी नहीं हो जाता।

8.8 सीमित दायित्व साझेदारी के कामकाज की जांच (Investigation of Affairs of Limited Liability Partnership)

धारा 43 के अनुसार, केन्द्रीय सरकार दो मामलों में सीमित दायित्व साझेदारी के कामकाज की जांच करने हेतु एक या अधिक सक्षम निरीक्षकों की नियुक्ति करती है जिन्हें केन्द्रीय सरकार के निर्देशानुसार रिर्पोट देनी होती है :

(क) न्यायाधिकरण के आदेश पर – जहां न्यायाधिकरण अपने आप से या फिर सीमित दायित्व साझेदारी के कम से कम 1/5 साझेदारों से प्राप्त आवेदन पत्र पर एक आदेश द्वारा धोषित करता है कि सीमित दायित्व साझेदारी के कामकाज की जांच होनी चाहिए।

(ख) न्यायालय के आदेश पर – जब कोई न्यायालय आदेश द्वारा यह धोषित करता है कि सीमित दायित्व साझेदारी के कामकाज की जांच होनी चाहिए।

उपरोक्त के अलावा भी केन्द्रीय सरकार निम्न दशाओं में भी निरीक्षक की नियुक्ति कर सकती है–

1. जब सीमित दायित्व साझेदारी के कम से कम 1/5 साझेदार साक्ष्य तथा निर्धारित प्रतिभूति राशि के साथ आवेदन करें।
2. जब सीमित दायित्व साझेदारी स्वयं आवेदन करें।
3. जब केन्द्रीय सरकार के विचार से ऐसी परिस्थितियां विद्यमान है जो दर्शाती है कि –

अ– सीमित दायित्व साझेदारी का कामकाज उसके लेनदारों, साझेदारों या किसी अन्य व्यक्ति से कपट करने अथवा सीमित दायित्व साझेदारी की रचना किसी कपट पूर्ण या अवैध उद्देश्य की पूर्ति के लिए की गई थी या

ब– सीमित दायित्व साझेदारी का कामकाज अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार नहीं किया जा रहा हो, या

स– जब रजिस्ट्रार या अन्य निरीक्षक की रिर्पोट के आधार पर जांच कराना आवश्यक प्रतीत होता हो।

धारा 45 के अनुसार, कोई फर्म, निगमित निकाय या अन्य संघ को निरीक्षक के रूप में नियुक्त नहीं किया जायेगा।

निरीक्षकों के अधिकार – यदि निरीक्षक आवश्यक समझे कि ऐसा करना सीमित दायित्व साझेदारी की जांच के लिए सुसंगत है तो वह किसी ऐसे अस्तित्व (Entity) के कामकाज की भी जांच कर सकता है जो सीमित दायित्व साझेदारी या किसी वर्तमान या भूतपूर्व साझेदार या नामित साझेदार से भूतकाल में सम्बद्व रहा हो। तथा उसे इन सब के कामकाज पर रिर्पोट देने का अधिकार होता है। ऐसी जांच करने के पूर्व निरीक्षक को केन्द्रीय सरकार से अनुमति लेनी होगी तथा उक्त अस्तित्व, भागीदार या नामित साझेदार को भी सूचित करना होगा। (धारा 46)

सीमित दायित्व साझेदारी के नामित साझेदार तथा अन्य साझेदारों का यह कर्तव्य है कि वे सीमित दायित्व साझेदारी एवं अन्य अस्तित्व से सम्बन्धित सभी

लेखों एवं दस्तावेजों जो उनके अभिरक्षण में है उन्हें निरीक्षकों के समक्ष प्रस्तुत करें तथा निरीक्षकों को जांच से सम्बन्धित सभी प्रकार की सहायता करें।

केन्द्रीय सरकार से पूर्व अनुमोदन लेकर निरीक्षक किसी भी अस्तित्व से ऐसी सूचना तथा दस्तावेज पेश करने को कह सकता है जिन्हें वह जांच के उद्देश्य से आवश्यक समझे। निरीक्षक खातों व दस्तावेजों को तीस दिन तक अपने पास रख सकता है उसके बाद उन्हें लौटाना होगा। निरीक्षक उन्हें पुनः ले सकता है यदि उसे उनकी आवश्यकता पड़ती है। निरीक्षक को अधिकार है कि वह सम्बन्धित व्यक्तियों की शपथ पर परीक्षण कर सकता है तथा अपने समक्ष उपस्थित होने के लिए कह सकता है।

यदि कोई व्यक्ति उचित कारण के बिना मांगे गये खातों, दस्तावेजों को प्रस्तुत नहीं करता तथा बुलाने पर उपस्थित नहीं होता, सूचनायें नहीं देता, परीक्षण की टिप्पणियों पर हस्ताक्षर नहीं करता तो उस पर न्यूनतम दो हजार रू जो बढ़कर पच्चीस हजार रू तक हो सकता है अर्थदण्ड लगाया जा सकता है यदि चूक जारी रहती है तो अतिरिक्त दण्ड प्रतिदिन न्यूनतम पचास रू और अधिकतम पांच सौ रू तक लगाया जा सकता है।

जब जांच के दौरान निरीक्षक के पास विश्वास करने का उचित आधार होता है कि सीमित दायित्व साझेदारी या अन्य व्यक्ति खातों एवं दस्तावेजों को नष्ट, परिवर्तित या छिपा सकते है तो निरीक्षक उन्हें अपने अधिकार में लेने के लिए प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट के पास आवेदन कर सकता है। आवेदन पर सुनवाई के बाद मजिस्ट्रेट निरीक्षक को अधिकृत कर सकता है कि उचित सहायता लेकर उस संस्थान में प्रवेश कर सकता है तथा तलाशी ले सकता है जहां दस्तावेज रखे है तथा निरीक्षक उन दस्तावेजों को अपने पास रख सकता है। जांच पूर्ण होने के बाद उसे दस्तावेज वापस करने होते है और इसकी सूचना मजिस्ट्रेट को देनी होती है। ये दस्तावेज छः माह से अधिक निरीक्षक नहीं रख सकता है। दस्तावेज वापस करने पर निरीक्षक उन दस्तावेजो पर पहचान के चिन्ह भी लगा सकता है।

निरीक्षक केन्द्रीय सरकार के निर्देशानुसार अन्तरिम रिपोर्ट तथा अन्तिम रिपोर्ट केन्द्रीय सरकार के पास प्रेषित करता है। केन्द्रीय सरकार (अन्तरिम रिपोर्ट को छोड़कर) रिपोर्ट की प्रति सीमित दायित्व साझेदारी के रजिस्टर्ड कार्यालय, अन्य सम्बन्धित व्यक्तियों जिनका नाम रिपोर्ट में है, के पास भी भेजती है। रिपोर्ट से प्रभावित होने वाले व्यक्ति रिपोर्ट की प्रति खरीद सकते है। (धारा 49)

यदि रिपोर्ट के आधार पर केन्द्रीय सरकार को यह प्रतीत होता है कि सीमित दायित्व साझेदारी या अन्य सम्बन्धित व्यक्ति किसी अपराध के दोषी है तो केन्द्रीय सरकार उस अपराध के लिए अभियोजन कर सकती है। इसमें सीमित दायित्व साझेदारी, सभी साझेदार, नामित साझेदार, कर्मचारी या अन्य अस्तित्व का कर्तव्य है कि वे अभियोजन से सम्बन्धित मामलों में सहायता करें। (धारा 50)

निरीक्षक की रिपोर्ट के आधार पर यदि केन्द्रीय सरकार को यह प्रतीत होता है कि सीमित दायित्व साझेदारी का समापन होना चाहिए तो वह समापन हेतु आवेदन देने के लिए कह सकती है। यदि केन्द्रीय सरकार को यह प्रतीत होता है कि सीमित दायित्व साझेदारी या अन्य अस्तित्व जिनकें कार्यों की जांच करायी गयी थी रिपोर्ट में उनकें द्वारा कपट सिद्व होता है तो केन्द्र सरकार क्षतिपूर्ति या सम्पत्ति की वसूली हेतु कार्यवाही कर सकती है।

जांच के व्यय प्रथम बार केन्द्र सरकार द्वारा चुकाये जाते है परन्तु बाद में दोष सिद्व हो जाने पर दोषी पक्ष केन्द्रीय सरकार को प्रतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी होगें तथा यह राशि भूमि–राजस्व के बकाया के रूप में वसूल की जा सकती है। निरीक्षक की रिपोर्ट जो कि निर्धारित तरीके से प्रमाणित हो वह कानूनी कार्यवाही में साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य होगी।

8.9 फर्म का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन (Conversionn of Firm into Limited Liability Partnership)

फर्म से तात्पर्य भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 की धारा 4 में दी गयी परिभाषा के अनुसार फर्म से तात्पर्य साझेदारी फर्म से है अर्थात् 'साझेदारी उन व्यक्तियों के बीच का सम्बन्ध है जिन्होंने किसी ऐसे कारोबार से अर्जित लाभ को बाटंने का ठहराव किया है जिसे वे सब अथवा उनकी ओर से एक संचालित करता है।'

धारा 55 के अनुसार, फर्म का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन के अन्तर्गत फर्म की सभी सम्पत्ति, हितों, अधिकारों, विशेषाधिकारों, दायित्वों और अन्य सभी चीजों का सीमित दायित्व साझेदारी को हस्तांतरण होने से है। किसी भी फर्म को सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन करने के लिए द्वितीय अनुसूची की आवश्यकताओं को पूर्ण करना होगा। फर्म के सभी साझेदार इस अनुसूची के प्रावधानों से बाध्य होगें फर्म के परिवर्तन में फर्म के सभी साझेदार एकमत होने चाहिए, एक भी साझेदार अलग न हो।

साझेदारी फर्म को परिवर्तन करने के लिए रजिस्ट्रार के पास आवेदन करना होता है। सभी साझेदारों को केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित शुल्क के साथ विवरण देना होता है जिसमें निम्न बातें होंगी –

1. फर्म का नाम तथा रजिस्ट्रेशन संख्या।
2. साझेदारी अधिनियम 1932 अथवा अन्य अधिनियम के अन्तर्गत फर्म के रजिस्ट्रेशन की तिथि ।
3. धारा 11 के अनुसार समामेलन दस्तावेज तथा विवरण।

सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन करने के लिए जो दस्तावेज या विवरण दिए गये है । रजिस्ट्रार चाहे तो अपने तरीके से उनका सत्यापन करा सकता है। रजिस्ट्रार द्वारा उक्त दस्तावेजों को प्राप्त करने के पश्चात अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत दस्तावेजों को रजिस्टर में दर्ज कर परिवर्तन का रजिस्ट्रेशन प्रमाण–पत्र निर्गत कर देगा। सीमित दायित्व साझेदारी को उक्त रजिस्ट्रेशन की तिथि से पन्द्रह दिनों के अन्दर फर्मो के रजिस्ट्रार जहां वह साझेदारी अधिनियम 1932 के अन्तर्गत रजिर्स्टड थी, को परिवर्तन की सूचना तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित प्रारूप में सीमित दायित्व साझेदारी का विवरण देना होता है।

यदि रजिस्ट्रार दिये गये विवरणों अथवा सूचनाओं से सन्तुष्ट नहीं होता है तो वह किसी फर्म का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन का रजिस्ट्रेशन करने से मना कर सकता है। रजिस्ट्रार द्वारा इस प्रकार मना करने पर ट्रिव्यूनल के समक्ष अपील की जा सकती है।

साझेदारी फर्म का सीमित दायित्व साझेदारी के रूप में रजिस्ट्रेशन का प्रभाव –

1. जिस तिथि को उपरोक्त रजिस्ट्रेशन का प्रमाण–पत्र निर्गत होता है उस तिथि से परिवर्तित फर्म सीमित दायित्व साझेदारी के नाम से ही मानी जाएगी।

2. साझेदारी फर्म की सभी वास्तविक सम्पत्ति चल एवं अचल तथा अवास्तविक सम्पत्ति, विशेषाधिकार, दायित्व तथा सम्पूर्ण व्यवसाय सीमित दायित्व साझेदारी को हस्तांतरित हो जाते है। इसके लिए पृथक से कोई कार्यवाही करनी नहीं होती है।

3. साझेदारी फर्म समाप्त मान ली जाती है। यदि भारतीय साझेदारी अधिनियम 1932 के अन्तर्गत पहले रजिर्स्टड है तो उसे रिर्काड से हटा दिया जाता है।

रजिस्ट्रेशन की तिथि पर फर्म द्वारा या फर्म के विरूद्व कोई मामला न्यायालय, न्यायाधिकरण अथवा किसी अधिकारी के समक्ष विचाराधीन हो तो ऐसे मामले आगे को चालू रहेगें तथा पूर्ण होने पर इनके निर्णय सीमित दायित्व साझेदारी के पक्ष में हो या विरूद्व हो कार्यान्वित किए जाएगें। परिवर्तन की तिथि से पूर्व किये गये फर्म द्वारा ठहराव सीमित दायित्व साझेदारी द्वारा किये गये माने जायेगें और ये सीमित दायित्व साझेदारी द्वारा अथवा उनकें विरूद्व लागू किये जायेगें।

साझेदारी फर्म ने रोजगार के जो अनुबन्ध किये है वे रजिस्ट्रेशन के बाद भी इस प्रकार चालू रहेंगे जैसे कि सीमित दायित्व साझेदारी ही उनकी नियोक्ता हो। साझेदारी फर्म ने जिस कार्य के लिये अथवा जिस पद पर किसी को नियुक्त किया है वे भी उसी तिथि से सीमित दायित्व साझेदारी द्वारा नियुक्त किये गये समझे जाएगें।

जिस फर्म का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन हुआ है उसके समस्त साझेदार पृथक तथा संयुक्त रूप से सीमित दायित्व साझेदारी के साथ उन अनुबन्धों से उत्पन्न दायित्वों के लिए भी उत्तरदायी होगें जो कि फर्म ने परिवर्तन से पूर्व किये थे। यदि कोई साझेदार उपरोक्त दायित्वों को पूरा करता है तो (विपरीत अनुबन्ध न होने पर) सीमित दायित्व साझेदारी इस प्रकार के दायित्वों की क्षतिपूर्ति साझेदार को करेगी।

सीमित दायित्व साझेदारी के लिए यह भी आवश्यक है कि रजिस्ट्रेशन की तिथि से चौदह दिनों बाद से बारह माह तक प्रत्येक कार्यालय पत्राचार में यह उल्लेख करेगी कि सीमित दायित्व साझेदारी का रजिस्ट्रेशन साझेदार फर्म से परिवर्तन कर हुआ है तथा साझेदारी फर्म का नाम व रजिस्ट्रेशन नम्बर भी लिखना होगा। यदि कोई सीमित दायित्व साझेदारी इस प्रावधान का पालन नहीं करती है तो उसे कम से कम दस हजार रू तक अर्थदण्ड लगाया जाएगा जिसे एक लाख रू तक बढ़ाया जा सकता है यदि दोष जारी रहता है तो पचास रू प्रतिदिन जिसे पांच सौ रू प्रतिदिन तक बढ़ाया जा सकता है अतिरिक्त अर्थदण्ड लगाया जा सकता है।

8.10 प्राइवेट कम्पनी का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन (Conversion of Private Company into Limited Liability Partnership)

धारा 56 –

प्राइवेट कम्पनी – कम्पनी अधिनियम 1956 की धारा 3(I)(III) के अनुसार, प्राइवेट कम्पनी से आशय ऐसी कम्पनी से है जो अपने अन्तर्नियमों द्वारा :

(1) अपने अंशों के हस्तांतरण पर प्रतिबन्ध लगाती है।

(2) अपने सदस्यों की संख्या 50 तक सीमित रखती है (जो सदस्य कम्पनी के कर्मचारी है या थे को छोड़कर)।

(3) अपने अंशों और ऋण पत्रों में पूंजी लगाने के लिए जनता को आमंत्रित करने की मनाही कर दे।

प्राइवेट कम्पनी बनाने के लिये कम से कम दो व्यक्ति होने चाहिये ओर अधिकतम 50। यदि दो या अधिक व्यक्ति संयुक्त रूप से एक या अधिक अंश ले लेते है तो वे एक सदस्य की तरह गिने जायेगें। कम्पनी अधिनियम 2013 की धारा 2(68) तथा संशोधन मई 2015 के अनुसार, प्राइवेट कम्पनी से आशय ऐसी कम्पनी से है जिसकी प्रदत्त पूंजी न्यूनतम एक लाख रूपये अथवा निर्धारित की गई अधिक राशि है जो अपने अन्तर्नियमों द्वारा –

1. अपने अंशों के हस्तांतरण पर प्रतिबन्ध लगाती है।
2. अपने सदस्यों की संख्या 200 तक सीमित रखती है (एक व्यक्ति कम्पनी को छोड़कर)
3. कम्पनी प्रतिभूतियों में धन लगाने के लिए जनता को आमंत्रित करने की मनाही करती है।

एक प्राइवेट कम्पनी को सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन अधिनियम की धारा 56 के तृतीय अनुसूची का अनुपालन करके किया जा सकता है परिवर्तन का आशय प्राइवेट कम्पनी की सम्पत्तियां, इसका हित, अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व व देनदारियां एवं उसका सम्पूर्ण व्यापार सीमित दायित्व साझेदारी को हस्तांतरण से होता है। परिवर्तन के लिए एक निजी कम्पनी को तृतीय अनुसूची के अनुसार आवेदन करना होता है निजी कम्पनी के सभी अंशधारी सीमित दायित्व साझेदारी के साझेदार माने जाएगे अन्य कोई नहीं। ऐसे परिवर्तन से निजी कम्पनी के अंशधारी, सीमित दायित्व साझेदारी तथा उसके साझेदार तृतीय अनुसूची के प्रावधानों से बाध्य होंगे। कम्पनी को सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन के लिए रजिस्ट्रार के पास निर्धारित शुल्क के साथ आवेदन करना होता है। जिसमें निम्न बातें हो –

1. कम्पनी का नाम तथा रजिस्ट्रेशन संख्या।
2. कम्पनी के समामेलन की तिथि।
3. धारा 11 में निद्रिष्ट समामेलन दस्तावेज व विवरण संलग्न करना होता है।

उक्त दस्तावेजों के प्राप्त होने पर रजिस्ट्रार उन्हें रजिस्टर करेगा और रजिस्ट्रेशन प्रमाण पत्र निर्गत कर देगा। रजिस्ट्रेशन की तिथि से 15 दिन के अन्दर सीमित दायित्व साझेदारी को उस रजिस्ट्रार के पास जहां कम्पनी का समामेलन हुआ था, परिवर्तन की सूचना निर्धारित प्रारूप में देनी होगी।

यदि रजिस्ट्रार दी गई सूचनाओं से सन्तुष्ट नहीं होता तो वह परिवर्तन की रजिस्ट्री करने से मना कर सकता है। मना करने पर न्यायाधिकरण के पास अपील की जा सकती है।

रजिस्ट्रार प्रस्तुत दस्तावेजों का सत्यापन भी करवा सकता है शेष व्यवस्थाए उसी प्रकार से है व लागू होगी जैसे पूर्व में साझेदारी फर्म का सीमित

दायित्व साझेदारी में परिवर्तन के सम्बन्ध में बताया गया है। जैसे – पुराने विवादो के सम्बन्ध में, सम्पत्ति के सम्बंध में कर्मचारियों के सम्बन्ध में, पुराने अपूर्ण अनुबंधों के सम्बन्ध में, पूर्व की व्यवस्थाए लागू होंगी।

8.11 असूचीबद्ध सार्वजनिक कम्पनी का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन (Conversion of Unlisted Public Company into Limited Liability Partnership)

धारा 57 के अनुसार, कम्पनी का अभिप्राय असूचीबद्ध सार्वजनिक कम्पनी से है। सूचीबद्ध कम्पनी से आशय ऐसी कम्पनी से है जो भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड अधिनियम 1992 के अन्तर्गत सूचीबद्ध हो । असूचीबद्ध कम्पनी वह है जो सूचीबद्ध नहीं है।

कम्पनी का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन का आशय कम्पनी की सम्पत्तियां, दायित्व, अधिकार, विशेषाधिकार और सम्पूर्ण उपक्रम का सीमित दायित्व साझेदारी में हस्तांतरण से है। कम्पनी को सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन करने के लिए अनुसूची चतुर्थ का पालन करना होगा। कम्पनी के अंशधारी तथा सीमित दायित्व साझेदारी के समस्त साझेदार अनुसूची के प्रावधानों से बाध्य होगें। कोई कम्पनी सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन के लिए आवेदन तभी दे सकती है जब आवेदन के समय सम्पत्तियों में कोई प्रतिभूति हित विद्यमान न हो। सीमित दायित्व साझेदारी के साझेदारों में सभी अंशधारी सम्मिलित हो।

परिवर्तन की कार्यवाही उसी प्रकार की है जैसा कि निजी कम्पनी को या फर्म को सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन करने की होती है और परिवर्तन के पश्चात भी उन्हीं प्रावधानों का पालन करना होता है जो कि पूर्व में समझाये गये है। संक्षेप में –

1. रजिस्ट्रार के पास शुल्क के साथ विवरण प्रस्तुत करना जिसमें समामेलन दस्तावेज व विवरण संलग्न करने होते है।
2. रजिस्ट्रार आवेदन तथा दस्तावेजों की जांच कर उसकों रजिस्ट्रेशन का प्रमाण पत्र दे देता है।
3. रजिस्ट्रार रजिस्ट्रेशन से मना भी कर सकता है और मना करने पर न्यायाधिकरण के पास अपील की जा सकती है।
4. रजिस्ट्रेशन के पश्चात कम्पनी की सभी सम्पत्तियां व दायित्व सीमित दायित्व साझेदारी को हस्तांतरण मान लिया जाता है तथा कम्पनी का समापन हो जाता है।
5. रजिस्ट्रेशन की तिथि पर यदि कोई विवाद विचाराधीन हो तो वह आगे को चालू रहेगा तथा सीमित दायित्व साझेदारी उसके लिए उत्तरदायी होगी। इसी प्रकार कोई अनुबंध जो कम्पनी ने किया था पूर्ण नहीं हुआ हो तो उसे भी सीमित दायित्व साझेदारी पूर्ण करेगी।
6. कम्पनी के सभी कर्मचारी सीमित दायित्व साझेदारी के कर्मचारी माने जायेगें।
7. प्रावधानों का पालन न करने पर आर्थिक दण्ड लगाया जा सकता है।
8. परिवर्तन की सूचना उस रजिस्ट्रार के पास देनी होती है जहां कम्पनी का समामेलन हुआ था।

8.12 सीमित दायित्व साझेदारी का समापन तथा विघटन
(Winding up and Dissolution of Limited Liability Partnership)

धारा 63 के अनुसार, एक सीमित दायित्व साझेदारी का समापन या तो स्वैच्छिक हो सकता है या न्यायाधिकरण द्वारा हो सकता है इस प्रकार से समापित सीमित दायित्व साझेदारी को विघटित किया जा सकता है। निम्नलिखित परिस्थितियों में न्यायाधिकरण द्वारा एक सीमित दायित्व साझेदारी का समापन किया जा सकता है– (धारा 64)

1. जब सीमित दायित्व साझेदारी स्वयं यह निर्णय करती है कि न्यायाधिकरण द्वारा समापन होना है।
2. जब सीमित दायित्व साझेदारी में छः माह से अधिक समय तक साझेदारों की संख्या दो से कम रही हो।
3. जब सीमित दायित्व साझेदारी अपने ऋणों को चुकाने में असमर्थ हों।
4. जब सीमित दायित्व साझेदारी ने भारत की सार्वभौमिकता एवं एकता, राज्य की सुरक्षा या पब्लिक आदेश के विरूद्व कार्य किया हो।
5. जब सीमित दायित्व साझेदारी ने निरन्तर पांच वर्षो का वार्षिक विवरण, लेखे एवं शोधनक्षमता का विवरण रजिस्ट्रार के पास जमा करने में चूक ही हो।
6. जब न्यायाधिकरण के विचार में सीमित दायित्व साझेदारी का समापन न्यायपूर्ण हो।

धारा 65 के अनुसार, केन्द्रीय सरकार सीमित दायित्व साझेदारी के समापन एवं विघटन से सम्बन्धित प्रावधानों हेतु नियम बना सकती है।

8.13 सारांश

सीमित दायित्व साझेदारी एक निगमित निकाय है इसीलिए इसका अस्तित्व अपने साझेदारों से पृथक होता है। न्यूनतम दो व्यक्तियों द्वारा किसी वैद्य कारोबार हेतु, समामेलन दस्तावेज पर हस्ताक्षर करके तथा रजिस्ट्रार के पास इसे रजिस्ट्रीकृत कराके सीमित दायित्व साझेदारी की रचना की जा सकती है। सीमित दायित्व साझेदारी में साझेदार आपसी समझौते द्वारा अपने अधिकारों, कर्तव्यों व दायित्वों को परिभाषित कर सकते है यदि ऐसा समझौता न किया जाए तो इस सम्बन्ध में अधिनियम के प्रावधान लागू होते है।

सीमित दायित्व साझेदारी के साझेदार अपने द्वारा सहमत योगदान की सीमा तक दायी होगें। कोई भी साझेदार अन्य साझेदार के अनाधिकृत कार्यो या बूरे आचरण के लिए उत्तरदायी नहीं होगें। सीमित दायित्व साझेदारी में कम से कम दो नामित साझेदार होगें, उनमें से कम से कम एक भारत का निवासी होना चाहिए।

सीमित दायित्व साझेदारी को व्यवसाय या कामकाज की सच्ची एवं उचित स्थिति दर्शातें हुए वार्षिक लेखें तैयार करने पड़ते है, इनका अंकेक्षण होने के पश्चात रजिस्ट्रार के पास भेजने पड़ते है। केन्द्र सरकार अंकेक्षण से छूट दे सकती है। केन्द्रीय सरकार उचित समझे तो सीमित दायित्व साझेदारी के कामकाज का निरीक्षण करने हेतु निरीक्षकों की नियुक्ति कर सकती है। किसी साझेदारी फर्म, निजी कम्पनी या असूचीबद्ध सार्वजनीक कम्पनी को सीमित दायित्व साझेदारी में

परिवर्तन करने की व्यवस्था है। एक सीमित दायित्व साझेदारी का एच्छिक रूप से या न्यायाधिकरण द्वारा समापन किया जा सकता है। केन्द्रीय सरकार कम्पनी अधिनियम के प्रावधानों को सीमित दायित्व साझेदारी पर लागू कर सकती है।

8.14 शब्दावली

सीमित दायित्व साझेदारीः एक निगमित निकाय है जो कि सीमित दायित्व साझेदारी अधिनियम 2008 के अन्तर्गत निर्मित एवं समामेलित होती है जिसका पृथक वैधानिक अस्तित्व होता है

साझेदार के अंशदानः इस अंशदान के अन्तर्गत साझेदार द्वारा अपने भाग के लिए सीमित दायित्व साझेदारी के संचालन हेतु दिया गया धन, सम्पत्ति या अन्य चीजें सम्मिलित होती है।

8.15 बोध प्रश्न

'क' निम्नलिखित कथनो में से कौन सा कथन सत्य है कौन सा असत्य –

1. सीमित दायित्व साझेदारी में कम से कम 7 साझेदार होने चाहिए।
2. सीमित दायित्व साझेदारी में अधिकतम साझेदारों की संख्या 200 है।
3. एक निजी कम्पनी को सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन किया जा सकता है।
4. न्यायालय द्वारा सीमित दायित्व साझेदारी का समापन किया जा सकता है।
5. साझेदारों के मध्य विवाद होने पर कोई भी साझेदार सीधे न्यायालय में वाद प्रस्तुत कर सकता है।
6. सीमित दायित्व साझेदारी को वित्तीय वर्ष समाप्त होने के 60 दिनों के अन्दर प्रमाणित वार्षिक विवरण रजिस्ट्रार के पास दाखिल करना होता है।
7. केन्द्रीय सरकार किसी सीमित दायित्व साझेदारी को अंकेक्षण से छूट दे सकती है।
8. सीमित दायित्व साझेदारी के कामकाज की जांच करने के लिए किसी फर्म या निगमित निकाय को निरीक्षक के रूप में नियुक्त किया जा सकता है।
9. साझेदारी फर्म को सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन करने के लिए केन्द्र सरकार के पास आवेदन प्रस्तुत करना होता है।
10. सीमित दायित्व साझेदारी का समापन न्यायालय द्वारा किया जा सकता है।

'ख' रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

1. सीमित दायित्व साझेदारी अधिनियम ..... वर्ष में पारित हुआ।
2. सीमित दायित्व साझेदारी में कम से कम ..... साझेदार होगें जिनमें से एक भारत का निवासी होगा।
3. जब समामेलन की सभी औपचारिकताएं पूर्ण हो जाती है तो रजिस्ट्रार .... दिनों के अन्दर रजिस्ट्रेशन प्रमाण पत्र निर्गत कर देता है।
4. सीमित दायित्व साझेदारी का समापन ऐच्छिक या ..... द्वारा हो सकता है।
5. सीमित दायित्व साझेदारी में किसी भी साझेदार को बहुमत वाले साझेदार . ..... सकते है।

6. सीमित दायित्व साझेदारी में एक साझेदार दूसरे का ..... होता है।
7. प्रत्येक सीमित दायित्व साझेदारी को वित्तिय वर्ष के अंत से छः माह के अन्दर खातों का विवरण तथा ..... का विवरण तैयार करना होता है।
8. सीमित दायित्व साझेदारी का साझेदार अपना लाभ हानि में हिस्सा पूर्णतः या अन्तः अन्य को ..... कर सकता है।
9. जब सीमित दायित्व साझेदारी के कम से कम ..... साक्ष्य तथा प्रतिभूति राशि के साथ आवेदन करें तो केन्द्रीय सरकार निरीक्षक की नियुक्ति कर सकती है।
10. एक प्राइवेट कम्पनी को सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन ..... जा सकता है।

8.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

'क'

1. असत्य 2. असत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. असत्य
6. सत्य 7. सत्य 8. असत्य 9. असत्य 10. असत्य

'ख'

1. 2008 2. नामित 3. 14 4. न्यायाधिकरण 5. नहीं निकाल
6. एजेंट नही 7. शोधनक्षमता 8. हस्तांतरित 9. 1/5 साझेदार 10. किया

8.17 स्वपरख प्रश्न

1. सीमित दायित्व साझेदारी का रजिस्ट्रेशन कैसे होता है? रजिस्ट्रेशन के प्रभाव को समझाइयें?
2. सीमित दायित्व साझेदारी के साझेदारों के अधिकारों व कर्तव्यों की व्याख्या कीजिए?
3. सीमित दायित्व साझेदारी के कामकाज की जांच कराने के क्या प्रावधान है?
4. एक साझेदारी फर्म का सीमित दायित्व साझेदारी में परिवर्तन की विधि समझाइये?
5. सीमित दायित्व साझेदारी की प्रकृति को समझाइयें?

8.18 सन्दर्भ पुस्तकें

1. व्यापारिक सन्नियम : एस0एम0 शुक्ल एवं एस0पी0 सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. वाणिज्यिक विधि : बी0एम0 बैजल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. Elements of Mercantile Law : N.D. Kapoor, Sultan Chand & Sons; New Delhi.
4. Students Guide to Merchantile & Commercial Laws: Rohini Aggarawal, Taxmann Allied Services (p) Ltd.; New Delhi.
5. Principles of Mercantile Law: Avtar Singh, Eastern Book co.; Lucknow.
6. Business Law: K.C. Garg, V.K. Sareen; Mukesh Sharma & R.C. Chawla. Kalyani Publishers; New Delhi.

इकाई वस्तु एवं सेवा कर (जी.एस.टी.)

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

9.2 जी एस टी का अर्थ

- 9.2.1 जी.एस.टी. लागू करने का प्रस्ताव
- 9.2.2 जी.एस.टी. में सम्मिलित करने के लिये प्रस्तावित मौजूदा कर
- 9.2.3 जी.एस.टी. के दायरे से बाहर रखे जाने वाली प्रस्तावित वस्तुएं
- 9.2.4 जी.एस.टी. करारोपण और उसका प्रशासन
- 9.2.5 प्रस्तावित जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत जी.एस.टी. भुगतान करने के लिए उत्तरदायी
- 9.2.6 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत वस्तुओं और सेवाओं का वर्गीकरण

9.3 माल और सेवा कर के लाभ

- 9.3.1 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत छोटे कर दाताओं के लिये उपलब्ध लाभ

9.4 जीएसटी की मुख्य विशेषताएं

9.5 पंजीकरण

9.6 आपूर्ति का अर्थ, संभावना आपूर्ति का समय

9.7 कर का जी.एस.टी. भुगतान

9.8 जीएसटी परिषद्

- 9.8.1 जी.एस.टी. परिषद द्वारा लिए जाने वाले निर्णय
- 9.8.2 न्यूतनतम इंटरफेस

9.9 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंर्तगत आयात व निर्यात

- 9.9.1 जी.एस.टी. के अंर्तगत आयात
- 9.9.2 जी.एस.टी. के अंर्तगत निर्यात

9.10 आंकलन और लेखा–परीक्षण

9.11 प्रतिदाय/रिफंड

- 9.11.1 इनपुट कर प्रत्यय (क्रेडिट)
- 9.11.2 धन वापसी (रिफंड)
- 9.11.3 माँग (डिमांड्स)

9.12 जी.एस.टी. में अपील, समीक्षा और संशोधन

9.13 निरीक्षण, तलाशी, जब्ती और गिरफ्तारी

9.14 अपराध और दंड अभियोजन और संयुक्तिकरण

9.15 वैकल्पिक विवाद समाधान योजना–अग्रिम विनिर्णय

9.16 माल और सेवा कर के अन्य प्रावधान

9.17 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत विवादों का समाधान

- 9.17.1 अपंजीकृत व्यापारियों से माल की खरीद के मामले में क्या उलझने

9.18 निपटान आयोग

9.19 सारांश

9.20 शब्दावली

9.21 बोध प्रश्न

9.22 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.23 स्वपरख प्रश्न
9.24 संदर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- जी.एस.टी. के अर्थ की व्याख्या कर सकें ।
- जी.एस.टी. में सम्मिलित करने के लिये प्रस्तावित मौजूदा कर की व्याख्या कर सकें ।
- जी.एस.टी. के दायरे से बाहर रखे जाने वाली प्रस्तावित वस्तुओं का वर्णन का सकें ।
- जी.एस.टी. के अंतर्गत उपरोक्त करों को सम्मिलित करने के सिद्धांत की व्याख्या कर सकें ।
- जी.एस.टी. से प्राप्त होने वाले लाभों का वर्णन का सकें ।
- जी.एस.टी. में अपील, समीक्षा और संशोधन व जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत विवादों का समाधान को समझ सकें ।

9.1 प्रस्तावना

वस्तु एंव सेवा कर को लागू करना भारत में अप्रत्यक्ष कर के सुधार के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम होगा । बडी संख्या में केंन्द्र और राज्यों के द्वारा लगाए जा रहे करों को मिलाकर अकेला एक कर बना दिए जाने से करो बहुतायत और दोहरे कराधान की समस्या हल हो जाएगी और एक सामान्य राष्ट्रीय बाजार के लिए रास्ता साफ हो जाएगा । उपभोक्ताए की दृ ष्टि से देखें तो, सबसे बडा लाभ यह होगा कि वस्तुओं पर लगने वाले कर के बोझ मे कमी आ सकेगी । आज यह कर बोझ 25 प्रतिशत से 30 प्रतिशत के लगभग है । जीएसटी के लागू किए जाने से भारतीय उत्पाद घरेलू तथा अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में प्रतिस्पर्धा कर सकेंगे । किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि इससे आर्थिक विकास पर भी बहुत उत्साहजनक प्रभाव पडेगा और सबसे अंत में यह कहना है कि इस कर को लागू करना आसान होगा क्योंकि इसमें पारदर्शिता रहेगी और नीतियां स्वंय तैयार की जा सकेंगी ।

जीएसटी के बारे मे सबसे पहले तत्कालीन केंद्रीय वित्त मंत्री के दिमाग में आया था जिसको उन्होंने 2007–08 के बजट में व्यक्त किया था । शुरू–शुरू में जीएसटी के 1 अप्रैल, 2010 से लागू किए जाने का विचार था । राज्यों के वित्त मंत्रियों की शक्ति प्राप्त समिति (इ.सी.), जिसने राज्यों में लगाए जाने वाले वैट की रूपरेखा तैयार की थी, से अनुरोध किया था कि वह जीएसटी के लिए भी मार्ग प्रशस्त करें और उसकी रूपरेखा अधिकारियों का एक संयुक्त कार्यकारी दल, जिसमें राज्य और केंन्द्र दोनों के प्रतिनिधि थे, का गठन किया गया था, जिसका कार्य जीएसटी के विभिन्नं पहलुओं की जांच–परख करना था औार अपनी रिपोर्ट, विशेषकर छूट और निर्धारित (थ्रेशोल्ड) सीमा सेवाओं पर कर लगाना/करारोपण और अंतर्राज्यीय आपूर्ति पर करारोपण के बारे में, देना था। इनमें परस्पर तथा इनके और केंद्र सरकार के बीच हुए विचारविमर्श के आधार पर इस शक्ति प्राप्त समिति (ई.सी.) ने नवम्बर, 2009 में जीएसटी पर अपना प्रथम विमर्श पत्र (एफडीपी) जारी किया था । इसमें प्रस्तावित जीएसटी की विशेषताओं को बताया गया है और अब तक केंद्र और राज्यो के बीच चलने वाली बात–चीत का आधार तैयार किया गया हैं ।

9.2 जी एस टी का अर्थ

जी.एस.टी. वस्तुओं और सेवाओं के उपभोग पर लगाया गया गंतव्य आधारित कर है। इसे विनिर्माण से अंतिम उपभोग के सभी चरणों पर कर लगाने के लिये प्रस्तावित किया जाता है और पिछले चरणों में भुगतान किये कर को अलग करने के लिये क्रेडिट प्राप्त किया जाता है।

संक्षेप में, केवल मूल्य संवर्धन (value addition) पर ही कर लगाया जाएगा और कर का बोझ अंतिम उपभोक्ता द्वारा वहन किया जाएगा। उस कर–प्राधिकरण को कर की प्राप्ति, जिसके अधिकार क्षेत्र के स्थान पर उपभोग किया जाएगा और जिसे आपूर्ति स्थल भी कहा जाता है, उपर्जित है।

वर्तमान में, केंद्र और राज्यों के बीच वित्तीय अधिकार स्पष्ट रूप से संविधान में सीमांकित किये गये हैं जिनमें संबंधित क्षेत्रों के बीच लगभग किसी तरह का ओवरलैप नही है। केंद्र के अधिकार में वस्तुओं के विनिर्माण (सिवाय मानव उपभोग के लिये शराब, अफीम, नशीले पदार्थों आदि को छोड़कर) पर कर लगाने की शक्तियां हैं, जबकि राज्यों के अधिकार में वस्तुओं की बिक्री पर कर लगाने की शक्तियां प्रदान की गई हैं। अंतर–राज्य बिक्री के मामले में केंद्र सरकार को वस्तुओं की बिक्री पर कर (केंद्रीय बिक्री कर) लगाने की शक्ति है लेकिन, कर पूरी तरह से राज्यों द्वारा एकत्र किया जाता है। जहां तक सेवाओं का प्रश्न है, केवल केंद्र को सेवा कर लगाने के लिये सशक्त किया गया है।

जी.एस.टी. प्रस्तुत करने के लिए संविधान में आवश्यक संशोधन करने की आवश्यकता थी ताकि केंद्र और राज्यों को एक साथ कर लगाने और एकत्र करने के लिये सशक्त किया जा सके। भारत के संविधान को संविधान के (एक सौ एकवां संशोधन) अधिनियम, 2016 द्वारा हाल ही में इस प्रयोजन के लिये संशोधित किया गया था। संविधान का अनुच्छेद 246ए केंद्र और राज्यों का कर लगाने और जी.एस.टी. एकत्र करने के लिए सशक्त करती है।

9.2.1 जी.एस.टी. लागू करने का प्रस्ताव

यह केंद्र और राज्यों के साथ एक साथ सामान्य कर आधार पर आरोपित एक दोहरा जी.एस.टी. होगा। वस्तुओं या सेवाओं की अंतर–राज्य आपूर्ति पर केंद्र द्वारा लगाये गये कर को केंद्रीय जी.एस. टी. (सी.जी.एस.टी.) कहा जायेगा तथा राज्यों द्वारा लगाये करों को राज्य जी.एस. टी. (एस.जी.एस.टी.) कहा जायेगा। इसी प्रकार केंद्र द्वारा प्रत्येक अतंर–राज्य वस्तुओं और सवेाओं की आपूर्ति पर एकीकृत जी.एस.टी. (आई.जी.एस.टी.) लगाने तथा प्रशासित करने की व्यवस्था है। भारत एक संघीय देश है, जहां केंद्र और राज्यों को उनके उपयक्त काननू के माध्यम से करारोपण आरै एकत्र करने की शक्तियां पद्रत्त की गई हैं दोनों सरकार के स्तर पर अलग–अलग जिम्मदेारियों का निष्पादन के अनसुार सविधान में शक्तियों का विभाजन निधारित किया गया है जिसके लिये उन्हें संसाधनों को जुटाने की आवश्यकता होती है। दोहरा जी.एस.टी. , इसीलिये, वित्तीय संघवाद की संवैधानिक आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए बनाया गया है।

9.2.2 जी.एस.टी. में सम्मिलित करने के लिये प्रस्तावित मौजूदा कर

जी.एस.टी. में निम्नलिखित करों को प्रतिस्थापित किया जायेगाः

(i) आज के समय केंद्र द्वारा वर्तमान समय पर लगाए और संग्रह किए जाने वाले करः

- क. केंद्रीय उत्पाद शुल्क
- ख. उत्पाद शुल्क (दवाईयां और प्रसाधन पदार्थ)
- ग. अतिरिक्त उत्पाद शुल्क (विशेष महत्व की वस्तुएं)
- घ. अतिरिक्त उत्पाद शुल्क (कपड़ा आरै कपड़ों की वस्तएु)
- ड़. अतिरिक्त सीमा शुल्क (सामान्यतः सीवीडी से जाना जाता है)
- च. अतिरिक्त विशेष सीमा शुल्क (एसएडी)
- छ. सेवा कर
- ज. केंद्रीय/राज्य अधिशुल्क और उपकर जहां तक वे वस्तुओं और सेवाओं से संबंधित हैं

(ii) उन राज्य करों को स्पष्ट करें जिन्हें जी.एस.टी. में प्रतिस्थापित किया जाएगाः

क. राज्य वैट(मूल्य वर्धित कर)
ख. केंद्रीय बिक्री कर
ग. विलास कर (लक्जरी टैक्स)
घ. प्रवेश कर (सभी रूपों में)
ड़. मनोरंजन और मनोरंजक कर (सिवाय तब जब स्थानीय निकायों द्वारा करारोपण किया गया है)
च. विज्ञापनों पर कर
छ. क्रय कर
ज. लॉटरी, शर्त और जुए पर कर
झ. राज्य अधिभार और उपकर जहां तक वे वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति से संबंधित हैं

जी.एस.टी. परिषद केंद्र और राज्यों को केंद्रीय, राज्यों और स्थानीय निकायों द्वारा करों, उपकरों और अधिभारों के करारोपण के लिये सिफारिष करेगी जिन्हें जी.एस.टी. में सम्मिलित किया जा सकता है।

9.2.3 जी.एस.टी. के दायरे से बाहर रखे जाने वाली प्रस्तावित वस्तुएं

मानव उपभोग के लिए शराब, पेट्रोलियम उत्पाद अर्थात कच्चा पेट्रोलियम तेल, मोटर स्पिरिट (पेट्रोल), हाई स्पीड डीजल, प्राकृतिक गैस और विमानन टर्बाइन ईंधन एवं बिजली।
उपरोक्त वस्तुओं के संबंध में मौजूदा कराधान प्रणाली (वैट और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क) अस्तित्व में जारी रहेगी। तम्बाकू एवं तम्बाकू उत्पाद जीएसटी के अधीन होगें। इसके अतिरिक्त केन्द्र इन उत्पादों पर केन्द्रीय उत्पाद शुल्क आरोपित करने हेतु सषक्त होगा।

9.2.4 जी.एस.टी. करारोपण और उसका प्रशासन

केंद्र सी.जी.एस.टी. और आई.जी.एस.टी. का करारोपण और प्रशासन करेगा, जबकि संबंधित राज्य एस.जी.एस.टी. करारोपण और प्रशासन करेंगे।

वस्तुओं और सेवाओं के एक विशेष लेन–देन के लिये कर एक साथ केंद्रीय जी.एस.टी. (सी.जी. एस.टी) और राज्य जी.एस.टी. (एस.जी.एस.टी.) के अंर्तगत लगाया जाना

केंद्रीय जी.एस.टी. आरै राज्य जी.एस.टी. को एक साथ प्रत्येक वस्तुओं और सेवाओं के लेन देन पर लगाया जायगेा सिवाय छूट दी गई वस्तुओं और सेवाओं और जी.एस.टी. के दायरे से बाहर की वस्तुओं और उन लेनदेन को छोड़कर जिनका मूल्य निर्धारित सीमा से नीचे है। आगे, दोनों पर एक कीमत या मूल्य पर कर लगाया जायेगा राज्य वैट के विपरीत जिसकें अतंर्गत वस्तुओं के मलूय में सेनवैट जाडे क़र वैट लगाया जाता है । जबकि सी.जी.एस.टी. के प्रयोजन के लिये देश के भीतर आपूर्तिकर्ता और आपूर्ति प्राप्तकर्ता के स्थान का कोई अर्थ नहीं है और एस.जी.एस.टी. तभी लगाया जाएगा जब आपूर्तिकर्ता आरै आपूर्ति प्राप्तकर्ता एक ही राज्य के भीतर स्थित हैं।

चित्रण I: मान लीजिए कि सी.जी.एस.टी. की दर 10 प्रतिशत और एस.जी.एस.टी. की दर 10 प्रतिशत है। जब उत्तर प्रदेश में स्टील का एक थोक व्यापारी एक निर्माण कंपनी को स्टील की सलाखों और छड़ों की आपूर्ति करता है जो उसी राज्य के भीतर स्थित है; मान लें कि 100 रूपये में, डीलर 10 रूपये का सी.जी.एस.टी. और 10 रूपये का एस.जी.एस.टी. माल के मूल दाम में जोड़कर वसूल करेगा। उस सी.जी.एस.टी. की रकम केंद्र सरकार के खाते में जमा करनी है, जबकि एस.जी.एस.टी. के हिस्से की राशि संबंधित राज्य सरकार के खाते जमा करना आवश्यक होगा। जाहिर है, कि उसे वास्तव में 20 रुपये (10+10 रुपये) नकद राशि में जमा करना आवश्यक नहीं होगा क्योंकि वह इस दायित्व को अपनी खरीद पर भुगतान किये गये सी.जी.एस.

टी. या एस.जी.एस.टी. के (इनपुट, कहते हैं) के विरूद्ध समायोजित करने का हकदार होगा। लेकिन सी.जी.एस.टी. भुगतान करने के लिए उसे केवल अपनी खरीद पर सी.जी.एस.टी. क्रेडिट का उपयोग करने की ही अनुमति दी जाएगी जबकि सी.जी.एस. टी. के लिये वह अकेले एस.जी. एस.टी. के क्रेडिट का उपयोग कर सकता है। दूसरे शब्दों में, एस.जी.एस.टी. क्रेडिट को, आमतौर पर, एस.जी.एस.टी. के भुगतान के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। न ही एस.जी.एस.टी. क्रेडिट को सी.जी.एस.टी. के भुगतान के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

चित्रण II: मान लीजिए, फिर अनुमानतः कि सी.जी.एस.टी. की दर 10 प्रतिषत और एस.जी.एस. टी. की दर भी 10 प्रतिषत है। जब मुंबई में स्थित एक विज्ञापन कंपनी महाराष्ट्र राज्य के भीतर स्थित एक साबुन विनिर्माण कंपनी के लिए विज्ञापन सेवाओं की आपूर्ति करती है, आईये मान लेते हैं कि 100 रूपये, विज्ञापन कंपनी सेवा की मूल कीमत पर 10 रूपये सी.जी.एस.टी. और 10 रूपये एस.जी. एस.टी. शुल्क लगायेगी। उसे सी.जी.एस.टी. का हिस्सा केंद्र सरकार के खाते में, और एस.जी.एस.टी. हिस्सा संबंधित राज्य सरकार के खाते में जमा करना आवश्यक होगा। बेशक, उसे फिर से, वास्तव में 20 रुपये (10+10 रु) का नकद भुगतान करने की जरूरत नहीं है क्योंकि वह इस दायित्व को अपनी खरीद पर भुगतान किये गये सी.जी.एस.टी. या एस.जी.एस.टी. के (इनपुट जैसे स्टेशनरी, ऑफिस उपकरण, कलाकारों की सेवाएं इत्यादि कहते हैं) के विरूद्ध समायोजित करने का हकदार होगा। लेकिन सी.जी.एस.टी. भुगतान करने के लिए उसे केवल अपनी खरीद पर सी.जी.एस.टी. क्रेडिट/जमा का उपयोग करने की ही अनुमति दी जाएगी जबकि एस.जी.एस.टी. के लिये वह अकेले एस.जी.एस.टी. के क्रेडिट का उपयोग कर सकता है। दूसरे शब्दों में, सी.जी.एस.टी. क्रेडिट को, आमतौर पर, एस.जी.एस.टी. के भुगतान के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। न ही एस.जी.एस.टी. क्रेडिट को सी.जी.एस.टी. के भुगतान के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

9.2.5 प्रस्तावित जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत जी.एस.टी. भुगतान करने के लिए उत्तरदायी

जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत, कर का भुगतान वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति पर कराधीन व्यक्ति द्वारा देय है। कर के भुगतान के लिए दायित्व तब उत्पन्न होता है जब कराधीन व्यक्ति छूट दी गई सीमारेखा (threshold exemption) को पार कर लेता है, यानि 10 लाख रुपए (पूर्वोत्तर राज्यों के लिए यह 5 लाख रुपये होगी) सिवाय कुछ विशिष्ट मामलों को छोड़कर कराधीन व्यक्ति जी.एस.टीका भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है भले ही उसने निर्धारित सीमा रेखा की छूट को पार नहीं किया है। सी.जी.एस.टी./एस.जी.एस.टीअंतर–राज्य में आपूर्ति की गई सभी वस्तुओं और/या सेवाओ पर देय है। सी.जी.एस.टी./एस.जी.एस.टी. और आई.जी.एस.टी संबंधित अधिनियमों की अनुसूचियों में निर्दिष्ट दरों पर देय हैं।

9.2.6 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत वस्तुओं और सेवाओं का वर्गीकरण

एच.एस.एन. (हार्मोनाइज़्ड सिस्टम आफ नॉमेंक्लेचर) कोड को जी.एस.टी. व्यवस्था के अंर्तगत वस्तुओं को वर्गीकृत करने के लिए प्रयोग किया जाएगा। करदाताओं जिनकी कुल बिक्री/टर्नओवर 1.5 करोड रुपये से ऊपर है लेकिन 5 करोड़ रुपये से कम है, वे 2 अंकों के कोड का उपयोग कर पाएंगे और वह करदाता जिनकी कुल बिक्री/टर्नओवर 5 करोड रुपये और उससे अधिक है वह 4 अंकों के कोड का उपयोग करेंगे। ऐसे करदाताओं को जिनकी कुल बिक्री 1.5 करोड रुपये के नीचे है उन्हें अपने चालान/बिलों पर एचएसएन कोड का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। सेवाओं को सर्विस एकाउंटिंग कोड के अनुसार वर्गीकृत किया जाएगा (एस.ए. सी.)

9.3 माल और सेवा कर के लाभ

माल और सेवा कर से होने वाले लाभ निम्नलिखित है:

1. माल और सेवा कर (जीएसटी) पूरे देश के लिए लाभदायक व्यवस्था है। इससे अर्थव्यवस्था के सभी हितधारकों, सरकार और उपभोक्ताओं को लाभ होगा । इससे वस्तुओं एवं सेवाओं की लागत में कमी आएगी । अर्थव्यवस्थास को प्रोत्साहन मिलेगा और भारतीय वस्तुएँ एवं सेवाएँ वैश्विक स्तोर पर प्रतिस्पर्धी बनेंगी । जीएसटी का लक्ष्य कर दरों और प्रक्रियाओं में समरूपता लाकर और आर्थिक बाधाओं को हटाकर भारत को एक साझा राष्ट्रीय बाजार बनाना है जिससे राष्ट्रीय स्तर पर एक एकीकृत अर्थव्यवस्था का पथ प्रशस्त हो सके । अधिकांश केन्द्रीय एवं राज्य अप्रत्यक्ष करों को एकल कर में समाहित करके एवं समूचे वैल्यूं–चेन में पूर्व–चरण के प्रदाय (सप्लाई) में भुगतान किये गए करों के समंजन से व्यवसायों में प्रपत्तन (कैस्केअडिंग– यानि कर पर कर का लगना) के दुष्प्रभाव कम होंगे, प्रतिस्पर्धात्मयकता बढ़ेगी और चल निधि (लिक्विडिटी) में सुधार होगा। जीएसटी एक गंतव्य–आधारित कर है । यह बहु–स्तरीय संग्रहण विधि का अनुसरण करता है । इसमें प्रदाय (सप्लाई) के हर स्तर पर कर का भुगतान होगा और पिछले स्तर पर चुकाए गए कर का क्रेडिट प्रदाय के अगले स्तर पर समंजन (सैट–ऑफ) के लिए उपलब्ध होगा । इससे कर भार अंतिम उपभोक्ता की ओर स्थानांतरित होता है और उद्योगों को बेहतर नकदी प्रवाह और बेहतर कार्यशील पूंजी प्रबंधन से लाभ होता है ।
2. जीएसटी मुख्यीत: प्रौद्यौगिकी संचालित है । इससे मानवीय हस्तक्षेप बहुत हद तक कम हो जायेगा और जिससे निर्णयों में तेजी आएगी ।
3. माल और सेवा कर से भारत में उत्पादित वस्तुऐं एवं सेवाएँ भारत के साथ–साथ अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पार्धी बनेंगी और इससे भारत सरकार की महत्वपूर्ण पहल ''मेक इन इंडिया'' को बहुत प्रोत्साहन मिलेगा । इसके अलावा सभी आयातित वस्तुओं पर एकीकृत माल और सेवा कर (आईजीएसटी) आरोपित किया जाएगा जो कि केन्द्रीय जीएसटी + राज्य जीएसटी के समतुल्य होगा । इससे आयातित उत्पादों और स्थानीय उत्पादों पर कराधान में समता आएगी ।
4. वर्तमान व्यवस्था के विपरीत, जहां केन्द्र और राज्यों के बीच अप्रत्यक्ष करों की विखंडित प्रकृति के कारण कुछ करों का प्रतिदाय (रिफंड) नहीं हो पाता है, जीएसटी व्यंवस्थाा के अधीन निर्यात पर पूर्ण रूप से संगृहित कर का प्रतिदाय होगा । इससे अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भारतीय निर्यात को बढ़ावा मिलेगा और तदैव भुगतान संतुलन की स्थिति में सुधार होगा । साफ ट्रैक रिकॉर्ड वाले निर्यातकों को निर्यात से संबंधित दावों का सात दिनों के भीतर 90: प्रतिदाय (रिफंड) कर प्रोत्साहित किया जाएगा।
5. माल और सेवा कर के कारण कराधार बढ़ने और कर अनुपालन में सुधार होने से सरकारी राजस्व में वृद्धि आने का अनुमान है । जीएसटी के कारण भारत के 'व्यवसाय करने की सुगमता' इंडेक्स (ईज ऑफ डुईंग बिजनेस) की श्रेणीक्रम (रैकिंग) में सुधार आने की संभावना है और सकल घरेलू उत्पाजद में 1.5% से 2% तक वृद्धि होने का अनुमान है ।
6. माल और सेवा कर से अप्रत्य.क्ष कर कानूनों में और अधिक पारदर्शिता आएगी । चूँकि समूची प्रदाय श्रृंखला (सप्लानई चेन) के प्रत्येरक स्तर पर कर लगेगा और जिसके साथ पिछले स्तर पर चुकाए गए करों का प्रत्यंय (क्रेडिट) प्रदाय के अगले स्तर पर

समंजन (सैट–ऑफ) के लिए उपलब्ध होगा, प्रदाय के अर्थतंत्र और कर वैल्यू– का सुगमता से आकलन किया जा सकेगा । इससे उद्योगों को क्रेकडट लेने में और सरकार को चुकाए गए करों की सत्यता को जाँचने एवं उपभोक्ता को चुकाए गए कर की सही राशि जानने में सहायता मिलेगी।

7. करदाताओं को केन्द्र और राज्यो सरकारों के अनेक अप्रत्यक्ष कर कानूनों जैसे केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, सेवा कर, वैट, केन्द्रीय बिक्री कर, चुंगी, प्रवेश कर, लक्जरी कर, मनोरंजन कर, आदि का अभिलेख (रिकॉर्ड) रखने और अनुपालन करने की आवश्यकता नहीं होगी । उनको सभी राज्यान्तर्गत प्रदायों के लिए केन्द्रीय माल और सेवा कर अधिनियम तथा राज्य (अथवा संघ राज्यक्षेत्र) माल और सेवा कर अधिनियम (जिनके लगभग समरूप कानून हैं) और सभी अन्तरराज्यिक प्रदायोंके लिए एकीकृत माल और सेवा कर अधिनियम (जिनकी अधिकांश मूल विशेषताएँ भी सीजीएसटी और एसजीएसटी अधिनियम से व्युषतपन्नट हैं) के संबन्धए में केवल रेकॉर्ड रखने तथा अनुपालन दर्शाने की आवश्यकता है ।

9.3.1 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत छोटे कर दाताओं के लिये उपलब्ध लाभ

वे कर दाता जिनका एक वित्तीय वर्ष में कुल कारोबार (10 लाख रूपये) तक है उन्हें कर से मुक्त किया जाएगा। (सकल कुल बिक्री में कुल कर योग्य और गैर–कर योग्य आपूर्ति, छूट दी गई आपूर्ति और वस्तुओं और सेवाओं के निर्यात का कुल मूल्य शामिल होगा और कर अर्थात जी.एस.टी. शामिल नहीं होंगे।) सकल कुल बिक्री की गणना अखिल भारतीय आधार पर की जाएगी। पूर्वोत्तर राज्यों और सिक्किम के लिए, छूट सीमा (रुपए 5 लाख) होगी। सीमा में छूट के पात्र सभी करदाताओं को इनपुट टैक्स क्रेडिट (आई.टी.सी.) लाभ के साथ कर के भुगतान करने का विकल्प उपलब्ध होगा। अंतर–राज्य आपूर्ति करने वाले कर दाताओं या रिवर्स चार्ज के आधार पर कर का भुगतान कर रहे कर दाताओं को सीमा में छूट की पात्रता प्राप्त नहीं होगी।

9.4 जीएसटी की मुख्य विशेषताएं

माल और सेवा कर की मुख्य विशेषताएं निम्नयलिखित हैं :–

i) वस्तुओं के निर्माण अथवा बिक्री पर या सेवाओं के प्रावधान पर देय मौजूदा कराधानों की तुलना में माल और सेवा कर वस्तुओं अथवा सेवाओं के प्रदाय (सप्लाई) पर लागू होगा । यह एक गंतव्य – आधारित उपभोग कर होगा । जहाँ वस्तु एवं सेवा का उपभोग होगा, उसी राज्य अथवा संघ राज्यक्षेत्र को यह कर उपार्जित होगा । यह एक दोहरा कर होगा जिसमें केन्द्र और राज्यो दोनों एक साथ समान कर आधार पर कर उद्ग्रहण एवं संग्रहण करेंगे । वस्तुओं अथवा सेवाओं के राज्यान्तर्गत प्रदायों पर केन्द्र द्वारा वसूला जाने वाला जीएसटी केन्द्रीय माल औार सेवा कर (सीजीएसटी) और राज्यों तथा विधान मंडल वाले संघ राज्यक्षेत्रों/बिना विधान मंडल वाले संघ राज्याक्षेत्रों द्वारा वसूला जाने वाला माल और सेवा कर क्रमश: राज्य जीएसटी (एसजीएसटी)/संघ राज्यक्षेत्र जीएसटी (यूटीजीएसटी) कहलाएगा ।

ii) मानवीय उपभोग हेतू एल्कोहलिक लिकर एवं पांच पेट्रोलियम उत्पीदों, यथा अपरिष्कृएत पेट्रोलियम (पेट्रोलियम क्रूड),मोटर स्पिरिट (पेट्रोल), उच्च गति डिजल (हाई स्पीडड डीजल), प्राकृतिक गैसव (नैचुरल गैस) एवं विमानन टरबाइन ईंधन (एविएशन टर्बाईन फ्यूल) के अलावा सभी वस्तुओं पर माल और सेवा कर लागू होगा । यह कर कुछ सेवाओं, जिन्हें विनिर्दिष्ट किया जाना है, को छोड़कर सभी सेवाओं, पर लागू होगा ।

केन्द्र द्वारा वर्तमान में उद्ग्रहीत एवं एकत्र किए जाने वाले निम्नालिखित करों की जगह माल और सेवा कर लगेगा :–

1. केन्द्रीय उतपाद शुल्क;
2. उत्पाद शुल्क डयूटी (औशधीय और प्रसाधन निर्मितियाँ);
3. उत्पाद शुल्क की अतिरिक्त डयूटी (विशेष महत्वरकी वस्तुएँ);
4. उत्पाद शुल्क की अतिरिक्त डयूटी (सामान्यत: सीवीडी के रूप में जाना जाता है);
5. सीमा शुल्क की विशेष अतिरिक्ति डयूटी (एसएडी);
6. सेवा कर;
7. केन्द्रीय प्रभार एवं उपकर, जहाँ तक ये वस्तुओं की आपूर्ति एवं सेवाओं से संबंधित हैं ।

iii) राज्यं कर जिनको माल और सेवा कर में सम्मिलित किया जाएगा :–

1. राज्य वैट;
2. केन्द्रीय बिक्री कर;
3. लक्जरी कर;
4. एंट्री कर(सभी प्रकार के);
5. मनोरंजन एवं आमोद–प्रमोद कर (सिवाय जब यह कर स्थानीय निकायों द्वारा वसूला जाता हो);
6. विज्ञापनों पर कर;
7. क्रय कर;
8. लॉटरी, सट्टेबाजी एवं जुए पर कर;
9. राज्य प्रभार एवं उपकर, जहाँ तक वे वस्तु ओं एवं सेवाओं के प्रदाय से संबंधित हैं ।

iv) छूट प्राप्तं वस्तुओं एवं सेवाओं की सूची केन्द्रं एवं राज्योंं के लिए समान होगी ।

v) शुरूआती (थ्रेशहोल्ड) छूट: एक वित्तीय वर्ष में 20 लाख रूपये तक के संकलित आवर्त (कुल टर्नओवर) वाले करदाता को कर से छूट मिलेगी । कुल टर्नओवर की गणना अखिल भारतीय स्तमर पर होगी । ग्याणरह (11) विशेष दर्जा प्राप्तत राज्योंं, जो पूर्वोत्तर में हैं, या पहाड़ी राज्य हैं, के लिए शुरूआती छूट 10 लाख रूपयो होगी । शुरूआती छूट के पात्र करदाताओं के पास इनपुट कर प्रत्यय (क्रेडिट) लाभ के साथ कर भुगतान करने का विकल्पी होगा । करदाता जो अन्तरराज्यिक प्रदाय करते हैं अथवा रिवर्स चार्ज आधार पर कर का भुगतान करते हैं वे शुरूआती छूट के पात्र नहीं होंगे ।

vi) कम्पोजिशन (सम्मिश्रण उदग्रहण) योजना

एक वित्तीय वर्ष में 50 लाख रूपये तक संकलित आवर्त (कुल टर्नओवर) के छोटे करदाता कम्पोजिशन योजना (सम्मिश्रण उदग्रहण) हेतु पात्र होंगे । ऐसा करदाता इस योजना के अधीन इनपुट कर प्रत्यय (आईटीसी)लाभ लिए बिना वर्ष के दौरान अपनी टर्नओवर के विनिर्दिष्ट प्रतिशत के बराबर कर का भुगतान करेगा। सीजीएसटी एवं एसजीएसटी/ यूटीजीएसटी, प्रत्येक के लिए कर की दर निम्नलिखित से ज्यादा नहीं होगी :–

- रेस्टोरेंट आदि के मामले में 25% ।
- विनिर्माता के मामले में राज्य/संघ राज्य क्षेत्र में टर्नओवर का 1% ।
- अन्यक प्रदायों के मामले में राज्य/संघ राज्यतक्षेत्र में टर्नओवर का 0.5 % ।

कम्पोजिशन योजना (सम्मिश्रण उदग्रहण) को चुनने वाले करदाता अपने उपभोक्ताओं से कोई कर नहीं लेंगें न ही वे किसी इनपुट कर प्रत्यय का दावा करने के हकदार होगें । कम्पोपजिशन (सम्मिश्रण उदग्रहण) योजना वैकल्पिक है । अन्तरराज्यिक प्रदाय करने वाले करदाता कम्पोपजिशन (सम्मिश्रण उदग्रहण) योजना के हकदार नहीं होंगे । जीएसटी कॉउंसिल (परिषद्) की योजना के हकदार नहीं होंगे। जीएसटी कॉउंसिल (परिषद) की संस्तुति पर सरकार योजना के लिए छूट की सीमा को एक करोड़ रूपये तक बढ़ा सकती है ।

vii) वस्तुओं एवं सेवाओं की अन्तरराज्यिक प्रदायों पर केन्द्र द्वारा एकीकृत माल और सेवाकर का उदग्रहण एवं संग्रहण किया जाएगा। केन्द्र एवं राज्योंस के बीच आवधिक रूप से अकाउंटस का निपटान यह सुनिश्चित करने हेतु किया जाएगा कि आईजीएसटी का एसजीएसटी/ यूटीजीएसटी हिस्सा उस गंतव्य राज्य/संघ राज्यं क्षेत्र को स्थानांतरित हो जाए जहाँ वस्तुओं एवं सेवाओं का अन्ततः उपयोग किया गया ।

viii) इनपुट कर प्रत्येय (क्रेडिट)का उपयोग

इनपुट पर भुगतान किए गए करों का इनपुट कर प्रत्यय (क्रेडिट) लेने की अनुमति करदाता को होगी एवं वे आउटपुट टैक्स) के भुगतान हेतु इसका उपयोग करेगें । तथापि सीजीएसटी के अकाउंट पर लिए गए किसी इनपुट कर प्रत्यय का उपयोग एसजीएसटी/यूटीजीएसटी के भुगतान के लिए एवं इसके विलोमतः (वाइस–वर्सा) नहीं होगा। आईजीएसटी क्रेडिट का उपयोग क्रमशः आईजीएसटी, सीजीएसटी एवं एसजीएसटी/ यूटीजीएसटी के भुगतान हेतु करने की अनुमति होगी ।

ix) एच एस एन (हार्मोनाइज्डट सिस्टक ऑफ नॉमनक्ले्चर) कोड का उपयोग माल और सेवा कर व्यवस्था के अधीन वस्तुओं के वर्गीकरण हेतु किया जाएगा । ऐसे करदाता जिनका अर्नओवर 1.5 करोड़ रूपये से ऊपर है परन्तु 5 करोड से कम है, 2–डिजिट कोड का इस्तेरमाल करेंगे एवं करदाता जिनका टर्नओवर 5 करोड़ या उससे ऊपर है, 4– डिजिट कोड का इस्तेभमाल करेंगे । एसे करदाता, जिनका टर्नओवर 1.5 करोड़ रूपये से नीचे है, से अपने बीजक (इन्वायस) में एचसएएन का उल्लेहख करना अपेक्षित नहीं होगा ।

x) एसईजेड को किए गए निर्यात एवं प्रदाय को जीरो रेटेड प्रदाय माना जाएगा। निर्यातक के पास विकल्पट रहेगा कि या तो वह आउटपुट पर कर का भुगतान करे एवं इसके प्रतिदाय (रिफंड) का दावा करे या बिना कर भुगतान के बांड के अधीन निर्यात करे एवं इनपुट कर प्रत्यय के प्रतिदाय का दावा करे ।

xi) वस्तुओं एवं सेवाओं के आयात को अन्तरराज्यिक प्रदाय माना जाएगा एवं आयात पर लागू सीमा शुल्क के अतिरिक्त आईजीएसटी लगेगा । भुगतान किया गया आईजीएसटी आगामी प्रदाय पर इनपुट कर प्रत्याय के रूप में उपलब्ध रहेगा ।

9.5 पंजीकरण

वस्तु एवं सेवा कर (जी.एस.टी.) के अंर्तगत पंजीकरण करवाना व्यवसाय को निम्नलिखित लाभ प्रदत्त करेगाः

- वस्तुओं और सेवाओं के आपूर्तिकर्ता के रूप में कानूनी मान्यता प्राप्त होती है ।

- इनपुट वस्तुओं या सेवाओं के समुचित कर भुगतान के लेखा जिन्हें वस्तुओं या सेवाओं की आपूर्ति या व्यापार द्वारा दोनो पर देय जी.एस.टी. भुगतान के लिये प्रयोग किया जा सकता है।
- अपने खरीदारों से कानूनी तौर पर कर जमा करने और वस्तुओं या सेवाओं की आपूर्ति पर खरीदार या प्राप्तकर्ताओं को देय करों को क्रेडिट करने के लिये अधिकृत किया है।

बिना जी.एस.टी. पंजीकरण के कोई भी व्यक्ति न तो अपने ग्राहकों से जी.एस.टी. एकत्र कर सकता है और न ही अपने द्वारा भुगतान किए गए जी.एस.टी. के किसी भी इनपुट टैक्स क्रेडिट का दावा कर सकता हैं। पंजीकरण के लिए जहां पर आवेदन किया गया है उसकी प्रस्तुति के 30 दिनों के भीतर व्यक्ति पंजीकरण करने के लिए उत्तरदायी हो जाता है, पंजीकरण की प्रभावी तिथि उसके पंजीकरण के अपने दायित्व की तिथि होगी। जहाँ आवेदक द्वारा पंजीकरण का आवेदन प्रस्तुत किया जा चुका है उसके 30 दिनों के बाद वह पंजीकरण का उत्तरदायी बन जाता है,पंजीकरण की प्रभावी तिथि उसे पंजीकरण प्रदान करने की तारीख होगी।

स्वतः पंजीकरण के मामले में, अर्थात स्वेच्छा से पंजीकरण लेना जबकि कर भुगतान के लिए सीमा में छूट की सीमा के भीतर है, पंजीकरण की प्रभावी तिथि पंजीकरण के आदेश की तिथि होगी। कोई भी आपूर्तिकर्ता जो भारत के किसी भी स्थान से व्यापार कर रहा है और जिसकी कुल बिक्री एक वित्तीय वर्ष में निर्धारित सीमा से अधिक है वह स्वयं पंजीकरण के लिये उत्तरदायी है। हालांकि, एम.जी.एल. अनुसूची III में उल्लिखित व्यक्तियों की कुछ श्रेणियों को इस सीमा का ख्याल किये बिना पंजीकृत किया जा सकता है। एक किसान को कराधीन व्यक्ति नहीं माना जायेगा और वह पंजीकरण करने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

एम.जी.एल. की अनुसूची III के पैरा 5 के अनुसार, निम्नलिखित श्रेणियों के व्यक्तियों को अनिवार्य रूप से निर्धारित सीमा की परवाह किए बिना पंजीकृत करवाना आवश्यक होगा;

क) व्यक्ति जो किसी प्रकार की अंतर–राज्य कराधीन आपूर्ति कर रहे हैं;
ख) आकस्मिक कराधीन व्यक्ति;
ग) वे व्यक्ति जिन्हें रिवर्स प्रभार के अंर्तगत कर भुगतान करना आवष्यक है;
घ) अनिवासी (एनआरआई) कराधीन व्यक्ति
ड़) वे व्यक्ति जिन्हें धारा 37 के अंर्तगत कर की कटौती करना आवश्यक है;
च) वे व्यक्ति जो अन्य पंजीकृत कराधीन व्यक्तियों की ओर से वस्तुओं और/या सेवाओं की आपूर्ति करते हैं, चाहे अभिकर्ता या अन्य किसी रूप में;
छ) इनपुट सेवा वितरक/डिस्ट्रीब्यूटर;
ज) वे व्यक्ति जो ब्रांडेड सेवाओं को छोड़कर वस्तुओं और/या सेवाओं की आपूर्ति करते हैं, इलेक्ट्रॉनिक कामर्स ऑपरेटर के माध्यम से;
झ) प्रत्येक इलेक्ट्रॉनिक कामर्स ऑपरेटर;
ञ) एक एग्रीगेटर जो सेवाओं की आपूर्ति अपने ब्रांड नाम या ट्रेड नाम से प्रदान करता है; तथा
ट) ऐसे अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग जिन्हें परिषद की सिफारिशों पर केन्द्र सरकार या राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किया जा सकता है।

प्रत्येक वह व्यक्ति जो पंजीकरण लेने के लिए उत्तरदायी है उसे प्रत्येक उन राज्यों में अलग–अलग पंजीकरण लेना आवश्यक है जहां पर वह व्यवसाय संचालित कर रहा है और मॉडल जी.एस.टी. कानून की धारा 19 की उप–धारा (1) के अनुसार जी.एस.टी. का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है। प्रत्येक व्यक्ति के पास मॉडल जी.एस.टी. कानून की धारा 19 के अंर्तगत

पंजीकरण प्राप्त करने की पात्रता के क्रम में आयकर अधिनियम, 1961 (1961 का 43) के अधीन जारी किया गया स्थायी खाता संख्या (पैन) रखना अनिवार्य होगा।

हालांकि एम.जी.एल. की धारा 19 (4ए) के अनुसार, अनिवासी/एनआरआई कराधीन व्यक्ति के लिये पैन रखना अनिवार्य नहीं है और उसे किसी अन्य दस्तावेज के आधार पर पंजीकरण दिया जा सकता है, जिस रूप में उसे निर्धारित किया जा सकता है। एक बार पंजीकरण प्रमाण पत्र प्रदान करने पर वह स्थायी हो जाता है जब तक कि उसे अभ्यर्पण, रद्द, निलंबित या वापस नहीं ले लिया जाता।

सरकारी प्राधिकरणों/सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (पी.एस.यू.) को जो जी.एस.टी. माल की आगे आपूर्ति नहीं कर रहे (और इसलिये जी.एस.टी. पंजीकरण प्राप्त करने के लिए उत्तरदायी नहीं है) लेकिन अंतर–राज्यीय खरीद कर रहे हैं, उन्हें संबंधित राज्य कर प्राधिकारियों द्वारा जी. एस.टी. पोर्टल के माध्यम से एक विशिष्ट पहचान संख्या (आई.डी.) प्रदान किया जाएगा। ऐसे करदाता जो आईटी–कुशल नहीं हैं, उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए उन्हें निम्नलिखित सुविधाएं उपलब्ध की जाएंगीः–

टैक्स रिटर्न प्रिपेयरर (टी.आर.पी): एक कराधीन व्यक्ति स्वयं अपना पंजीकरण आवेदन तैयार कर सकते हैं/ रिटर्न भर सकते हैं या टी.आर.पी. को संपर्क कर सकते हैं। टी.आर.पी. कथित पंजीकरण दस्तावेज/निर्धारित प्रारूप में रिटर्न कराधीन व्यक्ति द्वारा दी गई सूचना के आधार पर तैयार करेगा। टी.आर.पी. द्वारा तैयार किये प्रारूप में सम्मिलित जानकारियों की शुद्धता और कानूनी जिम्मेदारी केवल कराधीन व्यक्ति पर होगी और टी.आर.पी. किसी त्रुटि या गलत जानकारी के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

सुविधा केंद्र (एफ.सी.): दस्तावेजों की विधिवत अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित कराधीन व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत सारांश शीट सहित प्रारूपों और दस्तावेज़ों के डिजिटलीकरण और/या अपलोडिंग के लिए जिम्मेदार होंगे। एफसी आईडी और पासवर्ड का उपयोग करते हुए आम एफसी पोर्टल पर डाटा अपलोड करने के बाद, स्वीकृति/पावती का एक प्रिंट–आउट लेगा और एफसी द्वाराहस्ताक्षर करने के बाद वह कराधीन व्यक्ति को उसके रिकार्ड के लिये सौंप दिया जायेगा। अधिकृत हस्ताक्षरकर्ता द्वारा विधिवत हस्ताक्षर की गई सारांश शीट को एफसी स्कैन करने के बाद अपलोड कर देगा।

9.6 आपूर्ति का अर्थ, संभावना आपूर्ति का समय

शब्द 'आपूर्ति' बहुत व्यापक शब्द है और इसमें वस्तुओं और/या सेवाओं की आपूर्ति के सभी रूप जैसे बिक्री, स्थानांतरण, वस्तु विनिमय, अदला–बदली, लाइसेंस, किराया, पट्टा या निपटान करना या करने के विचार पर एक व्यक्ति द्वारा उसके व्यापार को आगे बढ़ाने के प्रयोजन के लिये सहमति देना शामिल है। इसमें सेवाओं का आयात भी शामिल है। मॉडल जी. एस.टी. कानून आपूर्ति के दायरे के भीतर बिना प्रतिफल के कुछ लेनदेन को षामिल करने की भी व्यवस्था प्रदान करता है।

वस्तुओं के उपयोग के अधिकार के हस्तांतरण को सेवाओं की आपूर्ति के रूप में माना जायेगा क्योंकि इस प्रकार के हस्तांतरण में वस्तुओं का शीर्षक/नाम हस्तांतरित नहीं हुआ। इस तरह के लेन–देन को विशेष रूप से एम.जी.एल. की अनुसूची–II में सेवा की आपूर्ति के रूप में माना जायेगा।

आपूर्ति का समय

आपूर्ति का समय निर्धारित करता है कि कब जी.एस.टी. कर का दायित्व उत्पन्न होता है। यह भी इंगित करता है कि कब आपूर्ति पूर्ण कर दी गई समझी जायेगी। एमजीएल वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति के लिये अलग–अलग समय प्रदान करता है। वस्तुओं के विपरीत,

सेवाओं के मामले में, आपूर्ति का समय इस तथ्य के आधार पर निर्धारित करता है कि क्या सेवाओं की आपूर्ति के लिए चालान/बिल निर्धारित अवधि के भीतर या निर्धारित अवधि के बाद जारी कर दिया गया है।

9.7 कर का जी.एस.टी. भुगतान

जी.एस.टी. व्यवस्था में, किसी भी राज्यांतरिक (राज्य के भीतर) आपूर्ति के लिए, किया जाने वाला करों का भुगतान केंद्रीय जी.एस.टी. (सी.जी.एस.टी., केन्द्र सरकार के खाते में जमा होगा) और राज्य जी.एस.टी. (एस.जी.एस.टी., संबंधित राज्य सरकार के खाते में जमा होगा)। किसी भी अंतर–राज्य आपूर्ति के लिए, किया जाने वाला कर भुगतान एकीकृत जी.एस.टी. (आई. जी.एस.टी.) है जिसमें दोनों सी.जी.एस.टी. और एस.जी.एस.टी. के घटक सम्मिलित होंगे। इसके अतिरिक्त, पंजीकृत व्यक्तियों की कुछ श्रेणियों को कर स्रोत पर कटौती (टी.डी.एस.) और कर स्रोत पर एकत्रित (टी.सी.एस.) सरकारी खाते में भुगतान करने की आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त, जहां लागू हो, ब्याज, जुर्माना, फीस और कोई भी अन्य भुगतान करना आवश्यक होगा।

आमतौर पर जी.एस.टी. भुगतान का दायित्व वस्तुओं या सेवा आपूर्तिकर्ता का है। हालांकि कई निर्दिष्ट मामलों में जैसे आयात और अन्य अधिसूचित आपूर्तियों के लिये, रिवर्स प्रभार व्यवस्था के अंर्तगत प्राप्तकर्ता पर यह दायित्व डाला जा सकता है। इसके अतिरिक्त, कुछ मामलों में, भुगतान करने का दायित्व तीसरे व्यक्ति पर होता है उदाहरणार्थ (टी.सी.एस. के मामले के लिये ई–कॉमर्स ऑपरेटर जिम्मेदार है या टी.डी.एस. के लिये सरकारी विभाग जिम्मेदार हैं)। जैसा कि धारा 12 में स्पश्ट किया गया है वस्तुओं की आपूर्ति के समय और धारा 13 में सेवाओं की आपूर्ति के समय किया जाना चाहिये। समय आम तौर पर इन तीन में से सबसे पहले का समय होगा, अर्थात भुगतान की प्राप्ति पर, चालान/बिल जारी करने पर या आपूर्ति पूरा हो जाने के बाद का समय। उपरोक्त धाराओं में विभिन्न स्थितियों की परिकल्पना और अलग–अलग कर केंद्र स्पष्ट किये गये हैं।

भुगतान निम्न विधियों द्वारा किया जा सकता हैः

(i) आम पोर्टल पर अनुरक्षित करदाता के ऋण खाता बही में नामे के माध्यम से – केवल कर का भुगतान किया जा सकता है। ऋण खाता बही में ब्याज, जुर्माना और शुल्क का भुगतान नामे द्वारा नहीं किया जा सकता। करदाताओं को (इनपुट टैक्स क्रेडिट) इनपुट/आदानों पर भुगतान का क्रेडिट लेने और उसका उपयोग आउटपुट कर के भुगतान करने के लिए अनुमति दीजायेगी। हालांकि, सी.जी.एस.टी. के कारण इनपुट टैक्स क्रेडिट को एस.जी.एस.टी. के भुगतान के लिये उपयोग नहीं किया जायेगा और विलोमतः। आई.जी.एस.टी. के क्रेडिट को आई.जी.एस.टी., सी.जी.एस.टी. और एस.जी. एस.टी. के भुगतान के लिए उस अनुक्रम में उपयोग करने की अनुमति दी जाएगी।

(ii) आम पोर्टल पर अनुरक्षित करदाता के नकद खाता बही के नामे द्वारा नकद रूप में। विभिन्न माध्यमों से नकद खाता बही में राशि जमा की जा सकती है, अर्थात, ई–भुगतान (इंटरनेट बैंकिंग, क्रेडिट कार्ड, डेबिट कार्ड); पैसा भेजने का सबसे तेज तरीका/रियल टाइम ग्रॉस सेटलमेंट (आर.टी.जी.एस.)/नेशनल इलेक्ट्रॉनिक फंड ट्रांस्फर (एन.ई.एफ.टी.); जी.एस.टी. जमा स्वीकार करने के लिए अधिकृत बैंकों की शाखाओं में काउंटरों पर भुगतान।

9.8 जीएसटी परिषद्

जीएसटी परिषद् (जीएसटी काउंसिल) की व्यववस्था केन्द्र एवं राज्यों के साथ–साथ राज्यों के बीच जीएसटी के विभिन्न पहलुओं पर संगतिकरण सुनिश्चित करेगी । यह विशेष रूप से प्रावधान किया गया है कि जीएसटी परिषद अपने विभिन्न कार्यों के निर्वहन में जीएसटी के सामंजस्य पूर्ण संरचना के सृजन की आवश्यकता तथा वस्तुओं एवं सेवाओं हेतु सुव्यवस्थित राष्ट्रीय बाजार के विकास के लक्ष्यों द्वारा मार्गदर्शित होगी । जीएसटी कॉउंसिल अपने द्वारा की गई संस्तुतियों या इनके क्रियान्वयन से उत्पन्न होने वाले विवादों के अधिनिर्णयन हेतु एक तंत्र स्थापित करेगी ।

जी.एस.टी. परिषद के गठन में केंद्रीय वित्त मंत्री (जो परिषद के अध्यक्ष होंगे), राज्यमंत्री (राजस्व) और राज्य वित्त/कराधान मंत्री सम्मिलित होंगे जो केंद्र और राज्यों को निम्न पर अपनी सिफारिशें करेंगे:

(i) केंद्र, राज्यों और स्थानीय निकायों द्वारा लगाये करों, उपकरों और अधिभारों पर जिन्हें जी.एस.टी. के अंतर्गत सम्मिलित किया जा सकता है;

(ii) वस्तुओं और सेवाओं पर जो जी.एस.टी. के अधीन कीजा सकती हैं या जिन्हें छूट दी जा सकती है;

(iii) जिस तारीख को पेट्रोलियम कच्चे तेल, हाई स्पीड डीजल, मोटर स्प्रिट (आमतौर पर पेट्रोल के रूप में जाना जाता है), प्राकृतिक गैस और एविएशन टर्बाइन फ्यूल पर जी. एस.टी. लगाया जाएगा;

(iv) मॉडल जी.एस.टी. कानून, करारोपण के सिद्धांत, आईजी.ए स.टी. का संविभाजन और वे सिद्धांत जो आपूर्ति स्थल को निर्धारित करते हैं;

(v) कुल बिक्री की वह सीमारेखा जिसके नीचे वस्तुओं और सेवाओं को जी.एस.टी. से छूट दी जा सकती है;

(vi) वह दरें जिनमें जी.एस.टी.बैंड सहित न्यूनतम तय दरें शामिल हैं;

(vii) प्राकृतिक आपदा या आपदा के दौरान अतिरिक्त संसाधन जुटाने के लिए कोई विशेष दर या निर्धारित अवधि के लिए तय की गई दरें;

(viii) उत्तर–पूर्वी राज्यों, जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश और उत्तराखंड के संबंध में विशेष प्रावधान; तथा

(ix) जी.एस.टी. से संबंधित कोई अन्य मामला, जिसपर परिषद निर्णय ले सकती है;

9.8.1 जी.एस.टी. परिषद द्वारा लिए जाने वाले निर्णय

संविधान का (एक सौ एकवां संशोधन) अधिनियम, 2016 प्रावधान करता है कि जी.एस. टी. परिषद का प्रत्येक निर्णय बैठक में कम से कम कुल उपस्थित सदस्यों के 3/4 के बहुमत से मतदान करने के बाद लिया जाएगा। बैठक में कुल डाले गये मतों के 1/3 हिस्से का महत्व केंद्र सरकार के मतों का और बाकी सभी राज्य सरकारों का एक साथ मिलकर कुल डाले गये मतों का 2/3 हिस्से का महत्व होगा। जी.एस.टी. परिषद के सदस्यों की कुल संख्या में से आधे के साथ बैठकों का कोरम गठित होगा।

9.8.2 न्यूतनतम इंटरफेस

जीएसटी के अंतर्गत करदाताओं तथा कर अधिकारियों के बीच न्यूटनतम फिजिकल इंटरफेस की जरूरत होगी । इस संबन्धि में कुछ महत्व पूर्ण प्रावधान निम्नगलिखित हैं :

(क) केन्द्र एवं राज्य सरकारों से संबन्धित अधिकारियों का परस्पर सशक्तिकरण (क्रास–एम्पावरमेंट) होगा । सीजीएसटी के अधिकारी को एसजीएसटी के अधिकारी के रूप में एवं विलोमत: (वाइस–वर्सा) कार्य करने हेतु अधिकार दिया जायेगा ।

(ख) पंजीकरण ऑनलाइन दिया जाएगा एवं करदाता को पंजीकृत मान लिया जाएगा, यदि कर प्रशासन द्वारा, जिन्हें आवेदन की जाँच आवंटित की गई है, 3 सामान्यर कार्य दिवसों के अन्दर आवेदक को कोई कमी सूचित नहीं की जाती है । ऐसा आवंटन केन्द्र एवं राज्य कर प्रशासन के बीच बारी–बारी से किया जाना है ।

(ग) हर करदाता स्वयं अपने देय दर का मूल्यांकन (स्व–निर्धारण) करेगा एवं इसे सरकार के खाते में जमा कराएगा । करदाता द्वारा फाइल की गई विवरणी (रिटर्न) को स्व–निर्धारण माना जाएगा ।

(घ) कर का भुगतान इलेक्ट्रॉनिक तरीके से इंटरनेट बैंकिंग अथवा क्रेडिट/डेबिट कार्ड के माध्यम से या रियल टाइम ग्रॉस सेटलमेंट (आर.टी.जी.एस.) अथवा नेशनल इलेक्ट्रॉनिक फंड ट्रांसफर (नेफ्ट) के द्वारा किया जाएगा । छोटे करदाताओं को बैंक के काउंटर पर कर का भुगतान करने की अनुमति होगी । कर भुगतान के लि सभी चालान गुड्स एंड सर्विसेज टैक्स नेटवर्क (जी.एस.टी.एन.)पर ऑनलाइन तैयार किए जाएँगे ।

(ड.) कर प्राधिकारियों से बिना किसी मुलाकात/ सहायता के, करदाता इलेक्ट्रॉनिक तरीके से अपने किये गए प्रदायों का विवरण उपलब्ध कराएगा । प्राप्त किये गए प्रदायों के विवरण को, उनके सादृश्य् प्रदायकर्ताओं द्वारा फाइल किए गए प्रदाय विवरण से स्वयं भर लिया जाएगा ।

(च) आवक एवं जावक प्रदायों, आईटी.सी. का लिया गया क्रेडिट, देय कर, भुगतान किए गए कर और अन्य. निर्धारित विवरणियों का मासिक रिर्टन करदाता इलेक्ट्रॉनिक तरीके से प्रस्तुत करेगा । कम्पोजीशन करदाता इलेक्ट्रॉनिक तरीके से तिमाही रिटर्न फाइल करेगा । भूलवश/गलत प्रस्तुरत किए गए ब्यौरों को आगामी वर्ष की सितम्बर माह के रिटर्न फाइल करने की अंतिम तारीख अथवा वार्षिक रिटर्न फाइल करने की वास्तविक तारीख में से, जो भी पहले हो, एक करदाता स्वयं संशोधित कर सकता है।

(छ) परस्पैर मेल नहीं खाने वाले बीजकों के लिए इनपुट कर प्रत्यय का रिवर्सल एवं रिक्लेम करदाता से संपर्क किए बगैर जी.एस.टी.एन. पोर्टल पर इलेक्ट्रॉनिक तरीके से किया जाएगा । साथ ही साथ, यह इलेक्ट्रॉनिक पद्धति नकली बीजकों अथवा एक ही बीजक के आधार पर दुबारा इनपुट कर प्रत्यय लेने के प्रयास को रोकेगा ।

(ज) करदाताओं को इलेक्ट्रॉनिक रूप में लेखे एवं अन्य रिकार्ड रखने की अनुमति दी जाएगी ।

9.9 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंर्तगत आयात व निर्यात

9.9.1 जी.एस.टी. के अंर्तगत आयात

वस्तुओं और सेवाओं के आयात को अंतर–राज्य आपूर्ति के रूप में माना जाएगा और देश में वस्तओं और सेवाओं के आयात पर आई.जी.एस.टी. लगाया जाएगा। कर की घटना का गतंव्य सिद्धांत पालन करेंगे और एस.जी.एस.टी. के मामले में कर राजस्व उस राज्य द्वारा प्राप्त किया जायेगा जहां आयातित वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग किया जा रहा है। वस्तुओं और सेवाओं के आयात पर पिछले चरण में भुगतान किया गया जी.एस.टी. कर पूरा और सारा (full and final) सेट–ऑफ (वापसी) पुनः प्राप्त हो जाएगा।

9.9.2 जी.एस.टी. के अंर्तगत निर्यात

निर्यात को शून्य दर की आपूर्ति के रूप में माना जाएगा। वस्तुओं या सेवाओं के निर्यात पर कोई कर देय नहीं होगा, हालांकि इनपुट टैक्स क्रेडिट पर जमा सुविधा उपलब्ध रहेगी और उसे निर्यातकों को रिफंड कर दिया जाएगा। जी.एस.टी. के अंर्तगत संरचना योजना (composite scheme) का क्या कार्यक्षेत्र वे छोटे करदाता जिनकी एक वित्तीय वर्ष में

टर्नओवर (50 लाख रुपए) तक है, संरचना कर के पात्र होंगे। इस योजना के अंर्तगत, एक कर दाता बिना आई.टी.सी. लाभ लिये एक वित्तीय वर्ष में अपनी टर्नओवर के प्रतिशत के रूप में कर का भुगतान करता है। सी.जी.एस.टी. और एस.जी.एस.टी. के लिए कर की सीमारेखा (threshold) की दर (1 प्रतिशत) से कम नहीं होगी। संरचना का विकल्प चयन करने वाला करदाता अपने ग्राहकों से किसी भी प्रकार का कर वसूल नहीं करेगा। वह करदाता जो अंतर–राज्य आपूर्ति कर रहा है या रिवर्स चार्ज आधार पर कर का भुगतान करता है संरचना योजना का पात्र नहीं होगा।

9.10 आंकलन और लेखा–परीक्षण

अधिनियम के अंतर्गत प्रत्येक पंजीकृत व्यक्ति एक कर अवधि के लिये स्वयं अपने देय कर का आंकलन करने के लिये जिम्मेदार होगा और इस तरह मूल्यांकन के बाद उसे धारा 27 के अंतर्गत रिटर्न दाखिल करना आवश्यक होगा। चूंकि एक करदाता को अपने स्वयं मूल्यांकन आधार पर कर का भुगतान करना पड़ता है, अस्थायी आधार पर कर के भुगतान का अनुरोध करदाता से प्राप्त होना चाहिये जिसे सक्षम अधिकारी द्वारा अनुमति दी जाएगी। दूसरे शब्दों में, कोई भी कर अधिकारी स्वप्रेरणा से अस्थायी आधार पर कर भुगतान के आदेश नहीं दे सकता। यह एम.जी.एल. की धारा 44 द्वारा संचालित है। अस्थायी आधार पर कर का भुगतान तभी किया जा सकता है जब सक्षम अधिकारी उसे एक आदेश के माध्यम से इसकी अनुमति दे देता है। इस उद्देश्य के लिए, कराधीन व्यक्ति को सक्षम अधिकारी को लिखित अनुरोध देना होगा, जिसमें वह अस्थायी आधार पर कर भुगतान करने का कारण बताएगा। कराधीन व्यक्ति द्वारा इस तरह के अनुरोध केवल ऐसे मामलों में किये जा सकते हैं जहां जहां वह निम्न निर्धारित करने में असमर्थ है:

क) उसके द्वारा आपूर्ति की जाने वाली वस्तुओं या सेवाओं के मूल्य, या

ख) उसके द्वारा आपूर्ति किये जाने वाली वस्तुओं या सेवाओं के कर की दर।

ऐसे मामलों में कराधीन व्यक्ति को एक निर्धारित प्रपत्र में एक प्रतिज्ञापत्र निष्पादित करना होगा, और इस तरह की जमानत या सुरक्षा सहित जैसा सक्षम अधिकारी उचित समझता है।

9.11 प्रतिदाय/रिफंड

प्रतिदाय/रिफंड के बारे में एम.जी.एल. की धारा 38 में चर्चा की गई है। प्रतिदाय/रिफंड में भारत से बाहर विदेशों में निर्यात की गई वस्तुओं और/या सेवाओं पर कर की वापसी या भारत से बाहर विदेशों में निर्यात की गई वस्तुओं और/या सेवाओं में प्रयोग किया गया कच्चा माल/इनपुट या इनपुट सेवाएं, या उन वस्तुओं और/या सेवाओं पर कर की वापसी जिन्हें निर्यात माना गया है, या धारा 38(2) के अंतर्गत प्रदान किये अप्रयुक्त इनपुट टैक्स क्रेडिट शामिल हैं।

एम.जी.एल. की धारा 38 के स्पष्टीकरण में दिए अनुसार संबंधित व्यक्ति को प्रासंगिक तारीख से दो वर्ष की समाप्ति के भीतर आवेदन दाखिल करना आवश्यक है।

प्रतिदाय/रिफंड स्वीकृत करने की कोई समय सीमा सभी मामलों में 90 दिन है, सिवाय उन मामलों के जो, कुछ निर्यात का श्रेणियों के लिए है, जैसे कि धारा 38 की उप–धारा (4ए) में निर्दिष्ट किया गया है और उनके प्रतिदाय/रिफंड का दावा

80 प्रतिशत की हद तक लौटाने योग्य है। यदि प्रतिदाय/रिफंड तीन महीने के भीतर स्वीकृत नहीं किया जाता, तब ऐसी स्थिति में विभाग द्वारा ब्याज का भुगतान होगा।

9.11.1 इनपुट कर प्रत्यय (क्रेडिट)

करदाता को अपने विवरणी (रिटर्न) में, इनपुट पर भुगतान किए गए कर का स्व–निर्धारित क्रेडिट (इनपुट कर प्रत्यनय) लेने की अनुमति है । करदाता नेगिटिव लिस्ट् में विनिर्दिष्टत कुछ मदों के अलावा सभी माल और सेवाओं पर भुगतान किए गए कर का क्रेडिट ले सकता है और उनका उपयोग आउटपुट टैक्स के भुगतान के लिए कर सकता है । इनपुट पर भुगतान किए गए कर का क्रेडिट वहाँ लिया जा सकता है जहाँ इनपुटों का उपयोग करदाता अपने कारोबार के दौरान या उसे अग्रसर करने अथवा कर योग्यअ प्रदायों के लिए करता है । केन्द्र सरकार और अनेक राज्य सरकारों द्वारा कैपिटल गुड्स की पावती पर, एक से अधिक किश्तों में, इनपुट कर प्रत्यय की अनुमति देने के वर्तमान प्रावधानों के विपरीत जी.एस.टी. प्रावधान पूरे इनपुट कर का एक बार प्रत्यय (क्रेडिट) लेने की अनुमति देते हैं । ऐसे इनपुट कर प्रत्यय को आगे जारी रखा जाएगा जिसका उपयोग नही किया जा सका है। ग्रुप कंपनियों के बीच सेवाओं पर इनपुट सर्विस डिस्ट्रीब्यूटर (आई.एस.डी.) की व्यवस्था के द्वारा इनपुट कर प्रत्यय के वितरण की सुविधा उपलब्ध कराई जाएगी ।

9.11.2 धन वापसी (रिफंड)

ऑनलाइन धनवापसी का दावा प्रस्तुत करने की समय–सीमा को एक वर्ष से बढ़ाकर दो वर्ष किया गया है । पूर्ण आवेदन की पावती के 60 दिन के भीतर धनवापसी की मंजूरी प्रदान की जाएगी । निर्धारित 60 दिन की अवधि के भीतर यदि धनवापसी की मंजूरी नहीं दी जाती है तो उस पर ब्याज देय होगा । यदि धनवापसी का दावा दो लाख रूपये से कम राशि का है तो दावाकर्ता के लिए साक्ष्यगत प्रमाण, यह सिद्ध करने के लिए कि उसने किसी और व्यसक्ति को यह कर भार स्थानांतरित नहीं किय है, प्रस्तुत करने की जरूरत नहीं होगी । केवल इस आशय का स्व–प्रमाणन ही पर्याप्त होगा । इनपुट कर प्रत्यय के धन वापसी की अनुमति निर्यात अथवा जहाँ इनवर्टेड ड्यूटी स्ट्रक्चर (अर्थात जहाँ आउटपुट पर लगाए गए कर की दर, इनपुट पर लगाए गए कर की दर से कम है) के कारण क्रेडिट जमा हुआ है, के मामलों में होगी ।

9.11.3 माँग (डिमांड्स)

कर विवादों के लिए सनसेट क्लॉज की एक नई अवधारणा को लागू किया गया है । इसमें यह प्रावधान किया गया है कि सामान्य मामलों में, वार्षिक रिटर्न फाइल करने के तीन वर्ष के भीतर अधिनिर्णयन आदेश जारी किा जाएगा और धोखा–धड़ी जानबूझकर छिपाए गए तथ्यों के मामलों में वार्षिक रिटर्न फाइल करने की तारीख से पाँच वर्ष की समय सीमा के पहले अधिनिर्णयन आदेश जारी किया जाना है । सामान्य मामलों में, अधिनिर्णयन आदेश जारी करने की समय सीमा से तीन महीने पहले कारण बताओ नोटिस जारी किया जाएगा तथा धोखा–धड़ी/जानबूझकर छिपाए गए तथ्यों के मामलों में, अधिनिर्णयन आदेश जारी करने की समय सीमा से छह महीने पहले कारण बताओ नोटिस जारी किया जाएगा । यदि लेखा–परीक्षा/जाँच पड़ताल के दौरान कम जमा किए गए कर/नहीं जमा किए गए कर को ब्याद सहित जमा करा दिया जाता है तो दण्डक शून्य अथवा काफी कम होगा ।

9.12 जी.एस.टी. में अपील, समीक्षा और संशोधन

कोई भी व्यक्ति जो किसी आदेश या विरूद्ध पारित किये गये किसी फैसले से असंतुष्ट है उसे अपील करने का अधिकार है। ऐसा आदेश या निर्णय 'निर्णय देने वाले प्राधिकारी' द्वारा पारित किये जाने चाहिए। हालांकि, कुछ निर्णय या आदेश (धारा 93 में प्रदान किये अनुसार) अपील करने योग्य नहीं हैं।

प्रथम अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील दाखिल करने की क्या समय सीमा आदेश और फैसला सूचित करने के 3 महीने तय की गई है।

न्यायाधिकरण के पास अपील अस्वीकार करने के लिए शक्तियाँ उस स्थिति में होगी जब ऐसे मामलों में जहां अपील शामिल है –

- कर राशि या
- इनपुट कर क्रेडिट या
- कर में अंतर या
- इनपुट कर क्रेडिट में फर्क है या
- जुर्माने की राशि,
- शुल्क की राशि या
- दंड की राशि का आदेश

रूपये 1,00,000/– से कम है, न्यायाधिकरण के पास कथित अपील को अस्वीकार करने की स्वेच्छा है। (एम.जी.एल. की धारा 82(2))

9.13 निरीक्षण, तलाशी, जब्ती और गिरफ्तारी

एम.जी.एल. के अंतर्गत शब्द "निरीक्षण" एक नया प्रावधान है। यह तलाशी की तुलना में एक नरम प्रावधान है जो अधिकारियों को कराधीन व्यक्ति के व्यापार के किसी भी स्थान पर और इसके साथ ही उस व्यक्ति जो माल के परिवहन में संलग्न है या जो स्वामी है या एक मालगोदाम या गोदाम का ऑपरेटर है उस तक पहुंच बनाने में सक्षम करता है। एम.जी.एल. की धारा 60 के अनुसार, निरीक्षण का कार्यान्वयन सी.जी.एस.टी/एस.जी.एस.टी के सयुंक्त आयुक्त या उससे ऊपर के रैंक के एक अधिकारी द्वारा लिखित अधिकार पत्र के अतं गर्त किया जा सकता है। संयुक्त आयुक्त या उससे उच्च अधिकारी इस तरह के प्राधिकार सिर्फ तभी दे सकते हैं जब उनके पास यह विश्वास करने के पर्याप्त कारण हैं कि संबंधित व्यक्ति ने निम्न में से एक किया है:

i. आपूर्ति के किसी लेनदेन को दबाया है;
ii. हाथ में वस्तुओं के स्टॉक को दबाया है;
iii. ज्यादा इनपुट कर क्रेडिट का दावा किया है;
iv. कर के लिए सी.जी.एस.टी./एस.जी.एस.टी. अधिनियम के किसी प्रावधान का उल्लंघन किया है;
v. एक ट्रांसपोर्टर या गोदाम के मालिक के पास कुछ माल रखा है जिसपर कर का भुगतान बचाया गया है या अपने खातों या माल को इस तरीके से किसी स्थान पर रख दिया है कि कर से बचने की संभावना हो।

9.14 अपराध और दंड अभियोजन और संयुक्तिकरण

मॉडल जी.एस.टी. कानून अध्याय XVI अपराध और दंड को संहिताबद्ध करता है। अधिनियम की धारा 66 में 21 अपराधों को सूचीबद्ध किया गया है, धारा 8 के अंतर्गत निर्धारित दंड के अतिरिक्त कराधीन व्यक्ति द्वारा आपसी निपटारा प्राप्त करने के लिए जो इसका हकदार नहीं है। कथित अपराध इस प्रकार हैं:–

1) चालान/बिल के बिना आपूर्ति करना या झूठे/गलत बिल/चालान के साथ आपूर्ति करना;
2) बगैर आपूर्ति किए चालान/बिल जारी करना;
3) एकत्रित किया गया कर तीन महीने से भी अधिक अवधि से जमा नहीं करना;

4) एकत्रित किया गया कर एम.जी.एल. के उल्लंघन में तीन महीने से भी अधिक अवधि से जमा नहीं करना;
5) गैर–कटौती या स्रोत पर कर की कम कटौती करना या धारा 37 के अंतर्गत स्रोत पर कर कटौती ;ज्वैद्ध की रकम जमा नहीं करना;
6) गैर–संग्रह या कम–संग्रह या धारा 43सी के अंतर्गत स्रोत पर एकत्रित कर का भुगतान नहीं करना;
7) वस्तुओं और/या सेवाओं की वास्तविक प्राप्ति के बिना इनपुट कर क्रेडिट का लाभ प्राप्त/उपयोग करना;
8) धोखे से कोई प्रतिदाय/रिफंड प्राप्त करना;
9) धारा 17 के उल्लंघन में इनपुट सेवा वितरक से इनपुट कर क्रेडिट का लाभ उठाना/उपयोग करना;
10) झूठी जानकारी या झूठे वित्तीय अभिलेख बनाकर प्रस्तुत करना या कर के भुगतान से बचने के लिए फर्जी खाते/दस्तावेज प्रस्तुत करना;
11) कर के लिए उत्तरदायी होने के बावजूद पंजीकरण कराने में विफलता;
12) पंजीकरण के लिए अनिवार्य क्षेत्रों के बारे में झूठी जानकारी प्रस्तुत करना;
13) किसी अधिकारी को उसके कर्तव्य का निर्वहन करने में रूकावट डालना या रोकना;
14) निर्धारित दस्तावेजों के बगैर माल परिवहन करना;
15) कारोबार के आंकड़े दबाना जिससे कर की चोरी की जा सके;
16) अधिनियम में निर्दिश्ट की गई विधि अनुसार खातों/दस्तावेज बनाए रखने में विफलता या अधिनियम में निर्दिष्ट अवधि के लिये खातों/दस्तावेज बनाए रखने के लिए विफल रहना;
17) अधिनियम/नियम के अनुसारएक अधिकारी द्वारा जानकारी/दस्तावेज की मांग पर विफल रहना या किसी भी कार्यवाही के दौरान झूठी जानकारी/दस्तावेज प्रस्तुत करना;
18) किसी भी जब्ती के लिए उत्तरदायी माल की आपूर्ति/परिवहन/भंडारण;
19) किसी अन्य व्यक्ति के जी.एस.टी.आई.एन. का उपयोग कर चालान/बिल या दस्तावेज जारी करना;
20) किसी भी सामग्री से छेड़छाड़/साक्ष्य नष्ट करना;
21) हिरासत/जब्त/अधिनियम के अंतर्गत संलग्न माल का निपटान/छेड़छाड करना;

धारा 66(1) में प्रावधान करती है कि कोई भी कराधीन व्यक्ति है जिसने धारा 66 में उल्लिखित कोई अपराध किया हे उसे दंड लगाकर निम्नलिखित में सबसे अधिक राशि का भुगतान करना होगाः

- करवंचना की राशि, धोखे से रिफंड के रूप में प्राप्त राशि, ऋण के रूप में लाभ उठाया, या कटौती नहीं करना या एकत्र करना या कम कटौती करना या थोड़ा कम एकत्र करना, से संबंधित राशि या
- 10,000/– रुपए की राशि

इसके अतिरिक्त धारा 66(2) में प्रावधान है कि कोई भी पंजीकृत कराधीन व्यक्ति जो बार–बार कम कर का भुगतान करता है वह सजा के लिए उत्तरदायी है जो निम्न में सबसे अधिक होगी :

- कम भुगतान किए कर का 10 प्रतिशत या
- 10,000/– रुपय

एम.जी.एल. की धारा 70 के अंतर्गत, वस्तुएं/माल जब्ती के लिये उत्तरदायी होगा यदि कोई व्यक्तिः

- इस अधिनियम के किसी प्रावधान के उल्लंघन के परिणाम में माल की आपूर्ति और उस कथित उल्लंघन के परिणामस्वरूप अधिनियम के अंतर्गत कर की चोरी करता है, या
- अधिनियम के अंतर्गत आवश्यक तरीके से वस्तुओं/माल का सही खाते नहीं रखता है, या
- बिना पंजीकरण का आवेदन किये कर के लिये उत्तरदायी वस्तुओं की आपूर्ति करता है, या
- कर भुगतान से बचने के इरादे के साथ अधिनियम/नियमों के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन करता है।

एम.जी.एल. की धारा 73 अधिनियम के अंतर्गत कुछ प्रमुख अपराधों को सूचीबद्ध किया गया है जो आपराधिक कार्यवाही और अभियोगप्रारम्भ करने का आदेश देते हैं। नीचे 12 ऐसे प्रमुख अपराधों को सूचीबद्ध किया गया हैः

1) बिना चालान/बिल जारी किये आपूर्ति करना या झूठे/गलत चालान/बिल जारी करना;
2) बिना आपूर्ति किये चालान/बिल जारी करना;
3) 3 महीने से भी अधिक अवधि के लिये एकत्रित किये कर का भुगतान ना करना;
4) अधिनियम का उल्लंघन करते हुए 3 महीने से भी अधिक समय के लिये एकत्र किये गये किसी कर को जमा नहीं करना है;
5) बिना वस्तुओं/माल और/या सेवाओं की वास्तविक प्राप्ति किए इनपुट टैक्स क्रेडिट का लाभ उठाना या उपयोग करना;
6) किसी भी प्रकार की धोखाधड़ी से रिफंड प्राप्त करना,
7) झूठी जानकारी प्रस्तुत करना या वित्तीय अभिलेखों की जालसाझी करना या कर के भुगतान से बचने के लिए फर्जी खातों/दस्तावेज प्रस्तुत करना;
8) किसी अधिकारी को उसके कर्तव्यों का निष्पादन करने में अवरोध उत्पन्न करना या रोकना;
9) जब्ती के लिए उत्तरदायी वस्तुओं/माल से निपटना दूसरे शब्दों में, जब्ती के लिए उत्तरदायी वस्तुओं/माल की रसीद, आपूर्ति, भंडारण या ढुलाई करना;
10) अधिनियम के उल्लंघन करने वाली सेवाओं की आपूर्ति प्राप्त करना/निपटना;
11) अधिनियम/नियम द्वारा आवश्यक किसी जानकारी देने में विफलता या झूठी जानकारी देना;
12) ऊपर 11 अपराधों में से किसी एक को करने का प्रयास करना या सहयोग देना।

9.15 वैकल्पिक विवाद समाधान योजना–अग्रिम विनिर्णय

जीएसटी कानून के अंतर्गत अग्रिम विनिर्णय (एडवांस रूलिंग) के प्रावधान को जारी रखा गया है । इसकी महत्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नवत हैं :–

(क) वर्तमान में जितने विषयों में, अग्रिम विनिर्णय (एडवांस रूलिंग) लेने का प्रावधान है, जी एस टी में उनसे अधिक विषयों में, एडवांस रूलिंग प्राप्त करने की अनुमति दी गई है । इनमें शामिल विषय हैं :– वस्तुओं/सेवाओं का वर्गीकरण, प्रदाय का समय एवं मूल्य कर की दर, इनपुट कर क्रेडिट की स्वीकार्यता, कर भुगतान की देयता, रजिस्ट्रेशन लेने

की देयता और क्या कोई खास लेन–देन जी.एस.टी. कानून के अंतर्गत प्रदाय के समतुल्य हैं ।

(ख) अग्रिम विनिर्णय (एडवांस रूलिंग)लेने का प्रावधान केवल नए कार्यकलापों के लिए ही नहीं है बल्कि यह सुविधा माल और सेवा कर में जारी कार्यकलापों के लिए भी है । जी.एस.टी. कानून के अंतर्गत अपील की सुविधा भी उपलबध कराई गई है जो अभी केन्द्रीय कानून के अंतर्गत उपलब्ध नहीं है ।

(ग) आवेदनकर्ता अथवा राजस्व विभाग यदि अग्रिम विनिर्णय (एडवांस रूलिंग) से व्यथित है तो अब से उन्हें एडवांस रूलिंग के रिविजन के लिए अपीलीय प्राधिकारी के सपक्ष अपील दायर करने का मौका मिलेगा । अग्रिम विनिर्णय को पहले की तुलना में, अधिक सरलता से हासिल किया जा सकेगा, क्योंमकि प्रत्येक राज्य में एक अग्रिम विनिर्णय प्राधिकरण और अपील प्राधिकरण होगा ।

9.16 माल और सेवा कर के अन्य प्रावधान

माल और सेवा कर के उल्लेखनीय प्रावधान निम्नववत हैं :–

i) संव्यवहार मूल्य (ट्रान्जैक्शेन वैल्यू) अर्थात बीजक मूल्य, जोकि केन्द्रीय उत्पा्द एवं सीमा शुल्क कानून के अंतर्गत वर्तमान व्यवस्था है, के आधार पर वस्तुओं के प्रदाय का मूल्य निर्धारित किया जाएगा । करदाताओं को इस बात की अनुमति दी गई है कि वे पहले की गई प्रदायों के संबन्ध में अनुपूरक अथवा संशोधित बीजक जारी करें ।

ii) कर का भुगतान करने के लिए नए तरीकों, जैसे कि क्रेडिट कार्ड एवं डेबिट कार्ड, नेशनल इलेक्ट्रॉनिक फंड ट्रांसफर (नेफ्ट) और रियल टाइम ग्रॉस सेटलमेंट(आर.टी.जी. एस.) को माल और सेवा कर व्यवस्था में समाविष्ट किया गया है ।

iii) ई–कॉमर्स कम्पनियों से यह अपेक्षित है कि फुल्फिल्मेंट मॉडल के अंतर्गत अपने ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्य म से की गई प्रदायों पर वे स्त्रोत पर ही सरकार द्वारा अधिसूचित दर पर कर संग्रहण करें ।

iv) जीएसटी कानून में एक मुनाफाखोरी–रोधी प्रावधान यह सुनिश्चित करने के लिए समाविष्ट किया गया है कि कर दरों में किसी भी कमी के परिणामस्वरूप ऐसी वस्तुाओं/सेवाओं की कीमतों में उसी अनुरूप कमी आनी चाहिए ।

9.17 जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत विवादों का समाधान

संविधान (एक सौ एकवां संशोधन) अधिनियम, 2016 प्रदान करता है कि वस्तुओं और सेवाओं की परिषद या उसके कार्यान्वयन की सिफारिशों से उत्पन्न किसी भी विवाद में निर्णय देने के लिये एक मैकेनिज़्म स्थापित करेगी–

(क) भारत सरकार और एक या एक से अधिक राज्यों के बीच; या

(ख) भारत सरकार और कोई राज्य या एक से अधिक राज्य एक तरफ तथा एक या एक से अधिक राज्य दूसरी तरफ, के बीच; या

(ग) दो या अधिक राज्यों के बीच

9.17.1 अपंजीकृत व्यापारियों से माल की खरीद के मामले में क्या उलझने

माल प्राप्त करने वाला आई.टी.सी. (Input Tax Credit) प्राप्त करने में सक्षम नहीं होगा। इसके अतिरिक्त, वे प्राप्तकर्ता जो संरचना योजनाओं के अंतर्गत पंजीकृत हैं रिवर्स चार्ज के अंतर्गत कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होंगे।

9.18 निपटान आयोग

निपटान आयोग की स्थापना का मूल उद्देश्य इस प्रकार है:–

1. करदाता के लिए विवाद समाधान के लिए एक वैकल्पिक माध्यम प्रदान करना;
2. विवादों में संलग्न जी.एस.टी. के भुगतान में तेजी लाने के लिए महंगी और समय लेने वाली मुकदमेबाजी की प्रक्रिया से बचना;
3. उन करदाताओं को साफ सुथरी छवि प्रस्तुत करने के लिये अवसर प्रदान करना जो कर का भुगतान करने से बचते रहे हैं;
4. करदाता को उनके कर दायित्व के मामलों के निपटान लागू करने के लिये एक मंच की सुविधा प्रदान करना, जोकि उनके द्वारा पूर्ण और समग्र कर दायित्व की घोशणा के आधार पर हो।
5. विवादों के तीव्र निपटारे को प्रोत्साहित करना और कुछ स्थितियों में व्यापार को अभियोजन की चिंताओं से मुक्ति दिलाना;

मॉडल जी.एस.टी. कानून में, केवल आई.जी.एस.टी. अधिनियम के अंतर्गत निपटान आयोग का प्रावधान किया गया है। (धारा–11से 26) इसका आशय यह है कि राज्य के भीतर लेन–देन से संबंधित कर देयता के मामलों को निपटाया नहीं जा सकता। हालांकि, वहां एक संभावना यह है कि उन राज्यों के कर प्रशासन जो निपटान आयोग गठित करना चाहते हैं वह आई.जी.एस.टी. अधिनियम और सी.जी.एस.टी. अधिनियम के अंतर्गत प्रदान किये नमूने/टेम्पलेट के आधार पर ऐसा कर सकते हैं और कथित राज्यों के लिए आईजी.ए स.टी. अधिनियम से उपलब्ध सक्षम प्रावधानों का अनुसरण कर सकते हैं।

आई.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 15 के अनुसार, निपटान के लिए आवेदन करने से पहले निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए ताकि निपटान का मामला स्वीकार किया जा सके:

(क) आवेदक ने रिटर्न प्रस्तुत कर दिया/दी हैं, जिन्हें उसे या आई.जी.एस.टी. अधिनियम के अंतर्गत प्रस्तुत करना आवश्यक था या इसकी आवश्यकता को निपटान आयोग द्वारा इन कारणों की रिकॉर्डिंग करने के बाद कि वह संतुष्ट था, खारिज कर दिया है कि रिटर्न नहीं भरने के पीछे कुछ वैध परिस्थितियां अस्तित्व में थी;

(ख) आवेदक को कर की मांग के लिए एक कारण बताओ नोटिस प्राप्त हुआ है या आई.जी. एस.टी. अधिकारी द्वारा कर की मांग की पुश्टि जारी करने का आदेष प्राप्त हुआ है जो प्रथम अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष लंबित है;

(ग) आवेदन में आवेदक द्वारा स्वीकार किये गये अतिरिक्त कर की राशि पांच लाख रुपए से अधिक है; तथा

(घ) आवेदक ने सी.जी.एस.टी. अधिनियम की धारा 36 के अंतर्गत उसके द्वारा स्वीकृत देय ब्याज सहित कर का अतिरिक्त भुगतान कर दिया है।

9.19 सारांश

वस्तु एंव सेवा कर को लागू करना भारत में अप्रत्यक्ष कर के सुधार के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम होगा । जी.एस.टी. वस्तुओं और सेवाओं के उपभोग पर लगाया गया गंतव्य आधारित कर है। इसे विनिर्माण से अंतिम उपभोग के सभी चरणों पर कर लगाने के लिये प्रस्तावित किया जाता है और पिछले चरणों में भुगतान किये कर को अलग करने के लिये क्रेडिट प्राप्त किया जाता है।

वर्तमान में, केंद्र और राज्यों के बीच वित्तीय अधिकार स्पष्ट रूप से संविधान में सीमांकित किये गये हैं जिनमें संबंधित क्षेत्रों के बीच लगभग किसी तरह का ओवरलैप नही है। यह केंद्र और राज्यों के साथ एक साथ सामान्य कर आधार पर आरोपित एक दोहरा जी.एस.टी. होगा। वस्तुओं या सेवाओं की अंतर–राज्य आपूर्ति पर केंद्र द्वारा लगाये गये कर को केंद्रीय जी.

एस. टी. (सी.जी.एस.टी.) कहा जायेगा तथा राज्यों द्वारा लगाये करों को राज्य जी.एस.टी. (एस. जी.एस.टी.) कहा जायेगा। इसी प्रकार केंद्र द्वारा प्रत्येक अतंर–राज्य वस्तुओं और सवेाओं की आपूर्ति पर एकीकृत जी.एस.टी. (आई.जी.एस.टी.) लगाने तथा प्रशासित करने की व्यवस्था है।

9.20 शब्दावली

वस्तु एंव सेवा कर : वस्तुओं और सेवाओं के उपभोग पर लगाया गया गंतव्य आधारित कर है।

सी.जी.एस.टी. :वस्तुओं या सेवाओं की अंतर–राज्य आपूर्ति पर केंद्र द्वारा लगाये गये कर को केंद्रीय जी.एस. टी. (सी.जी.एस.टी.) कहा जायेगा

एस.जी.एस.टी. : वस्तुओं या सेवाओं की आपूर्ति पर राज्यों द्वारा लगाये करों को राज्य जी.एस.टी. (एस.जी.एस.टी.) कहा जायेगा।

9.21 बोध प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1. वस्तु एंव सेवा कर को लागू करना भारत में .....कर के सुधार के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कदम होगा ।
2. केवल .....पर ही कर लगाया जाएगा और कर का बोझ अंतिम उपभोक्ता द्वारा वहन किया जाएगा।
3. केंद्र द्वारा प्रत्येक अतंर–राज्य वस्तुओं और सवेाओं की आपूर्ति पर .... लगाने तथा प्रशासित करने की व्यवस्था है।
4. वे कर दाता जिनका एक वित्तीय वर्ष में कुल कारोबार ..... तक है उन्हें कर से मुक्त किया जाएगा।
5. निर्यात को ..... दर की आपूर्ति के रूप में माना जाएगा। वस्तुओं या सेवाओं के निर्यात पर कोई कर देय नहीं होगा, हालांकि इनपुट टैक्स क्रेडिट पर जमा सुविधा उपलब्ध रहेगी और उसे निर्यातकों को रिफंड कर दिया जाएगा।

9.22 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. अप्रत्यक्ष 2. मूल्य संवर्धन (value addition) 3. एकीकृत जी.एस.टी. (आई.जी.एस.टी.) 4. (10 लाख रूपये) 5. शून्य

9.23 स्वपरख प्रश्न

1. जी एस टी के अर्थ की व्याख्या कीजिए।
2. जी.एस.टी. में सम्मिलित करने के लिये प्रस्तावित मौजूदा कर कौन–कौन से है ?
3. जी.एस.टी. के दायरे से बाहर रखे जाने वाली प्रस्तावित वस्तुएं कौन–कौन सी है ?
4. प्रस्तावित जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत जी.एस.टी. भुगतान करने के लिए उत्तरदायी कौन है ?
5. माल और सेवा कर के लाभों का वर्णन कीजिए ।
6. जीएसटी की मुख्य विशेषताएं कौन–कौन सी है ?
7. जी.एस.टी. परिषद द्वारा लिए जाने वाले निर्णयों का वर्णन कीजिए ।
8. जी.एस.टी. में अपील, समीक्षा और संशोधन का वर्णन कीजिए ।
9. निपटान आयोग क्या है ?
10. जी.एस.टी. व्यवस्था के अंतर्गत विवादों का समाधान कैसे किया जाता है ?

9.24 संदर्भ पुस्तकें

केन्द्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क बोर्ड, नई दिल्ली **(संकलित)**।